

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186045

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. **H 82**
V 31 B Accession No. **PG H 819**

Author **वर्मा, वृन्दावनलाल** .

Title **बांस की कांस . 1947 .**

This book should be returned on or before the date
last marked below.

खड़ी बोली हिंदी साहित्य का इतिहास



लेखक—

ब्रजरत्नदास, बी० ए०, एल-एल० बी०

प्रकाशक—
हिंदी-साहित्य-कुटीर,
हाथीगली,
बनारस

मुद्रक—
श्रीनाथदास अग्रवाल,
टाइम-टेबुल प्रेस,
बनारस ।
२२९-४-४१

विषय - सूची

	पृष्ठ संख्या
भूमिका (आरंभ में)	१-२०
१—प्रकरण प्राचीन भाषाएँ—आधुनिक राष्ट्रभाषा हिंदी—उसका विकास	१-२५
२—प्रकरण : पद्य-साहित्य का विकास—सांध्यकाल	२५-४४
३—प्रकरण आदिकाल—चारणकाव्य—नाथ-साहित्य	४५-६६
४—प्रकरण पूर्व-मध्यकाल या भक्ति तथा ज्ञानकाल—संत-साहित्य	६६-८६
५—प्रकरण प्रेम-काव्य—उर्दू-हिंदी धारा	८०-१०६
६—प्रकरण सगुण-संप्रदाय—भक्ति-काव्य—स्फुट	१०६-१२६
७—प्रकरण उत्तर-मध्यकाल या रीतिकाल	१२६-१४६
८—प्रकरण रीतिकाल के अन्य कवि	१४६-१६५
९—प्रकरण वर्तमान-काल का विकास—उसका आरंभ उपसंहार अनुक्रम (अंत में)	१६५-१६० १६१-२१५ १-७



भूमिका

इस अस्थायी तथा नश्वर जीवन-संबंधी बातों पर कम ध्यान रखते हुए स्थायी तथा अविनश्वर पारलौकिक जीवन पर विशेष आस्था रखनेवाले भारतीयों ने विषय-प्रवेश अपने विषय में यदि कुछ लिखने का प्रयत्न नहीं किया है तो इसमें आश्चर्य करने का कोई अवसर नहीं है। राजनैतिक इतिहासों ही की जब कभी है तथा जो लिखे भी गए हैं, उनपर धर्म ही का विशेष रंग चढ़ा हुआ है, जिनमें इसी संसार के जय-पराजय, युद्ध, चढ़ाई, मारकाट के प्रेमियों और सांसारिक यश के भूखों ही का विवरण है तब विद्वानों, सुकवियों, योगियों आदि को अपने विषय में-~~में~~ औरों के सांसारिक जीवन के विषय में कुछ लिखना असंगत ही था। वे सर्वदा अचिंत्य, अगोचर, अविनाशी परमेश्वर की चिंता में मग्न रहते थे और इतने विनम्र तथा संसार-विरक्त होते थे कि अपनी अमर रचनाओं को भी साधारण कृति समझते और अपने को 'कवि न होऊँ नहिं चतुर प्रवीना' मानते थे। कभी कभी शास्त्रोक्त नियमों के कारण बाध्य हो कर अपनी रचनाओं में नाम दे देते थे या केवल उपनाम मात्र देकर ही संतोष कर लेते थे। संस्कृत के विशद अनुपम साहित्य के जो इतिहास लिखे गए हैं उनमें से किसी एक को उठाकर पढ़ देखा जाय तो ज्ञात होगा कि महाकवियों के समय आदि का निरूपण कितने प्रकार के तर्क वितर्क अनुमान से

किया गया है और वह भी अब तक पूर्णतया निश्चित हो गया है ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। एक इतिहासज्ञ किसी का समय दो सहस्र वर्ष पहले बतलाता है तो दूसरा उसे चार छ शताब्दि बाद का निरूपित करता है और अन्य खंडनात्मक या मंडनात्मक तर्कों को भिड़ाकर किसी न किसी का समर्थन करता रहता है। प्रायः कुछ ऐसी ही हालत संस्कृत की सुपुत्री हिंदी के साहित्य की भी है। पर संतोष है कि अब हिंदी साहित्य-प्रेमियों को अपने साहित्य के भरे भांडार का लेखा रखने की ओर रुचि हो गई है और इस कारण वैज्ञानिक रीति से कई इतिहास भी लिखे गए हैं और लिखे जा रहे हैं।

जिस प्रकार संस्कृत-साहित्य में सुभाषितों के अनेक विशद संग्रह ग्रंथ प्रस्तुत किए गए हैं तथा अन्य रचनाओं में पूर्ववर्ती कवियों के नाम तथा उद्धरण दिए गए हैं उसी प्रकार की हिंदी साहित्य में भी बहुत सी रचनाएँ प्राप्त हैं। सबसे प्राचीन संग्रह कालिदास-संग्रह ग्रंथ प्रकाश की हिंदी साहित्य में भी बहुत सी रचनाएँ प्राप्त हैं, जिसमें २१२ कवियों के १००० पद्य संगृहीत हैं; यह सं० १७७६ वि० में पूर्ण हुआ था। संग्रहकार कालिदास त्रिवेदी की अन्य रचनाएँ मिलती हैं पर यह संग्रह अब नहीं प्राप्त है। सरोजकार शिवसिंह सेनगर को यह संग्रह मिला था। बल्देव कृत 'सत्कवि गिराविलास' में सत्रह कवियों की रचनाओं का संग्रह है और सुब्बासिंह की विद्वन्मोदतरंगिणी में पैंतालीस कवियों की कृतियों का संग्रह है। लल्लूलाल जी का सभाविलास भी संग्रह ही है। कृष्णानंद व्यास का विशाल संग्रह रागकल्पद्रुम है, जिसमें गेय पद अधिकता से हैं और हिंदी के सिवा अन्य भारतीय भाषाओं के पद भी दिए गए हैं। इसमें कई सौ कवियों तथा भक्तों की रचनाएँ संगृहीत हैं। अब्दुलहक

के विजय हजारा में दोहे, सवैयों और कवित्तों का अच्छा संग्रह है तथा प्रायः इसी प्रकार का हफीजुल्ला खाँ का हजारा भी है। इनका दूसरा 'नवीन संग्रह' सन् १८८२ में तैयार हुआ, जिसमें ७३८ पद अनेक कवियों के संगृहीत हैं। इनके अन्य संग्रह भी हैं और ये सभी प्रकाशित हो चुके हैं। ठाकुरप्रसाद त्रिपाठी के रस चंद्रोदय में २४२ कवियों की कविता का सन् १८६३ ई० में संग्रह किया गया था और दिग्विजय भूषण में १६२ कवियों के पदों को गोकुलप्रसाद कायस्थ ने सन् १८४६ ई० में संगृहीत किया था। भारतेन्दु जी ने 'सुंदरीतिलक' संग्रह सं० १६२६-३१ के बीच में दो बार प्रकाशित किए। पहिले संस्करण में ४६ और द्वितीय में ६७ कवियों के पद संकलित किए गए हैं। इसीके बाद मन्नालाल द्विज ने सुंदरी सर्वस्व नाम से बड़ा संग्रह ग्रंथ तैयार किया, जो अयोध्या नरेश के आश्रय में प्रकाशित हुआ था। अयोध्या के राजा मानसिंह के समय का 'रसकुसुमाकर' भी अच्छा संग्रह है। शृंगार-सुधाकर तथा शृंगार सरोज भी इन्हींके द्वारा संकलित हुए हैं। नवीन कृत बृहत् संग्रह सुधासर का कुछ अंश प्रकाशित हो चुका है। यह उन्नीसवीं शताब्दि विक्रमीय के उत्तरार्द्ध में तैयार हुआ था। इसी प्रकार का एक संग्रह हजारा के नाम से परमानंद सुहाने का भी है। नकछेदी तिवाड़ी का भँडौआ संग्रह, मनोजमंजरी, होली गुल्लाला आदि भी सन् १६०० के लगभग प्रकाशित हो चुके थे। उक्त संग्रहों के सिवां राग-रत्नाकर, भजन-रत्नाकर, भजन सागर, नित्य-कीर्तन आदि अनेक बड़े बड़े संग्रह बन चुके हैं, जिनमें कृष्ण-लीला विनय आदि के भक्त कवियों के गेय पदों का संकलन हुआ है।

उक्त प्रकार के कोरे संग्रह ग्रंथों के सिवा कुछ ऐसे ग्रंथ भी

निकले हैं, जिनमें कवियों या कवियित्रियों के कुछ कुछ परिचय भी सम्मिलित किए गए हैं। इनमें परिचय-युक्त संग्रह महेशदत्त का काव्यसंग्रह सबसे प्राचीन है, जो सं० १६२६ में प्रस्तुत किया गया था। इसमें अवधी के कवियों का अधिक वर्णन है तथा बाबू राधाकृष्ण-दास जी के अनुसार इसमें समय-निर्णय विशेष सतर्कता से किया गया है। इसके पाँच वर्ष बाद शिवसिंह सैंगर ने अपना सरोज तैयार किया, जिसमें लगभग एक सहस्र कवियों के परिचय तथा उनकी कविता का संकलन किया गया है। सं० १६५३ में भूरिसिंह कानसिंह का एक संग्रह बंबई से प्रकाशित हुआ, जिसमें अक्षरानुक्रम से १६७ कवियों के २३६२ पद संगृहीत हैं। अंत में उसी क्रम से उनके संक्षिप्त परिचय दिए गए हैं। सं० १६६८ में मुंशी देवीप्रसाद जी ने दो भाग में कविरत्नमाला निकाला, जिसमें राजपुताने के १०८ कवियों की कविता उनके परिचय के साथ दी गई है। महिलामृदुवाणी भी ऐसा ही संग्रह है, जिसमें राजपुताने की ३५ कवियित्रियों की रचनाओं का संग्रह है। यह सं० १६६२ में प्रकाशित हुआ। बाबू बालेश्वरप्रसाद ने 'अधम' उपनाम से संत बानी संग्रह तथा अनेक संतों के बानियों के संग्रह अपने बेलवेडियर प्रेस से यथा प्राप्त परिचयों के साथ प्रकाशित कराए हैं। पं० रामनरेश त्रिपाठी ने कई भागों में कविता कौमुदी का संपादन तथा प्रकाशन किया है, जिनमें परिचय के साथ काफी उद्धरण सुकवियों के दिए गए हैं। कलकत्ता विश्वविद्यालय से लाला सीताराम के संपादन में ६ भाग में 'सेलेक्शन्स फ्रॉम हिंदी लिटरेचर' नाम से बहुत बड़ा संग्रह सन् १६२० के लगभग प्रकाशित हुआ है। इस प्रकार के छोटे

बड़े और भी अनेक संग्रह निकल चुके हैं और निकल रहे हैं, जिनकी सभी का हवाला यहाँ देना आवश्यक नहीं है।

जिस प्रकार उक्त संग्रह-ग्रंथों से कवियों के रचनाकाल की अंतिम सीमा का निर्धारण किया जाता है, उसी प्रकार

उन रचनाओं से भी समय की अंतिम सीमा
काव्य-ग्रंथों में के निर्णय में सहायता मिलती है, जिनके रचे-
नाम कीर्तन ताओं ने अपने पूर्ववर्ती कवियों का नामोल्लेख
किया है और उनका समय निश्चित है।

भिखारीदास 'दास' का काव्यनिर्णय सं० १८०३ में निर्मित हुआ है, जिसमें २३ कवियों का उल्लेख किया गया है। सूदन ने स्वरचित सुजानचरित में छ कवित्तों में अपने पूर्ववर्ती १७५ कवियों का नाम देकर उन्हें प्रणाम किया है। हरिदास जी व्यास ने अपने कई पदों में भक्तकवियों का उल्लेख किया है, जिनकी संख्या २६ है। मलूकदास ने ६६ भक्तों का उल्लेख ज्ञानबोध में किया है तथा इस प्रकार के अनेक अन्य ग्रंथ भी हैं।

कुछ ऐसे लक्षण-ग्रंथ भी मिलते हैं जिनमें उनके रचेताओं ने अन्य सुकवियों के पद उदाहरण रूप में उद्धृत किए हैं

और जब कि ऐसे रचेताओं तथा उनकी
रीति ग्रंथों में रचनाओं का समय निर्दिष्ट होता है तब उनसे
उल्लेख भी उन सुकवियों के समय निश्चित करने में
बहुत सहायता मिलती है। संस्कृत में इस

प्रकार के बहुत से ग्रंथ हैं और उनसे साहित्य के इतिहास-लेखन में बहुत सहायता मिली है पर हिंदी में इसकी कमी है। इसका मुख्य कारण यही है कि रीतिकाल के कविगण में आचार्यत्व की कमी थी। वे रीति ग्रंथ लिखते हुए भी अपनी ही कवित्व-शक्ति दिखलाने में व्यस्त रहते थे और उदाहरणों में

अपनी ही रचनाओं का समावेश करते थे। सरदार कवि का शृंगार संग्रह ऐसा ही ग्रंथ है, जिसमें १२५ कवियों के उद्धरण काव्य के अनेक अंगों के निरूपण में दिए गए हैं। रसकुसुमाकर में भी बहुत से कवियों के पद उदाहरण में दिए गए हैं।

संस्कृत साहित्य से हिंदी साहित्य में उनके इतिहास-लेखन की दृष्टि से कुछ विशेषता है, जो रीतिकाल से अधिक स्पष्ट हुई है। इस काल में तथा बाद के कवि-

अंतर्संक्षिप्त

गण में सांसारिकता अधिक आ गई है और अपने अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने का ध्यान भी उनमें अधिक हो गया है, जिससे वे अपने वंश-परिचय देने में तथा आश्रयदाताओं के यशवर्णन में अधिक सुरुचि रखने लगे। केशव, भूषण, मतिराम आदि से लगाकर बाद के प्रायः बहुत से कवियों ने अपने अपने वंश परिचय देते हुए अपने अपने आश्रयदाताओं का विशेष रूप से परिचय दिया है तथा अतिशयोक्ति पूर्ण यश-कीर्तन भी किया है, जिससे उनके विषय में इतिहासों में लिखने के लिए बहुत कुछ सामग्री मिल जाती है। बहुत से कवियों ने रचनाकाल भी दिया है, जिससे कम से कम उस रचना का समय निश्चित ज्ञात हो जाता है। भक्तिकाल के कवियों में इस प्रकार के परिचय आदि का प्रायः अभाव है पर तब भी कभी कभी कुछ ऐसी बातें अनायास ही लिख गई हैं, जिससे अनुमान करने की काफी गुंजाइश हो जाती है।

उक्त साधनों के सिवा कुछ ऐसी रचनाएँ भी प्राप्त हैं, जिनसे भक्तकवियों के विषय में कुछ जानकारी प्राप्त होती है। पर ये रचनाएँ भी प्रधानतः धार्मिक दृष्टि ही से निर्मित हुई हैं। इनमें उन

परिचयात्मक
उल्लेख

कवियों की जीवन-संबंधी बातें कम हैं पर उनके भक्त होने के कारण उनकी भक्ति, अनन्यता, माहात्म्य का विवरण अधिक है। 'राम ते अधिक राम कर दासा' को दृष्टि में रखते हुए ये प्रस्तुत की गई हैं पर तब भी बहुत कुछ साधन इनमें उपलब्ध है और उनसे समय-निर्धारण में बहुत सहायता मिलती है। ऐसे ग्रंथों में सबसे प्राचीन 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' तथा 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' मानी जाती है, जिसे गोस्वामी गोकुलनाथ जी कृत कहा जाता है। ये वास्तव में उक्त गोस्वामी जी कृत हैं या नहीं है, इसमें संदेह है पर कम से कम इतना मान्य है कि प्रथम द्वितीय से प्राचीनतर है। इनमें वल्लभ संप्रदाय के बहुत से भक्त कवियों के विवरण दिए गए हैं। नाभादास जी का भक्तमाल प्रसिद्ध तथा प्रामाणिक ग्रंथ है, जिसमें २०० भक्तों का वर्णन है। यह सं० १६६६ के आसपास लिखा गया है। इसकी टीका भक्तिरस बोधिनी में प्रियादास जी ने भक्तों के विवरण अधिक विस्तार से दिए हैं, जो प्रायः एक शताब्दि बाद सं० १७६६ वि० में समाप्त की गई थी। ध्रुवदास जी की भक्तनामावली सत्रहवीं शताब्दि विक्रमीय के अंत में पूर्ण हुई थी। इसमें १०८ दोहों में १२२ भक्तों का नाम-कीर्तन दिया गया है। यह रचना सं० १६६८ के आसपास लिखी गई है। भगवतरसिक कृत भक्तनामावली में १२६ भक्तों का उल्लेख हुआ है, जिनमें प्रायः आधे कवि भी थे। मंलूकदास ने अपने ज्ञानबोध में ६६ भक्तों का नामोल्लेख किया है, जिनमें बहुत से सुकवि हो गए हैं। नागरीदास जी के पद प्रसंगमाला में ३६ भक्तों, विशेषतः भक्त सुकवियों के परिचय उनकी रचनाओं के उदाहरणों के साथ दिए गए हैं, जो अठारहवीं शताब्दि विक्रमीय के उत्तरार्द्ध की रचना है।

सुंदरदास खरे ने काशीवास करते हुए उन्नीसवीं शताब्दि विक्रमीय के पूर्वार्द्ध में एक वृहत् ग्रंथ लिखा है जिसमें श्री कृष्णलीला वर्णन के साथ संत कवियों की वंदना की है। उनके विषय में परिचय देते हुए उनके दो दो तीन तीन पद भी उद्धृत किए हैं। रीवाँ नरेश रघुराजसिंह कृत रामरसिकावली, भारतेन्दु बाबू हरिश्चंद्र कृत उत्तरार्द्ध भक्तमाल आदि भी इसी कोटि के ग्रंथ हैं।

रचनाओं की प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों के लिपिकाल से भी उनके समय निर्धारण में कुछ सहायता मिलती है। कुछ ऐसी रचनाएँ भी प्रकाश में आई हैं जो किसी एक सुकवि के संबंध में लिखी जाने पर भी दूसरे समकालीन भक्तों तथा सुकवियों का उल्लेख कर साहित्य के इतिहास-लेखन में सहायता पहुँचाती हैं। वेणीमाधवदास कृत गोसाईं चरित में गोस्वामी तुलसीदास जी का विवरण देते हुए नंददास, सूरदास आदि का भी उल्लेख हुआ है। रत्नावली चरित, रत्नावली-दोहा-संग्रह तथा सूकर क्षेत्र-माहात्म्य में गोस्वामी जी के विषय में कुछ लिखा गया है। बनारसीदास जैन की अर्द्ध-कथा में कई रचनाओं का उल्लेख हुआ है।

यहाँ तक तो साहित्येतिहास के लिखने के उन साधनों का विवरण हुआ, जो साहित्य ही के भीतर प्राप्त हैं, पर कुछ ऐसे साधन भी हैं, जो साहित्य कोटि में न आते हुए भी इतिहास-लेखन में बहुत कुछ सहायता देते हैं। इनसे अधिकतर धर्म-संस्थापकों तथा उनके प्रचारकों का विवरण मिलता है। यदि प्रथम कोटि के साधनों को अंतर्साक्ष्य कहा जाय तो द्वितीय को बहिर्साक्ष्य कह सकते हैं। इनमें प्रधान ग्रंथ या ग्रंथमाला काशी नागरी-प्रचारिणी सभा की खोज की रिपोर्टें हैं। यह खोज

भारतीय सरकार की सहायता से सं० १९५७ से प्रारंभ होकर अब तक जारी है। इसमें आरंभ से सं० १९६२ तक की वार्षिक छ रिपोर्टें निकलीं और उसके बाद पाँच त्रैवार्षिक रिपोर्टें सं० १९६३ से सं० १९७६ तक की प्रकाशित हो चुकी हैं। बाद की रिपोर्टें अभी तक प्रकाशित नहीं हुई हैं। इनका महत्व इसीसे प्रकट है कि सरोज में सबसे अधिक अर्थात् एक सहस्र कवियों का उल्लेख हुआ था पर इस खोज के आधार पर लिखे गए 'विनोद' में पाँच सहस्र से अधिक कवियों तथा लेखकों का विवरण दिया गया है। 'सिक्खों के 'ग्रंथ साहब' में बहुत से भक्त कवियों के पद संगृहीत हैं। मैकॉलिफ के 'हिस्ट्री ऑव द सिख रिलिजन' में सिक्ख गुरुओं तथा कवियों का उल्लेख हुआ है। वेसकट के 'कबीर एंड द कबीरपंथ', मोनिएर विलिएम्स के 'हिंदुइज्म एंड ब्राह्मनिज्म', मैकनिकाल के 'इंडियन थीज्म' आदि में धर्म विषयक लेखों के साथ धर्म-प्रचारकों, उपदेशकों और कवियों का भी कुछ कुछ विवरण दिया गया है। फार्कुहर के 'एन आउटलाइन ऑव द रिलिजस लिटरेचर ऑव इंडिया', क्रुक्स कृत 'ट्राइब्ज एंड कास्ट्स ऑव इंडिया' आदि ग्रंथों में बहुत से मत-प्रवर्तकों के विवरण खोज के साथ लिखे गए हैं। अनेक राजवंशों के पुस्तकालयों में सुरक्षित पुस्तकों की सूचियाँ भी, जैसे टैसीटोरी की 'ए डिस्क्रिप्टिव कैटलाग ऑव बार्डिक एंड हिस्टोरिकल मैनुस्क्रिप्ट्स', बहुत सहायक होती हैं। टॉड कृत एनल्स ऑव राजस्थान, अबुल्फजल कृत आईन अकबरी तथा इस प्रकार के अन्य इतिहास ग्रंथों से भी बहुत से सुक-वियों के परिचय मिलते हैं। अनेक चारणों, बीरबल, टोडरमल, अब्दुरहीम खाँ खानखानाँ, सुंदर महापात्र, मीराबाई, सदासुख

लाल नियाज आदि के जीवनवृत्तों के संकलन में इन इतिहासों से उसी प्रकार बहुत सहायता मिली है जिस प्रकार साहित्य ग्रंथों से इतिहास के लिखने में मिली है। सुजानचरित, जंगनामा, भगवंतरासा, हिम्मत बहादुर विरूदावली, राज-विलास आदि इसी कोटि के ऐतिहासिक काव्यग्रंथ हैं।

उक्त उल्लिखित ग्रंथों में से मुख्य मुख्य की एक तालिका नीचे दे दी जाती है।

सं०	रचना	रचता	रचनाकाल (संवत्)	विशेष
१	चौरासी वैष्णवन की वार्ता	गो० गोकुल- नाथजी	१६२५	{ मौखिक रूप में गोकुलनाथ जी की होते भी दूसरों की लिखी है। वल्लभ संप्रदाय के भक्तों का विवरण है।
२	दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता	”	”	
३	भक्त नामावली	भगवतरसिक	१६२०-४०	१२६ भक्तों का उल्लेख
४	भक्तमाल	नाभादास	१६४०-८०	दो सौ भक्तों का वर्णन
५	भक्त नामावली	ध्रुवदास	१६८०- १७००	१०८ दोहों में १२२ भक्तों का उल्लेख
६	मूल गोसाईं चरित	वेणीमाधवदास	१६८७	संदिग्ध ग्रंथ
७	ज्ञानबोध	मल्लकदास	१७००	६६ भक्तों का उल्लेख
८	ग्रंथ साहब	सिख गुरु	१६६१- १७००	सिख गुरुओं तथा अन्य भक्तों के पद
९	कविमाला	तुलसी (यदुराय के पुत्र)	१७१२	७५ कवियों का उल्लेख
१०	भक्ति रसबोधिनी टीका	प्रियादास	१७६६	नाभा जी के भक्तमाल पर टीका

क्र०	रचना	रचता	रचनाकाल (संवत्)	विशेष
१	व्यास जी की बानी	हरिदास व्यास	१६५०	
२	कालिदास हजारा	कालिदास द्विवेदी	१७७५	२१२ कवियों के पद
३	काव्य निर्णय	भिखारीदास दास	१८०३	१६वीं सवैया तथा १७ वें दोहे में २३ कवियों का उल्लेख
४	सत्कविगिरा विलास	बलदेव बघेलखंडी	१८०३	१७ कवियों के पद
५	पद प्रसंगमाला	नागरीदास जी	१८००- १८२०	
६	सुजान चरित	सूदन	१८१०	६ कवित्तों में ककारादि क्रम से १७५ कवियों का उल्लेख
७	विद्वन्मोदतरंगिणी	सुब्बासिंह (श्रीधर कवि)	१८८४	४३ कवियों के पद
८	सभाविज्ञास	लल्लू लाल जी	१८७०	
९	रागकल्पद्रुम	कृष्णानंद व्यास	१९००	सैकड़ों कवियों के पद
१०	रसचंद्रोदय	ठाकुरप्रसाद त्रिपाठी	१९२०	बुंदेलखंड के २४२ कवियों के पद
११	दिग्विजयभूषण	गोकुलप्रसाद कायस्थ	१९०६	१९२ कवियों के पद
१२	रामरसिकावली	महाराज रघुराज सिंह	१९१०	
१३	श्रंगार-संग्रह	सरदार	१९०५	१२५ कवियों के पद
१४	सुंदरीतिलक	भारतेंदु हरिश्चंद्र	१९२६-३१	प्रथम संस्करण में ४६ व द्वितीय में ६७ कवियों के पद

लाल नियाज आदि के जीवनवृत्तों के संकलन में इन इतिहासों से उसी प्रकार बहुत सहायता मिली है जिस प्रकार साहित्य ग्रंथों से इतिहास के लिखने में मिली है। सुजानचरित, जंगनामा, भगवंतरासा, हिम्मत बहादुर विरूदावली, राज-विलास आदि इसी कोटि के ऐतिहासिक काव्यग्रंथ हैं।

उक्त उल्लिखित ग्रंथों में से मुख्य मुख्य की एक तालिका नीचे दे दी जाती है।

सं०	रचना	रचता	रचनाकाल (संवत्)	विशेष
१	चौरासी वैष्णवन की वार्ता	गो० गोकुल- नाथजी	१६२५	{ मौखिक रूप में गोकुलनाथ जी की होते भी दूसरों की लिखी है। वल्लभ संप्रदाय के भक्तों का विवरण है।
२	दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता	”	”	
३	भक्त नामावली	भगवतरसिक	१६२०-४०	१२६ भक्तों का उल्लेख
४	भक्तमाल	नाभादास	१६४०-८०	दो सौ भक्तों का वर्णन
५	भक्त नामावली	ध्रुवदास	१६८०- १७००	१०८ दोहों में १२२ भक्तों का उल्लेख
६	मूल गोसाईं चरित	वेणीमाधवदास	१६८७	संदिग्ध ग्रंथ
७	ज्ञानबोध	मल्लकदास	१७००	६६ भक्तों का उल्लेख
८	ग्रंथ साहब	सिख गुरु	१६६१- १७००	सिख गुरुओं तथा अन्य भक्तों के पद
९	कविमाला	तुलसी (यदुराय के पुत्र)	१७१२	७५ कवियों का उल्लेख
१०	भक्ति रसबोधिनी टीका	प्रियादास	१७६६	नाभा जी के भक्तमाल पर टीका

सं०	रचना	रचेता	रचनाकाल (संवत्)	विशेष
११	व्यास जी की बानी	हरिदास व्यास	१६५०	
१२	कालिदास हजार	कालिदास द्विवेदी	१७७५	२१२ कवियों के पद
१३	काव्य निर्णय	भिखारीदास 'दास'	१८०३	१६वीं सवैया तथा १७ वें दोहे में २३ कवियों का उल्लेख
१४	सत्कविगिरा विलास	बलदेव बघेलखंडी	१८०३	१७ कवियों के पद
१५	पद प्रसंगमाला	नागरीदास जी	१८००- १८२०	
१६	सुजान चरित	सूदन	१८१०	६ कवित्तों में ककारादि क्रम से १७५ कवियों का उल्लेख
१७	विद्वन्मोदतरंगिणी	सुब्बासिंह (श्रीधर कवि)	१८८४	४३ कवियों के पद
१८	सभाविज्ञास	लल्लू लाल जी	१८७०	
१९	रागकल्पद्रुम	कृष्णानंद व्यास	१९००	सैकड़ों कवियों के पद
२०	रसचंद्रोदय	ठाकुरप्रसाद त्रिपाठी	१९२०	बुंदेलखंड के २४२ कवियों के पद
२१	दिग्विजयभूषण	गोकुलप्रसाद कायस्थ	१९०६	१९२ कवियों के पद
२२	रामरसिकावली	महाराज रघुराज सिंह	१९१०	
२३	श्रंगार-संग्रह	सरदार	१९०५	१२५ कवियों के पद
२४	सुंदरीतिलक	भारतेंदु हरिश्चंद्र	१९२६-३१	प्रथम संस्करण में ४६ व द्वितीय में ६७ कवियों के पद

सं०	रचना	रचिता	रचनाकाल (संवत्)	विशेष
२५	काव्यसंग्रह	महेशदत्त शुक्ल	१६३०	५१ कवियों के परिचय तथा पद-संग्रह
२६	कवित्त रत्नाकर	मातादीन मिश्र	१६३३	२० कवियों के पद
२७	शिवसिंह सरोज	शिवसिंह सेंगर	१६४०	१००० कवियों के परि- चय तथा उनकी कविता
२८	शृंगारचंद्रिका, विचित्रोपदेश, भँडौआ संग्रह, मनोजमंजरी, वीरोल्लास, होरीगुल्लाला, विज्ञानमार्तंड	नकछेद तिवारी 'अजान'	१६४०-४७	कई सौ कवियों के शृंगार, वीर, शांत आदि रसों के पदों के संग्रह-ग्रंथ
२९	हजारा, मन-मोहिनी, नवीन संग्रह, प्रेमतर्गिनी, षट्कृत-काव्य-संग्रह	हफीजुल्ला खाँ	१६३६-५१	कई सहस्र पद सैकड़ों कवियों के
३०	सुंदरी सर्वस्व	मन्नालाल द्विज		शृंगार सुधाकर, शृंगार सरोज आदि भी लिखे हैं
३१	षट्कृत हजारा	परमानंद सुहाने	१६५०	२२१ कवियों के १२५३ पद
३२	विविधसंग्रह	भूरिसिंह	१६५०	ऐतिहासिक टिप्पणी संयुक्त
३३	कविरत्नमाला, महिला मृदुवाणी	देवीप्रसाद	१६६२-६८	
३४	साहित्य रत्नाकर	कहानसिंह धर्मसिंह	१६६४	१६७ कवियों के २३६२ पद
३५	रसकुसुमाकर	प्रतापनारायणसिंह	१६६०	
३६	विजयहजारा	अब्दुल्हक	१६७१	३५२ कवित्त, २५२ सवैया, ४०० दोहे
३७	कविता कौमुदी	रामनरेश त्रिपाठी		

सं०	रचना	रचिता	रचनाकाल (संवत्)	विशेष
३८	सेलेक्शन्स फ्रॉम हिंदी लिटरेचर छ भाग	सीताराम बी. ए.	१९७८- १९८२	
३९	संतबानी माला	बालेश्वरप्रसाद बी. ए. 'अधम'		
४०	खोज की रिपोर्ट	काशी नागरी प्रचारिणी सभा की	१९५७-७९	कवियों के परिचय तथा उद्धरण

इस प्रकार साधनों पर विचार कर लेने पर अब देखना है कि हिंदी साहित्य के अब तक कितने इतिहास लिखे जा चुके हैं। आश्चर्य तो यह है कि इतिहास की साहित्येतिहास कोटि में जो ग्रंथ सबसे प्राचीन अब तक प्राप्त हुआ है वह एक विदेशीय विद्वान का लिखा है और विदेशीय भाषा ही में विदेशसे प्रकाशित हुआ है। इस पुस्तक का नाम 'इस्वार द ला लितरात्योर इंदुई एं इंदुस्तानी' है और लेखक का गासाँ द तासी है। इसमें हिंदू और मुसलमान कवियों तथा लेखकों का रोमन वर्णानुक्रम से गासाँ द तासी परिचय, ग्रंथों का नाम-निर्देश तथा उद्धरण फ्रेंच भाषा में दिए गए हैं। प्रथम संस्करण दो भागों में क्रम से सन् १८३९ तथा सन् १८४६ में निकला और द्वितीय संस्करण तीन भागों में सन् १८७१ में प्रकाशित हुआ। इसके अनंतर सं० १९२९ में भाषा-काव्य संग्रह महेशदत्त प्रकाशित हुआ, जिसे महेशदत्त शुक्ल ने संगृहीत किया था। इसमें जीवनी, समय आदि सहित उद्धरण दिए गए हैं तथा शब्दकोष भी अंत में लगाया

गया है। इसके बाद प्रसिद्ध शिवसिंह सरोज शिवसिंह सेंगर तैयार किया गया, जिसमें पहले अक्षरानुक्रम से एक सहस्र कवियों के परिचय, समय, ग्रंथ आदि दिए गए हैं और उसके बाद उसी क्रम से उनकी रचनाओं से उद्धरण दिए गए हैं। इसी ग्रंथ के आधार पर डा० सर जार्ज ए० ग्रियर्सन ने 'मॉडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान' सन् १८८६ ई० में तैयार किया, जिसमें कालविभाग करते हुए सामयिक विशेषताओं का कुछ निर्देश किया गया है तथा कुछ कवियों की आलोचना भी है। इन्होंने भाषा के इतिहास पर भी विशेष लिखा है। भारतेंदु जी ने भी 'हिंदी भाषा' एक लेख लिखा और बाबू बालमुकुंद गुप्त ने भी हिंदी साहित्य का एक छोटा इतिहास लिखा। इसीके अनंतर 'विनोद' का समय आता है जो 'मिश्र-त्रय' की साहित्यिक ख्याति का प्रधान स्तंभ है और जिसका मुख्य आधार खोज की रिपोर्टें हैं।

पं० श्यामबिहारी मिश्र और पं० शुक्रदेवबिहारी मिश्र-त्रय मिश्र प्रायः छ वर्ष तक उक्त खोज के निरीक्षण रहे और दो त्रैवार्षिक रिपोर्टें लिखीं। ये दो सज्जन पं० गणेशबिहारी मिश्र के साथ कई कवियों पर सरस्वती में आलोचनात्मक लेख लिख चुके थे और सभा ने इनसे हिंदी साहित्य का इतिहास लिखने का प्रस्ताव भी किया था अतः उक्त साधनों की सहायता से इन्होंने सन् १९११ में हिंदी नवरत्न नामक एक ग्रंथ प्रकाशित कराया, जिसमें हिंदी साहित्य के नौ उच्चतम कवियों की आलोचनायुक्त जीवनियाँ तथा काफी उद्धरण दिए गए हैं। इसके कई संस्करण हो चुके हैं। इसीके डेढ़ वर्ष बाद 'विनोद' तीन भागों में प्रकाशित

हुआ। इसमें वर्तमान काल के कवियों तथा लेखकों का विवरण सम्मिलित है और पहिले पहल काल विभाग कर तथा कवियों की श्रेणियाँ बनाकर और मुख्य मुख्य पर आलोचनाओं का समावेश कर साहित्येतिहास की बहुत कुछ अभाव-पूर्ति की गई है। इसका परिवर्द्धित तथा संशोधित द्वितीय संस्करण चार भागों में सं० १९८४ तथा बाद में प्रकाशित हुआ है। बाबू श्यामसुंदरदास ने सं० १९६६ व सं० १९७१ में कोविद-

रत्नमाला दो भागों में लिखा, जिसमें अस्सी श्यामसुंदरदास कवियों तथा लेखकों के परिचयात्मक इति-

वृत्त दिए हैं। इसके अनंतर सं० १९८१ में इनका 'हिंदी भाषा का विकास' अलग पुस्तकाकार निकला। यह पहिले हिंदी शब्दसागर की भूमिका में प्रकाशित हो चुका था। इसी वर्ष 'भाषा विज्ञान' पुस्तक भी प्रकाशित हुई, जिसके दो वर्ष पहिले 'साहित्यालोचन' निकल चुका था। उक्त पुस्तकों के बाद सं० १९८७ में 'हिंदी भाषा और साहित्य' नामक वृहत् इतिहास निकला। इसमें कवियों की रचनाओं से उद्धरण नहीं दिए गए हैं पर आलोचना काफी है। ललित कलाओं पर भी एक अध्याय बढ़ाया गया है। इसका दूसरा संस्करण भी सं० १९९४ में प्रकाशित हुआ है। हिंदी शब्द सागर की भूमिका में पं० रामचंद्र शुक्ल द्वारा लिखित हिंदी साहित्य का इतिहास सं० १९८४ में प्रकाशित हुआ, जिसे

रामचंद्र शुक्ल सभा ने अलग पुस्तकाकार सं० १९८६ में

प्रकाशित किया और जिसका दूसरा परिवर्द्धित संस्करण सं० १९९७ में निकला। इसमें उद्धरण भी काफी हैं और काव्य-धाराओं का विवेचन करते हुए कवियों का वर्तमान काल की आलोचनात्मक दृष्टिकोण से महत्व दिखलाने

का स्तुत्य प्रयास है। पूर्ण रूपेण इतिहास कहलाने योग्य यही प्रथम रचना है। इसके पहिले दो संक्षिप्त ग्रीष्म, के इतिहास एडविन ग्रीष्म तथा 'के' साहबों का क्रमशः सं० १९७५ तथा सं० १९७७ में प्रकाशित हो चुका था, जिनमें संक्षेप में बिना उद्धरणों के साहित्य का परिचय दिया गया है। इनमें द्वितीय प्रथम से अधिक वैज्ञानिक रीति से लिखा गया है। सं० १९८८ में और भी दो प्रकांड हिंदी साहित्य के इतिहास लिखे गए। पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' जी ने पटना विश्वविद्यालय में 'हिंदी भाषा और उसके साहित्य का विकास' पर व्याख्यान दिया था, जो पुस्तकाकार सं० १९९१ में प्रकाशित हुआ था। यह ७१९ पृष्ठों में पूर्ण हुआ है और इसमें साहित्य का विकास तथा उसकी आलोचना सार गर्भित है। 'हिंदी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास' उसी वर्ष सं० १९८८ में लाहौर से प्रकाशित हुआ, जिसके लेखक पं० सूर्यकांत त्रिपाठी एम० ए० व्याकरण-तीर्थ हैं। यह छ सौ पृष्ठों में पूरा हुआ है। इसमें हिंदी के कवियों के विषय में दूसरों की सम्मति का अधिक संकलन है क्योंकि लेखक महोदय संस्कृत के विद्वान हैं। अंग्रेजी साहित्य के भावों के साथ भी यत्र तत्र तुलना करते हुए समझाने का प्रयास किया गया है। सं० १९८८ में पं० रामशंकर शुक्ल 'रसाल' एम० ए० का 'हिंदी साहित्य का इतिहास' प्रकाशित हुआ, जो पृष्ठ संख्या में ७७०+५३ होने से सबसे बड़ा गया है। इस पर उद्धरण भी नहीं दिए गए हैं। लेखक का निजी मंतव्य भी कहीं रसाल स्पष्ट नहीं है और विशेष वैज्ञानिक रूप से भी नहीं लिखा गया है। यह अवश्य है कि सभी

ज्ञातव्य बातों का एकत्रीकरण हो गया है इसलिए मननशीलों ही के काम का है। सं० १९९१ में पं० कृष्णशंकर शुक्ल एम०

ए० ने 'आधुनिक हिंदी-साहित्य का इतिहास' कृष्णशंकर शुक्ल लिखा है, जो ४५३ पृष्ठों में समाप्त हुआ है।

इसमें मुख्यतः भारतेंदु-काल से लेकर वर्तमान समय तक के साहित्य की विवेचना विस्तार के साथ की गई है। सं० १९९५ में बाबू रामकुमार वर्मा एम० ए० का 'हिंदी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' का प्रथम भाग प्रका-

शित हुआ, जो ७६९ पृष्ठों में पूर्ण हुआ है।

रामकुमार वर्मा इस भाग में आरंभ से साहित्य के भक्तिकाल तक का इतिहास आया है और बचा अंश दूसरे भाग में स्यात् पूरा किया जायगा। यह पहिले के लिखे गए इतिहासों को पूर्णतया अध्ययन कर तथा नई निजी ज्ञान-बीन के साथ लिखा गया है। बहुत सी ज्ञातव्य बातों का समावेश किया गया है और लेखक ने उन्हें वाकायदा सजाने में भी अच्छा प्रयास किया है। रचनाओं से कुछ-कुछ उद्धरण भी यत्र-तत्र दिए गए हैं। दो वर्ष हुए कि 'हिंदी नाट्य साहित्य' प्रकाशित हुआ है, जिसमें तीन सौ पृष्ठों में हिंदी में प्राप्त नाटकों का सविस्तर विवरण दिया गया है। 'हिंदी के उपन्यास' नामक एक पुस्तक मुं० शिवनारायण जी ने इधर ही लिखी है और दूसरी पुस्तक 'हिंदी के सामाजिक उपन्यास' पं० ताराशंकर पाठक ने लिखी है।

पं० शुक्रदेवबिहारी मिश्र की एक पुस्तक सं० १९९१ में प्रकाशित हुई है, जिसका नाम मुखपृष्ठ पर अंग्रेजी में 'कौन्ट्री-न्यूशन ऑव हिंदी लिटरेचर टु इंडियन हिस्ट्री' लिखा है, जिसके नीचे उसका हिंदी अर्थ 'भारतीय इतिहास पर हिंदी

साहित्य का प्रभाव' दिया है। भीतर के मुख पृष्ठ पर 'हिंदी साहित्य और इतिहास' दिया है। तीनों भिन्न भिन्न अर्थ प्रगट करते हैं, इस कारण इसका उल्लेख अंत में किया गया है। इसमें ६८ पृष्ठ तक 'भारतीय इतिहास का सूक्ष्म डोर' दिखलाया गया है और २३६ पृष्ठों में हिंदी साहित्य का इतिहास है। पृष्ठ १०२ पर मुक्ताबाई के पिता ज्ञानेश्वर लिखे गए हैं, पृष्ठ १०७ पर टॉड के आधार कर्णीदान कुरनिधान हो गए हैं आदि भूलें चिंतनीय हैं। यह भी पटना विश्वविद्यालय में दिए हुए व्याख्यान का प्रकाशन है

इन बड़े-बड़े इतिहास-ग्रंथों के सिवा कई छोटे-छोटे भी इतिहास निकल चुके हैं जिनकी नीचे तालिका दे दी जाती है।

सं०	नाम	रचता	रचना काल सं.	विशेष
१	गोरखपुर विभाग के कवि	मन्नेन द्विवेदी गज-पुरी बी० ए०	१९६६	१६ कवि २ कवियित्री का वर्णन, १७ पृष्ठों में।
२	हिंदी जैन साहित्य का इतिहास	नाथूराम प्रेमी	१९७३	निबंध
३	गत ५० वर्षों में बिहार में हिंदी की दशा	शिवनंदनसहाय	१९७७	सूचीमात्र •
४	हिंदी का संक्षिप्त इतिहास	रामनरेश त्रिपाठी	१९८०	कविताकौमुदी की भूमिका 'हिंदी और जैन' आदि से लेखों का संग्रह, काल विभाग आदि नहीं है।
५	हिंदी	बद्रीनाथ भट्ट बी० ए०	१९८१	४५ पृष्ठ भाषा पर ४१ पृष्ठ साहित्य पर
६	हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	रमाशंकर प्रसाद एम० ए०, एल-एल० बी०	१९८७	पृष्ठ संख्या ३१४
७	हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	नंददुलारे वाजपेयी एम० ए०	१९८८	पृष्ठ सं० ११७ बाबू श्याम-सुंदरदास के ग्रंथ का संक्षेप

सं०	नाम	रचिता	रचना- काल सं.	विशेष
८	हिंदी साहित्य के इति- हास का उपोद्घात	मुंशीराम शर्मा एम.ए.	१९८८	१२४ पृष्ठ
९	साहित्यप्रकाश	रामशंकर शुक्ल 'रसाल' एम० ए०	"	पृष्ठ संख्या २१९ बड़े संस्करण का संक्षेप
१०	साहित्य परिचय	"	"	संख्या ६ का संक्षेप
११	हिंदी साहित्य का इतिहास	ब्रजरत्नदास बी० एम० एल-एल० बी०	१९८६	पृष्ठ संख्या २२०
१२	हिंदी साहित्य का सुबोध इतिहास	गुलाबराय एम० ए०	१९६४	पृष्ठ संख्या २६८
१३	हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	गोपाललाल खन्ना एम० ए०	१९६५	पृष्ठ सं० २०४ बाबू श्याम- मुंदरदास के ग्रंथ का संक्षेप
१४	खड़ी बोली का संक्षिप्त परिचय	रामनरेश त्रिपाठी	१९६७	पृष्ठ संख्या १२३, कवित की प्रगति का विवेचन

इस प्रकार देखा जाता है कि हिंदी-साहित्य के इतिहास लिखने में हिंदी-भाषी तथा यूरोपियन विद्वानों ने बराबर प्रयत्न किए हैं और करते भी जा रहे हैं; पर देखा जाता है कि उनमें ब्रजभाषा, अवधी, डिंगल आदि ही के साहित्य का विशेष रूप से विवरण दिया गया है, खड़ी बोली हिंदी अर्थात् राष्ट्रभाषा की ओर ध्यान भी नहीं दिया गया है। इसी कारण इसका अभाव मानकर इसके विरोधी दलवाले इसके विषय में अनेक भ्रामक बातें फैला कर अपना पक्ष समर्थन करने की चेष्टा किया करते हैं। ऐसी अवस्था में यह आवश्यक था कि राष्ट्रभाषा हिंदी को तथा उसमें प्राप्त, कम या अधिक, साहित्य को लेकर भी कुछ लिखा जाय, पर ऐसा अब तक हुआ नहीं और न किसी विद्वान साहित्य इतिहास-लेखक ने इस ओर दृष्टि दी। अतः इसी अभाव को दृष्टि में रखकर हिंदी

तथा उर्दू के साहित्यों के इतिहास लिखते समय ऐसा साधन एकत्र करता जाता था, जिससे राष्ट्रभाषा हिंदी का साहित्येतिहास लिखा जा सके।

ऐसा इतिहास न लिखे जाने का एक कारण भी ज्ञात होता है और वह है हिंदी तथा उर्दू का संघर्ष। जो विद्वान् उस संघर्ष में हिंदी का पक्ष लेकर खड़े हुए वे उसीके तर्क-वितर्क, वाद-विवाद, लेख-पुस्तिका आदि लिखने में व्यस्त रह गए और जो उस संघर्ष को उपेक्षा की दृष्टि से देखते रहे वे उसी पुरानी प्रथानुसार कार्य करने में दत्तचित्त रहे। स्वतः उस संघर्ष में न पड़कर पर उन सब वाद-विवादात्मक साहित्य का मनन करते हुए इस अभाव की ओर दृष्टि आकर्षित हुई कि जिसके लिए यह सब संघर्ष चल रहा है, उसकी इतिवृत्ति ही का पूरा पता नहीं है और न वह अब तक लिखा ही गया है, जिससे अनेक भ्रमपूर्ण बातों का पूर्णतया समाधान हो सके।

अस्तु, उक्त विचारों ही से यह संक्षिप्त साहित्येतिहास तैयार किया गया है और आशा है कि कोई सुप्रसिद्ध साहित्य मर्मज्ञ विद्वान् अब इस ओर कृपा दृष्टि कर इस इतिहास को आगे चलकर सम्यक् रूप देंगे पर तब तक 'अभावे शालिचूर्णं वा' न्यायेन इसको सहृदय हिंदी प्रेमी पाठकगण यदि अप-नाएँगे तो मेरा प्रयास सफल हो जायगा।

रथयात्रा,
१६६८ }

{ विनीत—
ब्रजरत्नदास

खड़ी बोली हिंदी साहित्य का इतिहास प्रथम प्रकरण

प्राचीन भाषाएँ—आधुनिक राष्ट्रभाषा हिंदी—उसका विकास

भाषा ही के द्वारा मनुष्य अपने विचार दूसरों पर प्रकट करता है या कर सकता है। यद्यपि मूक या मौखिक संकेतादि तथा मुख-विकृति, भावभंगी, कहने के ढंग आदि से विषय-प्रवेश भी विचार प्रकट करने में सहायता मिलती है और कभी-कभी वे पूर्णतया व्यक्त भी हो जाते हैं पर वे उक्त परिभाषा के अंतर्गत तब तक नहीं आते जबतक उन्हें शाब्दिक रूप नहीं दे दिया जाता, जैसे ऊँह, आह, वाह इत्यादि। भाषाओं के नामकरण अधिकतर स्थान या जाति विशेष के नाम पर ही किया जाता है और इनमें प्रकृत्या समय पाकर बहुत कुछ परिवर्तन होता रहता है। जिस देश या जाति में अनेक उलटफेर तथा विप्लवादि के कारण जितने अधिक हेर फेर हुए हैं, उसका राजनैतिक इतिहास उतनाही अधिक मनोरंजक तथा आकर्षक हो उठा है और साथ ही साथ उक्त कारण से उस देश या जाति की भाषा तथा साहित्य का इतिहास भी समानरूपेण मनोग्राही हो गया है। भारतवर्ष तथा भारतीय भाषाओं के इतिहास के लिए

यह विशेष रूप से लागू होता है क्योंकि इस विशाल देश ने सहस्रों वर्ष के अपने लंबे जीवन में बड़े बड़े परिवर्तन देखे हैं, जो किसी भी इतिहास-प्रेमी से छिपा नहीं है। राजनैतिक परिवर्तनों का प्रभाव धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक स्थितियों पर पड़ते हुए वहाँ की भाषाओं तथा साहित्यों पर भी अपनी पूरी छाप छोड़ता जाता है। भारत में अनादिकाल से बाहर से आती हुई जातियों के संसर्ग से भाव परिवर्तन होते रहे हैं, विचारों के आदान-प्रदान में नए-नए शब्दों के संचयन होते गए तथा उच्चारण में विभिन्नता आती रही, अतः भारतीय भाषाओं में, प्राचीन काल से वर्तमान काल तक की भाषाओं में, तत्त्वतः एकता होते भी जो बहुत अधिक परिवर्तन हो गया है, उसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। अब ये परिवर्तन किस प्रकार होते रहे हैं, इनका तथ्य जानना ही भाषा के क्रमिक विकास का समझना है।

भारतवर्ष की जिस प्राचीनतम भाषा का अब तक पता चला है, वह ऋग्वेद में प्राप्त है पर इससे पहिले यहाँ की भाषा का क्या रूप था, इसका पता देने का, कोई भी साधन अबतक प्राप्त नहीं है। ऋग्वेद की रचना बहुत लंबे काल में तथा अनेक स्थानों में हुई है और जब उसकी कुछ ऋचाएँ कंधार-नरेश दिवोदास का पता देती हैं तब कुछ अन्य सिंधु नद के तटस्थ बसे आर्यों के राजा सुदास का उल्लेख करती हैं। इन दोनों नरेशों के समयों में बहुत भिन्नता है। तात्पर्य यह कि ऋग्वेद की ये कुल ऋचाएँ तथा मंत्र एक ही समय तथा एक ही स्थान में नहीं बनी थी और जब इन सबका संपादन किया गया तब इनके रचनाकाल या स्थान पर दृष्टि नहीं रखी गई। यदि रखी जाती तो सुगमता से प्राचीनतम मंत्रों में उस भाषा का नमूना सुलभ हो जाता। संपादन कार्य में भाषा-

आर्य-भाषाएँ

विभेद दूर करने का भी प्रयास किया गया था पर तब भी अब तक उसमें विभेद ध्यान देने से दिखलाई पड़ते हैं।

आर्यगण पहिले ही के समान क्रमशः और भी चारों ओर फैलने लगे और जहाँ जहाँ वे गए वहाँ के आदिम निवासियों से संपर्क बढ़ने पर भाषा में भी मिश्रण होता गया और इस प्रकार भाषा में विपमता के बढ़ने से जब अनेक स्थानों के निवासियों को आपस की बात समझने में कठिनाई पड़ने लगी तब लोगों को एक सर्वबोधगम्य सार्वदैशिक भाषा का अभाव खटकने लगा और अपनी ही प्रचलित भाषाओं का संस्कार कर, शब्दानुशासन कर, एक टकसाली भाषा बनाई गई, जो अपनी एकरूपता के कारण समग्र देश में समझी जाने योग्य होगई। यही सुधरी सँवारी हुई भाषा संस्कृतावाक् कहलाई, जो साहित्य तथा शिष्ट समाज में उपयोग में लाई जाने लगी। इस शिष्ट भाषा के पहिले नाम संस्कृतावाक् का विशेषण शब्द संस्कृत वाद में स्वभावतः 'कम सखुन' मानवों द्वारा उस भाषा के लिए रूढ़ि कर दिया गया। संस्कृत की, इस सार्वदैशिकता या राष्ट्रीयता का प्रमाण वाल्मीकीय रामायण के समान प्राचीन तथा प्रामाणिक ग्रंथ में मिलता है। सुंदरकांड के ११ वें सर्ग में हनुमानजी का भाषा विषयक विचार दिया गया है, जिनकी विद्वत्ता तथा भाषा-ज्ञान की प्रशंसा स्वयं राम-चंद्र द्वारा किष्किंधा कांड में की गई है। वह कहते हैं कि ❀ इन राक्ष-

* निशाचरीणां प्रत्यक्षमक्षमं चाभिभाषितुम् ।

‘कथं नु खलु कर्तव्यमिदं कृच्छ्रगतो ह्यहम् ॥

अहं ह्यतितनुश्चैव वानरश्च विशेषतः ।

वाचं चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम् ॥

यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम् ।

रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति ॥

सियों के सामने किस प्रकार से सीता से बातें करूँ। यदि द्विजाति की संस्कृत में कुछ कहता हूँ तो सीता मुझे रावण समझकर भयभीत होंगी इसलिए मानुषी बोलना चाहिए। तात्पर्य यह है कि संस्कृत तीन सहस्र वर्ष से बहुत पहिले से समग्र भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा थी, जो अयोध्या से किष्किंधा तथा लंका तक शिष्टों द्वारा बोली तथा समझी जाती थी।

समय परिवर्तनशील है, संस्कृत का भी वह समय नहीं रह गया। यह शिष्ट भाषा मातृभाषा का स्थान कभी न ले सकी थी और सदा विशेष कष्ट-श्रमसाध्य भी रही। इस कारण इस संस्कार के अनंतर भी प्राचीन भाषाएँ, जिनमें प्रांतिक वैषम्य आ चुके थे, अपने-अपने स्थानों तथा प्रांतों में पनपती रहीं और उन सबका स्वतंत्र विकास होता रहा। इस प्रकार भारतवर्ष में अनेक प्रांतीय भाषाएँ या बोलियाँ इस वैषम्य के कारण बन गईं और उनका प्रचार स्थान विशेष में अच्छी प्रकार होने लगा। साथही धार्मिक विप्लवों के कारण धर्म-गुरुओं तथा उनके प्रचारकों को स्वमत-प्रवर्तन के लिए अपने-अपने उपदेश जनसाधारण की बोलियों ही में देने को विवश होना पड़ा और इसी कारण धर्मग्रंथ भी उन्हीं भाषाओं में लिखे गए। बौद्ध तथा जैन धर्म के ग्रंथ इन्हीं भाषाओं में लिखे गए और इस कारण इन भाषाओं की विशेष उन्नति हुई तथा वे भी समय पाकर साहित्यिक हो उठीं। इनके भी व्याकरण बन गए और ये भी अनुशासित हो गईं। मूल भाषा का संस्कार कर जो भाषा बनी वह तो संस्कृत कहलाई पर वह स्वतः तथा उसके विभेद प्रकृत स्वरूप ही रखने के कारण उसी वजन पर प्राकृत कहलाई। प्राचीनतम प्राकृत 'पाली' कहलाती है, जिसका रूप अशोक के लेखों तथा बौद्ध और जैन धर्मग्रंथों

में अबतक सुरक्षित है। यह ढाई सहस्र वर्ष पहिले की भाषा है और इसे मागधी भी कहते हैं। बौद्ध इसे 'सा मागधी मूलभाषा' कह कर इसी को आदि भाषा मानते हैं पर यह मागधी अर्वाचीन मागधी से भिन्न है।

अस्तु, इस प्राचीन प्राकृत 'पाली' तथा उसके विभेदों के अनंतर कुछ समय बाद साहित्यिक प्राकृतों का समय आता है, जिनमें महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी तथा अर्द्ध मागधी प्रमुख हैं। इनमें भी प्रथम ही प्रधान थी और समस्त राष्ट्र में मान्य होने के कारण इसका इस प्रकार नामकरण हुआ था। शौरसेनी का व्रज-मंडल में और मागधी का मगध, वर्तमान विहार-प्रांत, में प्रचार था। इन दोनों के बीच कोशल प्रांत में अर्द्ध मागधी बोली जाती थी। पैशाची या भूतभाषा भी प्राकृत ही है।

प्राकृत-काल के अनंतर अपभ्रंश का समय आता है। प्राकृत भाषाएँ भी जब साहित्यिक हो गईं, उनके व्याकरण बन गए तथा अनुशासित हो जाने के कारण शिष्ट समाज की अपरिवर्तनशील संपत्ति मात्र रह गई और जनसाधारण में बोली जानेवाली भाषाओं ने परिवर्तनों के कारण भिन्न रूप धारण कर लिया तब इन भाषाओं को प्राकृत रूप से भ्रष्ट हो जाने के कारण अपभ्रंश (अपभ्रष्ट या अबहट्ट) का नाम दे दिया गया। यह नामकरण छठी शताब्दि ईसवी में हो चुका था और इसमें भी कुछ रचना होने लगी थी। अवश्य ही इसके कई शताब्दि पहिले अपभ्रंशों के विकास का आरंभ हो चुका रहा होगा। भास तथा कालिदास की रचनाओं में इस अपभ्रंश भाषा का कुछ आभास मिलता है, जिससे ज्ञात होता है कि ईसा की दूसरी शताब्दि ही से प्राकृत भाषाओं में अपभ्रंश का कुछ न कुछ रूप आने लग गया

• अपभ्रंश

था। यह नामकरण तो बाद को हुआ होगा, जब इस प्रकार की भाषा स्पष्टतः विभिन्न होकर काम में लाई जाने लगी होगी और यह अपभ्रंश नाम ठीक उसी प्रकार पहिले उपयोग में लाया गया होगा, जिस प्रकार आजकल अशिक्षितों की बोलचाल की भाषा के लिए गँवारू (ग्रामीण) शब्द प्रयुक्त होता है।

अपभ्रंश में भी स्थान तथा जाति विशेष के कारण अनेक भेद थे अर्थात् जितनी प्राकृत भाषाओं से वे भ्रष्ट होकर अपभ्रंश रूप में आईं उतने ही उनके भी भेद हो गए। रुद्रट लिखते हैं—

प्राकृत संस्कृत मागध पिशाचभाषाश्च शौरसेनीच ।

षष्ठोऽत्र भूरिभेदो देशविशेषादपभ्रंशः ॥

पतंजलि ऋषि ने महाभाष्य में लिखा है—भूयांसो ह्यपशब्दाः अल्पीयांस शब्दाः एकैकस्य शब्दस्य बहवोऽपभ्रंशाः तद्यथा गौरित्यस्य गावी गोणी गोता गोपोतलिका इत्येवमादयोऽपभ्रंशाः । तात्पर्य इतना ही है कि एक शिष्ट (संस्कृत) शब्द के लिए अनेक अपभ्रष्ट (अपभ्रंश) शब्द भिन्न-भिन्न प्रांतों में प्रचलित हो गए थे जैसे गौ के लिए गावी, गोणी आदि। गावी शब्द जब बंगाला भाषा में गामी के रूप में मिलता है तब गोणी के रूप में आज भी सिंधी भाषा में प्रचलित है। अर्थात् भारत के भिन्न-भिन्न प्रांतों में प्राकृत के समान ही अपभ्रंश भी अनेक रूपों में प्रचलित हो गया था।

समय पाकर ये अपभ्रंश भी साहित्यिक होते ही वैयाकरण-केसरियों द्वारा अनुशासित कर दी गईं पर उनके

माध्य भाषाओं प्रयत्न सहज स्वाभाविक प्रवाह को न रोक सके।

अपने प्रांतिक भेदों के साथ वे भिन्न भिन्न मार्ग पर चल पड़ीं तथा 'डबल' अपभ्रष्ट होने लगीं। ये भाषाएँ, जो कुछ समय बाद ही अपना-अपना स्पष्ट भिन्न रूप धारण करने लगीं। जब एक ओर अपभ्रंश से मिलती जुलती थीं तब दूसरी ओर

आधुनिक भाषाओं से मेल खाती थीं। हिंदी भाषा से मिलती हुई इस प्रकार की भाषा को कुछ विद्वानों ने 'पुरानी हिंदी' नाम दिया है, गुजराती भाषा की ऐसी भाषा को जूनी गुजराती कहा गया है तथा इसी प्रकार अन्य भाषाओं के नामकरण हुए होंगे। सिद्धाचार्यों के जो प्राचीन ग्रंथ इस भाषा में मिले हैं, उनमें तथा उन पर प्राप्त संस्कृत टीका में इस प्रकार की भाषा को सांध्य भाषा लिखा है अर्थात् अपभ्रंश तथा आधुनिक भाषाओं के संधिकाल की भाषा होने से इनका ऐसा नामकरण हुआ है।

उक्त सांध्य भाषाओं में प्रांतिक विभेदों के होते भी इतनी एकरूपता तब भी थी अर्थात् इतनी स्पष्टतः विभिन्न वे नहीं हो चुकी थीं कि वे अलग-अलग आधुनिक भाषाओं की जननी बतलाई जा सकें। उनका रूप एक दूसरे से इतना मिलता हुआ था कि उन्हें एक भाषा भी कहा जा सकता है अर्थात् जितनी विभिन्नता उनमें थी उससे अधिक नहीं तो कम एकरूपता भी नहीं थी। ऐसी अवस्था में एक प्रांतिक सांध्य भाषा से उदाहरण लेकर आधुनिक भाषाओं के साहित्य के इतिहास लेखकगण उसे अपनी भाषा की जननी कहते हुए उसी से अर्थात् अपनी भाषा की जननी से सभी अन्य भाषाओं को उत्पन्न कह डालें या उसे समग्र भारत-वर्ष की तत्कालीन एक मात्र प्रचलित भाषा होने की घोषणा कर दें तो कोई आश्चर्य नहीं है पर यह उनका कोरा भ्रम मात्र है। कुछ लेखकों ने ऐसा किया भी है। उदाहरणार्थ इस भाषा के निम्न-लिखित दोहे को या वैसी ही अन्य रचनाओं को लेकर जब बंगाल के एक धुरंधर विद्वान् उसे बंगला की जननी मानते हैं तब वैसे ही उदाहरणों को देकर डिंगल भाषा के एक विद्वान् इतिहासकार ने उससे अपनी भाषा को निर्गत कहते हुए लिख डाला है कि वह सारे भारत में पहिले व्यवहृत होती थी। स्वर्गीय पंडित चंद्रधर जी

गुलेरी ने 'पुरानी हिंदी' लेख में उक्त दोहे को अन्य उदाहरणों के साथ उद्धृत कर वर्तमान हिंदी का विकास दिखलाया है। दोहा इस प्रकार है—

भल्ला हुआ जो मारिया बहिणि महारा कंतु ।

लजेजं तु बयंसिअहु जइ भग्गा घर एंतु ॥

प्राचीन संस्कृत भाषा के कई ग्रंथों में संस्कृत, प्राकृत के साथ साथ देश भाषा का भी उल्लेख मिलता है। नाट्यशास्त्र, नारदस्मृति, काव्यादर्श आदि में प्राचीन भाषाओं के साथ इसको भी स्थान दिया गया है पर उससे किस खास भाषा से तात्पर्य है, यह नहीं कहा जा सकता। दंडी कहते हैं—तद्भवस्तत्समो देशीत्यनेकः प्राकृतक्रमः। साथ ही वह यह भी कहते हैं कि 'शास्त्रे तु संस्कृतादन्यदपभ्रंशतयोदितम्।' अर्थात् संस्कृत से भिन्न अन्य सभी भाषाओं को शास्त्र में अपभ्रंश कहते हैं और तद्भव तथा तत्सम शब्दों के अनुसार देशीय भाषाओं के अनेक भेद हैं। ये भाषाएँ अपने-अपने प्रांतों अर्थात् स्थान विशेष में या जाति विशेष द्वारा बोली जाती थीं। इन्हीं की विकसित भाषाएँ आधुनिक रूप धारण कर इस समय व्यवहार में आ रही हैं।

आधुनिक भाषाओं का विवेचन कर विद्वानों ने उसके दो मुख्य विभाग किए हैं—अंतरंग तथा बहिरंग। पहिले के आए हुए आर्यों की भाषा से संबद्ध भाषाएँ मध्यदेश में बोली आधुनिक भाषाएँ जाती हैं और उनके बाद के आए हुए आर्यों की भाषा से संबद्ध भाषाएँ उसके चारों ओर सीमांत प्रदेशों में प्रयुक्त होती हैं। इन दो विभागों में पहिले उच्चारण में भेद बतलाया गया है, जैसे अंतरंग भाषा वाले दंत्य स का जैसा शुद्ध उच्चारण करते हैं वैसा बहिरंग वाले नहीं कर सकते। वे कुछ-कुछ श या च तथा स मिश्रित का सा उच्चारण करते हैं और

कहीं-कहीं एकदम स के स्थान पर ह् कर देते हैं। संज्ञाओं के रूप में कुछ भेद पड़ गया है। अंतरंग भाषाओं में विभक्तियाँ काम में लाई जाती हैं पर बहिरंग में बहुत कम। अंतरंग भाषाओं की भूतकालिक क्रिया से उनका पुरुष नहीं मालूम पड़ता पर बहिरंग से वचन तथा पुरुष दोनों स्पष्ट हो जाते हैं। ये भेद अत्यंत सूक्ष्म हैं और पूर्ण रूपेण नियमित भी नहीं हैं, इसलिए ये विभेद विवादग्रस्त हैं। अंतरंग में पश्चिमी हिंदी, राजस्थानी, गुजराती तथा पंजाबी प्रधान हैं। इनके सिवा पूर्वी, पश्चिमी तथा मध्यवर्ती पड़ाई भाषाएँ हैं। बहिरंग विभाग में पूर्व की बिहारी, बंगाली, उड़िया तथा आसामी, दक्षिण की मराठी और पश्चिमोत्तर की सिंधी, कश्मीरी, लहँदा भाषाएँ हैं। पूर्वी हिंदी वह है, जिसमें दोनों विभेदों की विशेषताएँ मिलती हैं। इनमें से हिंदी से संबंध रखने वाली, विशेषतः खड़ी बोली, भाषा पर विचार किया जायगा।

पश्चिमी हिंदी प्रायः समग्र हिंदुस्तान अर्थात् उत्तरी भारत में बोली जाती है। इसका विस्तार उत्तर में हिमालय से लेकर विंध्याटवी के पार मध्यप्रदेश के उत्तरी भाग तक

पश्चिमी हिंदी

और पश्चिम में जैसलमेर से पंजाब तक लगाकर पूर्व में आधे बंगाल तक है। इस विस्तृत भूमि-भाग में खड़ी बोली हिंदी, ब्रजभाषा, कन्नौजी, बुंदेली आदि तथा पूर्वी हिंदी भी बोली जाती है पर प्रधानता खड़ी बोली ही की है क्योंकि इसी में मुख्यतः शिक्षा-दीक्षा दी जाती है, साहित्य, पत्र पत्रिका आदि निकलती हैं और न्यायालयों में इसी का प्रचार है। वास्तव में यही प्रधान या राष्ट्रभाषा है तथा अन्य सब उसीकी विभाषाएँ कही जा सकती हैं। राजस्थानी, ब्रजभाषा, अवधी तथा बिहारी में काफी साहित्य प्रस्तुत है अतः ये भी पृथक् भाषाएँ मानी जाती हैं।

पश्चिमी हिंदी की पाँच प्रधान विभाषाएँ हैं—हिंदी, बाँगरू, ब्रजभाषा, कन्नौजी और बुंदेली। हिंदी को छोड़कर अन्य चार चार विशिष्ट स्थानों की भाषाएँ हैं पर हिंदी नाम में कुछ विशेषता है। यदि यह किसी स्थान विशेष के नाम पर

हिंदी

अभिहित समझी जाय तो वह स्थान हिंद अर्थात् समग्र उत्तरी भारत या पूरा भारतवर्ष मानना पड़ेगा और उसके राष्ट्रभाषा मान लिए जाने के कारण यह नाम सार्थक हो जाता है। वास्तव में इसका उद्गमस्थान दिल्ली-मेरठ के बीच तथा उसके आसपास चारों ओर के स्थान हैं और केवल हिंदी कहने से उस भाषा ही का स्पष्ट द्योतन नहीं होता था इस-लिए विशेषण लगाए गए तथा खड़ी बोली हिंदी, शुद्ध हिंदी, उच्च हिंदी (हाई हिंदी), हिंदुस्तानी या उर्दू-हिंदी कहा जाने लगा।

खड़ी बोली नाम का प्रयोग पहिले पहिल प्रेमसागर में लल्लूलाल जी ने तथा सदल मिश्र ने 'चंद्रावती' में किया है और अब इसका बहुत प्रचलन हो गया है। यह अवश्य ही है कि खड़ी बोली से खड़ी बोली हिंदी ही का अर्थ लिया जाता है, किसी अन्य भाषा से नहीं। मुसल्मानगण ने जब हिंदी का

साहित्य रचना में उपयोग करना आरंभ किया

खड़ी बोली

तब वे उसमें अपने छोड़े हुए देशों की भाषाओं के शब्द तथा भाव आदि का भी प्रयोग करने लगे और इसलिए उन्होंने इस मिश्रित भाषा का नाम रखता रखा, जिसका अर्थ मिली जुली या गिरी पड़ी है। ब्रजभाषाभाषी लल्लूलाल जी ने, जो उर्दूवाँ मुंशियों की सहकारता में काम कर रहे थे, और 'यामनी भाषा छोड़ दिल्ली आगरे' की बोली में ग्रन्थ रचना कर रहे थे, गिरी पड़ी रखते की बोली से यावनी शब्दावली निकालकर जिस भाषा में प्रेमसागर लिखा उसे रखते अर्थात् मिश्रित

या गिरी पड़ी बोली के वजन पर खड़ी बोली नाम दे दिया, जो नाम उनके बाद चल पड़ा। खरी (टकसाली, शुद्ध) से बिगड़ कर खड़ी शब्द बना है, यह कथन ठीक नहीं है क्योंकि लल्लूलाल जी की स्वतः छपवाई हुई सन् १८१० ई० की प्रेमसागर की प्रति में भी यह शब्द इसी रूप में वर्तमान है और यदि यह बिगड़ा हुआ रूप है तो उस काल के बहुत पहिले का हो सकता है, जिसके प्रयोग का अभी तक कुछ पता नहीं है।

खड़ी बोली हिंदी में तत्सम शब्दों का साहित्य-रचना में आधिक्य जब किया जाने लगा और नित्य-प्रयुक्त बोलचाल की भाषा से वह जब विशेष क्लिष्ट हो चली तब उस साहित्यिक हिंदी के लिए शुद्ध हिंदी नाम का भी प्रयोग होने शुद्ध या उच्च हिंदी लगा अर्थात् बोलचाल की भाषा से ग्रामीण या फारसी अरबी आदि अन्य भाषाओं के शब्दों का निराकरण कर उसका संशोधन किया गया। ऐसा होने से वह शुद्ध हो गई और साहित्य के काम में आने लगी पर साथही संस्कृत शब्दावली से युक्त होने के कारण उसके कुछ उच्च कोटि की हिंदी हो जाने से उसे अंग्रेज विद्वान् 'हाई हिंदी' कहने लगे, जिससे उसके लिए उच्च हिंदी नाम भी प्रयुक्त होने लगा।

यूरोप से यहाँ आनेवाले आरंभकाल के यात्रीगण तथा बाद में कंपनी आदि स्थापित कर यहाँ व्यापार करने हिंदुस्तानी वाले इस देश को इंड या इंडोस्तान लिखा करते थे और यहाँ की भाषा को इंडोस्तानी कहते थे।

ये इंड, इंडोस्तान तथा इंडोस्तानी शब्द हिंद, हिंदुस्तान या हिंदुस्तानी के ही रूपांतर हैं। इंड से इंडिया होगया और जिस हिंदुस्तानी से हिंदुस्तान के निवासी ही का तात्पर्य लिया जाता था उसका हिंदुस्तान की भाषा के अर्थ में प्रचलन हो गया। आश्चर्य

तो यह है कि प्रायः सभी यूरोपिनों को पहिले पहिल भारत के मलाबार तथा कारोमंडल तटों पर तथा बंगाल में बोली जाने वाली भाषाओं ही से काम पड़ा था पर उन सब ने हिंदी ही को इंडोस्तानी या हिंदुस्तानी नाम से याद किया। उन्हें स्यात् यही भाषा समग्र भारत में काम देने योग्य मिली और इसी से सारे भारत के नाम पर उसका नामकरण कर दिया। बाद को यह नाम मिटता जा रहा था पर अब पुनः इस पर राजनैतिक कारणों से जोर दिया जा रहा है।

उर्दू हिंदी ही की एक शाखा मात्र है और हिंदी वाक्यों में फारसी अरबी के तत्सम शब्दों के आधिक्य से उसका उर्दू रूप बन जाता है। यही भाषा दक्षिण में साहित्य के कार्य में आने पर

पहिले रेखता, दकिनी आदि कहलाई और बाद
 उर्दू-हिंदी को उत्तरी भारत में साहित्यिक रूप में प्रचलित हो
 जाने पर तथा उर्दु-मुअल्ला में उसका संस्कार

हो जाने पर उसका नामकरण उर्दू हो गया। सब कुछ संस्कार किया गया हो और अभी आगे और भी कुछ हो पर उर्दू हिंदी की एक विभेद मात्र तब तक रहेगी जब तक उसमें हिंदी के क्रियापद आदि बने रहेंगे। एक वाक्य लीजिए—मुकद्दमः हाजा हर आईनः काबिल इखराज है। उक्त वाक्य केवल 'है' के कारण उर्दू है और यदि उसके स्थान पर 'अस्त' रख दीजिए तो वह उर्दू नहीं रह जाता। यह 'है' हिंदी है, उर्दू नहीं और केवल इसी के कारण उक्त वाक्य में उर्दू का अस्तित्व माना जा सकता है। हिंदी में फारसी अरबी शब्दों तथा योजनाओं का आधिक्य 'सैकल पर सैकल' करते हुए इसी कारण हो रहा है कि वह इस रूप में ला दी जाय कि वह पहिचानी न जा सके और उर्दू-हिंदी से एक-दम भिन्न आकाशप्रदत्त कही जा सके पर वह असंभव है, जैसा कि

उदाहरणार्थ दिए गए वाक्य से स्पष्ट है। निष्कर्ष यही निकलता है कि उर्दू हिंदी ही का एक विभेद मात्र है, जिसमें हिंदी के कुछ शब्दों के स्थान पर फारसी अरबी के शब्द आदि बैठा दिए गए हैं। साहित्य की यह उर्दू अब इतनी दुरुह कर दी गई है कि उसे समझना साधारण पढ़े लिखे मुसलमानों के लिए ही दुष्कर हो रहा है और राजनैतिक कारणों से हिंदी तथा उर्दू का मेल कराने के लिए पुनः हिंदुस्तानी नाम से 'सरल उर्दू' का प्रचलन करने का प्रयास हो रहा है। पर इस हिंदुस्तानी का क्या रूप होगा यह नहीं कहा जा सकता। शंका होती है कि जल के समान सरल शब्द को भी इस हिंदुस्तानी में स्थान न मिल सके। हिंदुस्तानी एकडेमी, प्रयाग के एक जलसे में एक मुअल्लिम मौलवी को यह कहते हुए सुना था कि पानी से सरल शब्द के रहते हुए हिंदी वाले क्लिष्ट जल शब्द का प्रयोग करते हैं। ठीक ही है इनके लिए इनका यह कहना, पर इन्होंने हिंदीवालों के आबपाशी, आबखोरा, आबकारी, पेशाब आदि शब्दों के उपयोग पर कुछ न कहा यही आश्चर्य है। जो कुछ हो भाषा आपही आप बनती है, बनाई नहीं जाती, इतनी ही गनीमत है। अस्तु, हिंदी किसी भी नाम से पुकारी जाय पर मूलतः वह हिंदी ही रहेगी।

डा० सर जॉर्ज ग्रिअर्सन लिखते हैं कि 'लल्लूलाल ने डा० गिलक्रिस्ट की प्रेरणा से सुप्रसिद्ध प्रेमसागर लिखकर ये सब परिवर्तन किए थे। जहाँ तक गद्य भाग का संबंध है, वहाँ तक यह

ग्रंथ ऐसी उर्दू भाषा में लिखा गया था जिसमें हिंदी की व्युत्पत्ति के उन स्थानों पर भारतीय आर्य शब्द रख दिए गए थे जिन स्थानों पर उर्दू लिखनेवाले लोग फारसी शब्दों का व्यवहार करते हैं।' इनका तात्पर्य यह

था कि लल्लूलाल जी ने एक भाषा गढ़ी और उसे उर्दू से काँट

छाँटकर बनाया। यही आशय पं० चंद्रधर गुलेरी जी ने इस प्रकार प्रकट किया है कि 'उर्दू रचना में फारसी अरबी तत्सम या तद्भव निकालकर संस्कृत तत्सम या तद्भव रखकर हिंदी बना ली गई।' कैसी शुद्ध भ्रांति है और हुई है भाषाविज्ञान विशारदों को। इनमें किसी ने यह न बतलाया कि किस भाषा में फारसी-अरबी के शब्द रखकर उर्दू बनी थी और फिर उसमें से वे शब्द निकालकर संस्कृत शब्द रखे जाने से खड़ी बोली बन गई। इस भ्रम का एक कारण हिंदी भाषी साहित्यकारों की उदारता है, जिन्होंने फारसी अरबी शब्दों का अपने साहित्य में स्वागत किया था। चंद के समय से ऐसा होता आ रहा था और ब्रजभाषा तथा अवधी तक में ऐसा प्रयोग होता रहा। जब शुद्ध खड़ी बोली का आंदोलन हुआ और कुछ क्लिष्ट शब्द निकाले गए तो बस यह शोर मचाया गया कि उर्दू का हिंदी में से बहिष्कार हो रहा है, जिससे यह भ्रांति फैल गई। इसपर अधिक लिखना निरर्थक है क्योंकि आगे साहित्य के इस इतिहास से स्वयं स्पष्ट हो जायगा कि लल्लूलाल के तथा उर्दू साहित्य के रचनारंभ के कई शताब्दि पहिले खड़ी बोली हिंदी वर्तमान थी और उसमें रचनाएँ भी प्राप्त हैं तथा यह हेरफेर केवल एकही बार 'सलीस व शुश्तः उर्दू' बनाने के लिए किया गया था, दो बार नहीं। इतनी ही प्रसन्नता है कि प्रो० आज़ाद या किसी मुसल्मान लेखक ने ऐसा भ्रम नहीं उठाया। आज़ाद ने ब्रजभाषा से उर्दू की पैदाइश बतलाई है।

गुलेरी जी यह भी लिखते हैं कि "विदेशी मुसल्मानों ने आगरा दिल्ली सहारनपुर मेरठ की 'पड़ी' भाषा को 'खड़ी' बनाकर अपने लश्कर और समाज के लिए उपयोगी बनाया।" आपका तात्पर्य यह हुआ कि खड़ी बोली का मुसल्मानों ने पड़ी बोली से निर्माण किया अर्थात् वह पहिले थी ही नहीं। फिर कहते हैं कि

“वस्तुतः उर्दू कोई भाषा नहीं है, हिंदी की विभाषा है, किंतु ‘हिंदुई’ भाषा बनाने का काम मुसलमानों ने बहुत कुछ किया, उसकी सार्वजनिकता भी उन्हीं की कृपा से हुई, फिर हिंदुओं में जागृति होने पर उन्होंने हिंदी को अपना लिया।” पहिला प्रश्न यह उठता है कि किस हिंदी की, पड़ी बोलियों ही में वह होनी चाहिए, यह विभाषा है और फिर जब मुसल्मानों ने एक स्थान की पड़ी बोली को खड़ी करके हिंदुई बनाकर उसको अपने लिए निर्मित किया तब किस साहस से उसे उसकी विभाषा कही जाय। हिंदुओं ने मुसल्मानों की बनाई हिंदी को अपने किस जागृति काल में अपनाया, यह भी नहीं बतलाया गया है। वास्तव में बात यह है कि गुलेरी जी ने एक निश्चय बना लिया और उसका समर्थन इसी प्रकार की लचर दलीलों से करते गए हैं, जो स्वतः एक दूसरे को काटती हैं।

जिस प्रकार हिंदी साहित्यकारों ने फारसी अरबी शब्दों का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया है, उसी प्रकार कुछ फारसी के प्रसिद्ध कवियों ने भी हिंदी शब्दों का अपनी फारसी रचनाओं में प्रयोग किया है। विशेष न होते भी उनका उल्लेख

फारसी में हिंदी आवश्यक है। उस काल में साहित्यिक क्षेत्र में शब्द धर्माधता का इतना प्राबल्य न था, जैसा कि बाद को हो गया कि दोनों भाषाओं के साधारणतः

नित्य प्रयुक्त शब्द भी काम में लाने से लोग चिढ़ते हैं तथा जान बूझकर उसे निकाल देते हैं। जिस वातावरण में मनुष्य रहता है वहाँ की भाषा, भाव आदि का स्वभावतः असर होता है और बिना किसी दृढ़ निश्चय के बनाए उससे वह बच नहीं सकता। यही कारण है कि फारसी में लिखते हुए भी इन कवियों ने हिंदी शब्द प्रयुक्त कर दिए हैं क्योंकि ऐसे शब्दों के निराकरण की उस समय

तक किसी दलबंदी के कारण आवश्यकता नहीं पड़ी थी। खुसरो फारसी भाषा के सुप्रसिद्ध कवि हो गए हैं। इनकी हिंदी कविता का अलग उल्लेख आगे होगा, अब फारसी शैरों में हिंदी शब्दों का इनका प्रयोग देखिए।

१. बिनिशस्त: चूँ दर पालकी न: चखँ कहुहार आमद:

२. ए देहली बाए बुताने साद: । पग वस्त: व चीर: कज निहाद: ॥

३. सरे आँ दो चश्म गर्दम कि चू हिंदुआने रहजन ।

हम: रा बनोक मिजगाँ ज़द: वर जिगर कटार: ॥

४. पान खुरद: बमन दाद: उगाल आँ बुते हिंदी ।

ई बोस: व: पैगाम चे रंगी मज़: दारद ॥

‘उर्फी’ कहते हैं—

१. दर चाश्तगह् अज़ शबनमे गुल गिर्दफ़शाँ अस्त ।

आँ वाद कि दर हिंद अगर आयद जिगर आयद ॥

२. सीर गश्तम् जे कचरिण अग्र्याम । हवसे सीमोज़र नमीदारम ॥

‘जहूरी’ कहते हैं—

१. शवद चेहरए ज़र्द खुशेद आल । दिहंदश अगर नाजनीनाँ उगाल ॥

२. सिपेहर अज़ सरअफराज़ियश दर हिसाब ।

जे चौखंडियश साय: बर आफ़ताब ॥

‘अशरफ’ कहते हैं—

१. चौखंडिए शिकोहश अगर साय: अफगनद ।

फीले सिपेहर शान: बिदो ज़द बजेरवार ॥

‘तुगरा’ कहते हैं—

१. शोख सौसन रा बिगो दिल मीर बायद कश्क: अत ।

ज़ात रजपूतस्त तरसम दस्त बर जमथर कुनद ॥

फारसी के कवियों की तरह मुगल सम्राटों ने भी हिंदी के शब्दों का प्रयोग बहुत किया है। भरोखा दर्शन, फूल कटारः.

खपवा आदि शब्द बराबर नित्य प्रयुक्त होते थे। अकबर अपने पुत्र सुल्तान मुराद को सीकरी के पहाड़ी स्थान में पैदा होने के कारण पहाड़ी राजा कहता था। अपनी पुत्री आराम बानू बेगम के विषय में सुलतान सलीम से कहते समय अकबर ने कहा था कि 'लाडलः मन अस्त'। उक्त दोनों बातें जहाँगीर ने अपने आत्मचरित में लिखा है। यह भी लिखा है कि शाहजहाँ अकबर को शाहबाबा और उसे शाह भाई कहता था। अकबर ही ने घोड़े के फारसी शब्द कुरंग के बदले सुरंग हिंदी शब्द का प्रयोग किया और घोड़े की अँधेरी का उँजियाली नाम रखा था। जहाँगीर ने शराब का नाम 'रामरंगी' रखा था। शाहजहाँ ने लाल खाँ को गुणनिधि की पदवी दी थी। औरंगजेब ने शाहजादा आजम के भेजे हुए दक्षिण के दो प्रकार के आमों का नाम उसी की प्रार्थना पर सुधारस तथा रसनाविलास रखा था। इनके सिवा हिंदी के कितने सुकवियों को कविराय, महापात्र आदि उपाधियाँ मिली थीं। तात्पर्य यह कि फारसी काल में, जब उर्दू मुसलमानों की अलग कोई भाषा नहीं मान ली गई थी, हिंदी शब्दों के वहिष्कार का प्रश्न ही नहीं था और वे प्रकृत्या प्रयुक्त होते रहे थे।

इतना तो स्पष्ट है कि हिंदी दिल्ली, आगरे, मेरठ आदि तथा उसके आसपास की बोली थी और इसका नाम

हिंदी का इतना इसी स्थान विशेष पर रखा जाना चाहिए था।

प्रचार क्यों ? इसे नागरी भी कहते हैं पर अधिकतर इस शब्द से लिपि का बोध होता है, जो हिंदी, ब्रजभाषा

आदि के लिखने में प्रयुक्त होती है। किसी कवि ने लिखा है—

अंतर्वेदी नागरी, गौड़ी पारस देश।

अरु अरबी जामें मिलैं, मिश्रित भाषा भेष ॥

इस दोहे में नागरी हिंदी को अंतर्वेदी कहा है, जिसमें अरबी-

फारसी का मिश्रण भी हो। पर इस भाषा का नाम हिंदी या हिंदुस्तानी ही बहुत दिनों से प्रचलित है और इसका प्रचार भी, स्थान विशेष के सिवा, सारे भारतवर्ष में है। बाहर से आए हुए लोगों, मुसल्मान तथा यूरोपियन, ने भी इसी भाषा को भारत के लिए व्यापक रूप में ग्रहण किया। प्रथम की तो यह विशेषकर मातृभाषा ही हो गई, यद्यपि उसने उसे बड़े आग्रह के साथ अपने धर्म तथा संस्कृति के अनुसार विदेशीय परिच्छेदों से सजाकर भिन्न रूप दे दिया है। हृदय से इस बात को समझते हुए भी कि मूलतः वह हिंदी ही है पर बाहरी सजावट दिखाकर तथा देखकर उसे अपनी विशिष्ट भाषा मानते तथा कहते वे नहीं हिचकते। कारण इतना ही है कि वे अपने आग्रह के सच्चे होते हैं, हिंदू तो हैं नहीं कि मंचपर से चिछाकर हिंदू होते भी अपनी मातृ-भाषा, नहीं जुबाने मादरी, उर्दू या अंग्रेजी घोषणा कर दें या इस कशमकश में पड़कर किसी गैर की भाषा को अपना लें। हाँ, तो अंतर्वेदी भाषा स्थानिक होते भी हिंदी रूप में क्यों इतनी प्रचलित हो गई, इसका मुख्य कारण यही है कि भारत की प्राचीनतम तथा सदा उसी रूप में अबतक की राजधानी या मुख्य राजनगरी हस्तिनापुर या दिल्ली इसी प्रांत में है और राजभाषा होने के कारण इसका प्रचार सदा होता रहा है और रहेगा। बाहर से आनेवाली जातियों को यहाँ की भाषा से काम लेना पड़ता था और इसी कारण वे इसी को अपनाते थे, जिससे इसका प्रचार बराबर बढ़ता गया और बढ़ता ही जा रहा है। परंपरा की काव्यभाषा के क्षेत्र के बाहर उसके चारों ओर भी एतद्देशीय उन साहित्यकारों ने, जो उक्त काव्यभाषा द्वारा प्रभावित नहीं हुए थे, खड़ी बोली हिंदी ही का अपनी रचनाओं में उपयोग किया है। उर्दू भाषा का इसी खड़ी बोली को लेकर ही बनना इसके व्यापकत्व या राष्ट्रीयता का एक विशिष्ट प्रमाण है।

उर्दू शब्द का एक भाषा के लिए रूढ़ि रूप में प्रयोग अभी कल का है, ऐसा कहने पर, जो सच्ची बात है, कुछ लोग कहने लगते हैं कि हिंदी भी उर्दू शब्द है और इसका हिंदी शब्द क्या ईकार फारसी का 'याये निस्वती' है। साथ ही उर्दू है ? हिंदी शब्द को वे नया बतलाते हैं। भारत के लिए हिंद तथा यहाँ के निवासी या वस्तु के लिए विशेषण रूप में हिंदी शब्द का प्रयोग बहुत पुराना है। दो सहस्र वर्ष पहिले लिखे गए 'दसार्तीर' ग्रन्थ में 'व्यास नाम अज हिंद आमद' तथा 'चूँ व्यास हिंदी बलख आमद' लिखा मिलता है। वास्तव में यह शब्द और भी अधिक प्राचीन है और उस समय बना होगा जब कि मूल आर्यों की एक शाखा भारत की ओर चली आई और दूसरी शाखा ईरान में जा बसो तथा जब एक ओर सप्त, सिंधु, सप्ताह आदि रह गए और दूसरी ओर हप्त, हिंदु, हप्तः आदि हो गए। हिंदी शब्द का भाषा के लिए भी प्रयोग पुराना है और प्रायः अपभ्रंश काल के बाद ही से इसका प्रयोग मिलता है। हिंदी का ईकार याये निस्वती है ऐसा जो कहते हैं क्या वे कृपया बतलाएँगे कि 'बशमशीरे हिंदी' में जिस याये निस्वती का प्रयोग है उसी का 'सौजनो रिशतः ब हिंदी सूर्ई ताग' में भी है। पहिले में हिंदी शब्द विशेषण रूप में 'हिंद का' अर्थ देता है पर दूसरे में संज्ञा रूप में भाषा के लिए प्रयुक्त है। खुसरो ने हिंदी तथा हिंदवी शब्द का भाषा के लिए बराबर प्रयोग किया है, जिसका रचना काल छ शताब्दि से अधिक पुराना है। खालिकवारी में फारसी-अरबी के पर्याय इसी हिंदी या हिंदवी में दिए गए हैं और प्रायः नित्य प्रयुक्त गृहस्थी के आवश्यक वस्तुओं के नाम तथा बराबर काम में आनेवाले शब्दों का संग्रह किया गया है। किसी ने शंका उठाई है कि खालिकवारी खुसरो कृत नहीं है पर अंतिम

मिसरे में 'गदा भिखारी खुसरो शाह' मौजूद है और किसी दूसरे खुसरो शाह कृत इसे किसी ने साबित नहीं किया है। खुसरो ने इसके सिवा मसनवी खिज्रनामः में 'हिंदी भाषा' की प्रशंसा में कई पृष्ठ लिख डाले हैं। खुसरो की पहेलियों में हिंदी शब्द का भाषा के अर्थ में कई बार प्रयोग हुआ है। उक्त विवेचन से यहाँ निष्कर्ष निकलता है कि हिंदी शब्द उर्दू नहीं है प्रत्युत् इस उर्दू के जन्म के चार पाँच शताब्दि पहिले से इसका प्रयोग होता चला आ रहा है।

अमीर खुसरो अपने 'नुह सिपहर' नामक काव्य के तृतीय सर्ग में भारतीय भाषाओं के विषय में लिखता फारसी इतिहास-ग्रंथों है कि 'पहिले समय में हिंदुई भाषा थी। जब मे 'हिंदी' शब्द बड़ी तथा छोटी जातियाँ आपस में मिल गईं तब सभी बुरे भले पारसी सीखने लगे और अन्य भाषाएँ, जो थीं, अपनी परिधि के बाहर नहीं निकलीं। खुदा ने उन सब को सिखलाया था इसलिए उन सबको बुरा कहना ठीक नहीं है। मैं हिंद में पैदा हुआ था इसलिए यहाँ की भाषाओं के विषय में कुछ कहने दीजिए। इस समय हर प्रांत में एक-एक भाषा अपनी निजी है और दूसरों से ली हुई नहीं है' जैसे सिंधी, लाहौरी, डूगर की भाषा, द्वार समुद्र, तैलंग, गुजरात, मलाबार, गौड़, बंगाल, अवध, दिल्ली तथा उसके आस पास की। ये सब हिंद की भाषा हैं, जो प्राचीनकाल से जीवन के साधारण कामों के लिए काम में आती रही हैं।' इसके बाद संस्कृत के बारे में लिखा है।

तबक़ाते नासिरी का लेखक मिनहाजुस्सिराज सन् १२२७ ई० में भारत आया। उसने उक्त पुस्तक में एक स्थान पर लिखा है कि 'हिंदी भाषा में बिहार का अर्थ मदरसा है।' 'तुजुके तैमूरी'

चगत्ताई तुर्की भाषा में है, जिसका अनुवाद फारसी में शाहजहाँ के समय अबू तालिब हुसेनी ने किया था। यह ग्रंथ तैमूरलंग का आत्मचरित है। एक स्थान पर लिखा है कि 'उनकी भाषा अरबी, फारसी, हिंदी और कश्मीरी से भिन्न है।' शरफुद्दीन यज्दी का जफरनामा सन् १४२४ ई० में लिखा गया था, जिसमें तैमूरलंग की जीवनी दी हुई है। इस में एक स्थान पर लिखा है कि 'राव हिंदी शब्द है।' खफी खाँ अपने इतिहास ग्रंथ मुंतखबुल्लुबाव भाग २ पृ० ७८१ पर लिखता है कि 'उन्होंने देना स्वीकार किया और जमानत दी, जिसे हिंदुस्तान की भाषा में ओल कहते हैं।' यह ओल हिंदी शब्द है, जो संस्कृत क्रोड़ शब्द से बना है। खफी खाँ ने एक स्थान पर समयवाची हिंदी शब्द घड़ी भी प्रयुक्त किया है। मआसिरुल् उमरा में, जो सन् १७४२ से १७४७ ई० के बीच की रचना है, कई स्थानों पर 'हिंदी' शब्द प्रयुक्त हुआ है। दो तीन उदाहरण यहाँ दिए जाते हैं:—

१. इस कार्य को उचित समझने का कारण हिंदी रचनाएँ थीं।
२. इसका कुछ अंश हिंदी में हुआ था।
३. सूर्य के गुणों तथा नामों का हिंदी तथा फारसी भाषाओं में संग्रह कराया था।
४. हिंदी भारतवर्ष की भाषा है।
५. शेख गदाई कंबू.....हिंदी कविता भी करता था और पढ़ता था।

यूरोपिअनों का सोलहवीं शताब्दि विक्रमीय के मध्य में भारत में आना आरंभ हुआ था और पुर्तगीज जाति ही पहिले पहिल यहाँ आई थी। इसके बाद डच, डेन, अंग्रेज तथा फ्रेंच क्रमशः आए। सं० १६३९ में गोआ में एक स्कूल स्थापित करने का प्रस्ताव

अंग्रेजी में हिंदी
शब्द

पादरी एक्का बीवा ने किया। इसमें मुसलमानों के लिए फारसी और अन्य धर्मवालों के लिए हिंदुस्तानी की शिक्षा का प्रबंध था। जेरोम जेवियर ने, जो भारत में कई वर्ष तक भ्रमण करता रहा, अपने पत्रों में हिंदुस्तानी भाषा शब्द का कई स्थानों में उल्लेख किया है। ऐंटनी बॉटेलो, जो बाजीराव प्रथम के समय में सालसेट का प्रधान था, बीजापुर के सुलतान का एक प्रश्न उसी की भाषा में इस प्रकार अंकित करता है कि 'सच है कि बड़ा बादशाह अकबर किरिस्तान हुआ कि नाँ?' एडवर्ड टेरी भारत में सं० १६७३ से सं० १६७६ तक रहा था। यह लिखता है—इस साम्राज्य की भाषा मेरा तात्पर्य जनता की भाषा से है, इंडोस्तान कहलाती है। मृदु भाषा है तथा उच्चारण भी सहज है जिसे वे हमारे ही समान दाँड़ ओर को लिखते हैं।' यह लेख उत्तरी भारत में रहते समय लिखा गया है। सं० १७३० में जॉन ऑगिल्वी लिखता है कि भारत की भाषा तथा लिपि नागरी है, जो बाईं ओर से दाहिने को लिखी जाती है। इसी प्रकार सं० १७३० में फ्रायर लिखता है कि दरबार की भाषा फारसी है और जनता में प्रचलित इंडोस्तानी है। सं० १७२० में पेट्रो ड ला वाल ने भी इंडोस्तान भाषा का उल्लेख किया है। इस प्रकार के अनेक उल्लेख मिलते हैं। 'ग्रामेटिका इंडोस्तानिका' बेंजामिन शुल्ज ने सं० १८०२ में तैयार किया था और इसके प्रायः तीस वर्ष बाद ग्रामेटिका इंडोस्ताना रोम से प्रकाशित हुआ। इसी इंडोस्तान या इंडोस्तानी को, जो यूरोपिअनों द्वारा इंड या हिंद की भाषा मानी जाती थी, डा० गिलक्राइस्ट ने सं० १८५७ के आस पास ग्रंथ रचना कराकर हिंदुस्तानी कहा है। वास्तव में इस हिंदुस्तानी शब्द से यूरोपिअनों का तात्पर्य हिंदी से था उर्दू से नहीं क्योंकि टेरी तथा ऑगिल्वी ने स्पष्ट ही कहा है कि यह अंग्रेजी की तरह दाईं ओर को लिखी जाती थी। वे हिंद

को इंड, या इंडोस्तान अर्थात् हिंदुस्तान कहते थे और उसी में ईकार लगाकर यहाँ की प्रमुख भाषा को हिंदी या हिंदुस्तानी कहने लगे ।

खड़ी बोली हिंदी पर जिन जिन भाषाओं का प्रभाव पड़ा है. उनके दो विभाग किए जा सकते हैं, एक स्वदेशी अर्थात् भारतीय तथा दूसरा विदेशी अर्थात् अभारतीय । हिंदी से भिन्न भारत की अन्य भाषाओं से बहुतों की शब्दावली संस्कृत प्राकृतादि से होती हुई प्रांतीय भेदों के कारण बहुत कुछ बदल जाने पर भी इसमें आ मिली है । कुछ अन्य भाषाओं द्रविड़ आदि के शब्द संस्कृत से होते हुए भी इसमें आ मिले हैं पर बहुत से शब्द तथा वाक्ययोजना सीधी ले ली गई हैं । टवर्गी अक्षरों से आरंभ

हिंदी पर अन्य भाषाओं होनेवाले शब्द प्रायः द्रविड़ भाषाओं से आए हैं, का प्रभाव बँगला के चूडांत, अलता, भद्रलोग आदि, मराठी के लागू, बागू आदि, गुजराती के हडताल आदि इसी प्रकार चल गए हैं । बाद को फारसी तथा उसी के द्वारा अरबी, तुर्की आदि भाषाओं के बहुत से शब्द, भाव, विचार आदि इस प्रकार प्रचुरता से मिल गए हैं कि अब वे सहज ही मुख से मातृभाषा के समान निकलते रहते हैं । जमीन, कसम, परदा, हक आदि शब्द उर्दू के सैकलगरों के समान पाँच सात क्या बहुत बार सैकल करने पर भी हिंदी से मिट नहीं सके । यूरोपियन जातियों का संसर्ग भी कई शताब्दि पुराना हो गया है और उनकी भाषाओं के भी बहुत से शब्द तौलिया, फुट, कमरा, लालटैन, टिकस आदि नित्य प्रयुक्त हो रहे हैं । कभी कभी एक रूप के दो शब्द दो भिन्न मार्ग से आकर कुछ बखेड़ा मचा देते हैं, जैसे फारसी का बुजुर्ग (बड़ा) बंगाल में किसी से कहने पर वह गाली समझेगा क्योंकि वहाँ पुर्तगाली भाषा से आया बुजुक शब्द नीच के अर्थ में आता

है क्योंकि बंगाली बुजुर्ग का उच्चारण बुझुग करेगा और समझेगा। यूरोपिअनभाव, विचार, संस्कृति सभी का हिंदुओं पर तथा उनके साहित्य पर काफी प्रभाव पड़ा है।

भारत में लिखने की प्रथा बहुत प्राचीन काल से चली आती है। सम्राट् अशोकवर्द्धन के शिलालेख ढाई सहस्र वर्ष पुराने हैं और ब्राह्मी लिपि में लिखे गए हैं। इसी से

नागरी लिपि आधुनिक नागराक्षरों की व्युत्पत्ति मानी जाती है। भास्करानंद ने 'नित्याषोडशिकाणव' के माध्य

सेतुबंध में इस लिपि का नाम नागर बतलाया है, जो देवनागरी ही का छोटा रूप है। इस लिपि का सबसे प्राचीन शिलालेख दसवीं शताब्दि के प्रारंभ का मिलता है और ऐसे शिलालेख गुजरात, कच्छ, काठियावाड़, राजपुताना, मध्यप्रांत तथा संयुक्तप्रांत में अधिकता से मिलते हैं। बिहार तथा बंगाल में भी यही लिपि रही पर बाद में कुछ परिवर्तित रूप में हो गई। पंजाब और कश्मीर की शारदा लिपि भी नागरी ही के समान है। संस्कृत के लिए इसी लिपि का समग्र उत्तरी भारत तथा दक्षिण में महाराष्ट्र तक उपयोग होता है। तात्पर्य यह है कि इस लिपि का प्रचार दसवीं शताब्दि से अबतक प्रायः समग्र भारत में बराबर होता रहा है और यही लिपि सार्वदेशिक है। दक्षिण के राष्ट्रकूटों की आठवीं शताब्दि के शिलालेखों की लिपि भी नागरी से बहुत मिलती-जुलती है और वास्तव में वह प्राचीनता की भिन्नता के साथ नागरी ही है। इससे भी प्राचीन सन् ७०६ ई० के गुजरात के राजा जयभट के दानपत्र में राजा का हस्ताक्षर 'स्वहस्तो मम श्रीजयभटस्य' नागरी लिपि में लिखा हुआ है। ब्राह्मी लिपि तथा उसके बाद के इन नागराक्षरों के परिवर्तनों को देखने से ज्ञात होता है कि लेखकों ने अक्षरों को सुंदर बनाने तथा बिना कलम

उठाए अक्षर पूरा करने का बराबर प्रयत्न किया है और बाद में अक्षरों के माथा बाँधने का प्रयास किया गया है। इन सबसे वर्तमान काल की लिपि प्राचीन काल की लिपि से अधिक सुडौल, सुंदर और सुपाठ्य अवश्य हो गई है पर उसके जल्दी लिखे जाने की शक्ति का कुछ हास भी हो गया है।

द्वितीय प्रकरण

पद्य-साहित्य का विकास—सांध्य काल

(१—११०० संवत् वि०)

मानव प्रकृति अपने भाव तथा विचार दूसरों पर प्रकट करने में जितनी तत्पर रहती है उतनी ही वह दूसरों के भावों और विचारों को सुनने-समझने के लिए भी उत्सुक रहती है। वह जितनी प्रत्यक्ष अनुभूत घटनाएँ हैं उनको राग, द्वेष, घृणा, क्रोध या दया तथा प्रेम के कारण अनेक प्रकार से रंजित कर दूसरों पर प्रकट करती है और उतने ही चाव से अप्रत्यक्ष बातों को, ईश्वर, स्वर्ग, नर्क, जीव, आत्मा आदि को, अपनी कल्पनामात्र से रूप देकर दूसरों को समझाती है। मनुष्य को सोचने के लिए, कल्पना का आनंद लेने के लिए जिस प्रकार मस्तिष्क मिला है उसी प्रकार उसे वाणी की शक्ति भी मिली है कि अपनी सूझों को प्रकट भी कर दे। साथ ही अनेक प्रकार की मनोवृत्तियाँ भी उसे मिली हैं, जिनसे एक ही दृश्य या घटना का भिन्न मनुष्यों के मस्तिष्कों पर अलग अलग प्रभाव पड़ता है और उनकी वाणी भी कई प्रकार से उसे प्रकट करती है। इस प्रकार अपनी बात को, सुख या दुःख की, दूसरों से कहने पर उसके चित्त को संतोष होता है, आनंद मिलता है या

दुःख हलका होता है। विचारादि प्रकट करने की शक्ति भी सभी की समान नहीं होती, किसी की प्रसादपूर्ण है तो किसी की गंभीर और गूढ़, किसी की मधुर स्निग्ध है तो किसी की कर्कश तथा प्रखर है। तात्पर्य यह है कि यही विचारों के आदान-प्रदान की प्रवृत्ति साहित्य के सृजन का मूल कारण है और इसी के लिखे जाने पर संचयन तथा संवर्द्धन से साहित्य का भंडार भरता है। अवश्य ही इस साहित्य-सृजन में इस प्रवृत्ति के साथ साथ साहित्यकारों ने उत्तरोत्तर सरसता बढ़ाई क्योंकि वे स्वभावतः सौंदर्य तथा उच्च आदर्श के उपासक थे। कविता में लोकोत्तर चमत्कार लाने में वे सतत प्रयत्नशील रहे हैं। आचार्यों ने लक्षण-ग्रंथ लिखकर इसकी विशद विवेचना की है, जिसके लिए साहित्य के इतिहास ग्रंथों में स्थानाभाव है।

संस्कृत के प्राप्त विशाल साहित्य का बहुत बड़ा भाग पार-लौकिक दृष्टि ही से प्रणीत हुआ है और बचे हुए भाग में भी उसका निष्कर्ष उसी ओर, सूक्ष्म रूप ही में सही, साहित्यिक विशेषता जाता हुआ मिलेगा। वेद, वेदांग, पुराण, स्मृति, काव्य, नाटक सभी में देखा जायगा कि इस लोक की बातों के वर्णन करने के साथ साथ साहित्यकार की दृष्टि सदा ऊपर ही की ओर रही है और यही विशेषता रिकथक्रम से हिंदी को भी मिली है। सुख दुःख, उत्कर्ष तथा पतन आदि का विवरण देते हुए भी अंत उसका लोकोत्तर आनंद ही में समन्वित किया जायगा। भारतीय इहलोक से अधिक परलोक की चिंता रखते थे, इसलिए उनके साहित्य में भी इसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। भक्तिकाल के अंत तक हिंदी साहित्य में भी इसी का पूर्ण प्रभाव रहा है। ईश्वर-प्रति श्रद्धा-भक्ति ही उनका मुख्य ध्येय रहता था यद्यपि साथ साथ इहलोक के धार्मिक तथा सांप्रदायिक अनेक वाद

भी चलते रहे। यह दूसरी बात है कि कलुषित हृदयवालों ने कहीं कहीं शृंगार रस को अश्लील रस बना डाला है पर यह अपवाद स्वरूपमात्र है। इस मनोवृत्ति के कारण साहित्य में उच्च विचार, पवित्र भावनाएँ तथा धार्मिक उद्गार जब एक ओर प्रचुरता से प्राप्त हैं तब इस लोक के जीवन की अनेक रूपता का चित्रण नहीं के समान रहा है।

हिंदी साहित्य में उसकी देशगत विशेषता भी है। यह भारत प्रकृति की क्रीड़ास्थली रही है, यहाँ की शस्य श्यामला भूमि हिमाच्छादित पर्वतमालाओं, विशाल कलकल निनादिनी नदियों तथा निर्भरों से सुशोभित रही है, छहों ऋतुओं की शोभा के कारण हर प्रकार की वृक्षावलियों से युक्त वनस्थली में पशुपक्षी कलरव करते हुए क्रीड़ा करते रहे हैं, यह सब भारतीय भावुक कवियों पर कितना प्रभाव डालते हैं यह साहित्य की एक एक पंक्ति से स्पष्ट होता है। कवि ने प्रकृति से अनेक प्रकार के उपमा तथा उत्प्रेक्षादि के लिए आधार लिये हैं और प्रकृति की शोभा के बीच अपने कथावस्तु को आगे बढ़ाया है। प्रकृति के एक ही रूप में अनेक कवि ने अनेक भावनाओं से विविध रूप देखे हैं पर अधिकतर उसके मनोहर रूप ही का वर्णन दिया है क्योंकि वही यहाँ के ध्येय के अनुरूप रहा है। उक्त दो जातिगत तथा देशगत विशेषताएँ ऐसी हैं, जो समानरूपेण यहाँ प्रारंभ काल से अबतक वर्तमान रही हैं और रहेंगी पर साथ साथ कुछ ऐसे भी परिवर्तन होते रहे हैं और रहेंगे जो काल विशेष की विशेषता कहलाएँगे। समय के साथ साथ ऐसी प्रगति अवश्यभावी है, जो राजनैतिक, सांप्रदायिक तथा अन्य कारणों से होती रहती है।

भारत के अंतिम सम्राट् महाराज हर्षवर्द्धन की मृत्यु पर जो ऐतिहासिक अंधकार इस देश पर कई शताब्दियों तक छाया हुआ

था, उसी के बीच में प्राकृत काल अपभ्रंश की ऐतिहासिक स्थिति अंतिम अवस्था तक पहुँच गया था और इस तिमिराच्छादन के हटते ही जिस प्रकार भारत के खंड खंड भागों पर चौहान, राठौर, तँवर आदि राजवंशों ने आधिपत्य जमाएँ उसी प्रकार भिन्न भिन्न प्रांतों में अपभ्रंश से विकसित कई देशीय भाषाओं का विकास आरंभ हो गया। हमारी हिंदी का प्रचार यद्यपि इसके पहिले ही हो चुका था पर उसके साहित्य का आरंभ प्रायः इन्हीं राजवंशों के उत्थान-काल से हुआ है। भारत पर मुसल्मानों के आक्रमण का आरंभ सं० ६९३ वि० में पहिले सिंध में हुआ पर वह क्षणिक था और इसके बाद दसवीं शताब्दि से पश्चिम-उत्तर की ओर से जो आक्रमण हुए वे अधिक स्थायी थे, इस कारण इनका प्रभाव भारतीय आचार-विचार आदि पर विशेष रूप से पड़ा। सामूहिक रूप से यहाँ के निवासीगण, आपस के वैर फूट तथा संकुचित जातीय भेद-भाव के कारण, नवागंतुकों का सामना कर उन्हें दूर न कर सके पर असंगठित रहकर भी जिन वीरों ने उत्साह के साथ शत्रु का सामना किया था उसका विवरण तत्कालीन कवियों ने वीराह्लासमयी भाषा में प्रस्तुत किया है। इसके बाद ये नवागंतुक यहीं बस गए और इस प्रकार दो विभिन्न धर्म, संस्कृति तथा भाषा के संसर्ग से यहाँ की भाषा भी प्रभावान्वित हुई। अन्य धर्म वालों के हाथ में शासनसूत्र के चले जाने पर यहाँ की भाषा, समाज तथा धर्म पर कोई राज-बंधन नहीं रह गया और स्वेच्छा तथा स्वतंत्रता का बोलबाला रहा पर इस नए संसर्ग से साहित्य क्षेत्र में कुछ नई स्फूर्ति और प्रगति भी मिली।

खड़ी बोली हिंदी का प्रचार भी मौखिक रूप में ब्रजभाषादि से कम प्राचीन नहीं है पर साहित्यिक रूप में इसका प्रसार उनके

साथ न होकर बहुत बाद को हुआ है। इसका खड़ी बोली साहित्य मुख्य कारण यही है कि रूढ़ि-प्रिय हिंदी-भाषी हिंदू साहित्यकारों ने परंपरा से आती हुई काव्य-भाषा ही का अपनी रचनाओं में उपयोग किया और प्रायः अब तक करते रहे हैं। किसी भी प्रांत में बसने पर वे वहाँ की भाषा की परवाह न कर उसी भाषा का प्रयोग करते रहे। इस परंपरागत काव्य भाषा के बंधन से जो लोग मुक्त रहे और जिनकी रुचि कभी कभी कविता की ओर हुई उन्होंने इसका उपयोग किया है या कई भाषाओं के नमूने का प्रयोग करते हुए चित्रालंकार के उदाहरण में प्रयोग कर दिया है। इस काव्यभाषा के प्रभाव क्षेत्र के बाहर रहनेवाले हिंदी भाषियों ने अपनी बोल चाल की खड़ी बोली में या अहिंदीभाषी साहित्यसेवियों ने, जिन्हें इसी खड़ी बोली हिंदी से काम पड़ता था, इसमें रचना की है। पर इस कारण कि वे संख्या में कम थे, इसका साहित्य भी बहुत थोड़ा बन सका। इनमें मुसल्मान कविगण भी सम्मिलित हुए हैं पर ध्यान रखना चाहिए कि इनमें भी दोनों प्रकार के कवि हैं। एक वे हैं जो प्राचीन साहित्य के ज्ञाता थे और उसीके प्रभाव-क्षेत्र के भीतर आ गए थे और दूसरे वे थे जो उस साहित्य के न जानने के कारण बाहर ही रह गए तथा अपनी बोल चाल की मिश्रित हिंदी ही में अपने भाव तथा विचार प्रकट कर गए। सांप्रदायिक विचारों से भी जन साधारण में प्रचार करने के लिए बोलचाल की प्रचलित हिंदी ही को उपदेशकों ने अपनाया और इस कारण भी कुछ ऐसा साहित्य बन गया। तात्पर्य इतना ही है कि रूढ़िगत परंपरा की काव्यभाषा के प्रभाव में जो पड़े वे उसीमें रह गए पर जो उससे मुक्त रहे वेही जनसाधारण में प्रचलित बोली में रचना करते रहे।

परंपरागत हिंदी काव्यभाषा के साहित्य के इतिहास के समान ही खड़ी बोली हिंदी साहित्येतिहास का भी काल-विभाग किया जा सकता है—आदि, मध्य और वर्तमान। इसमें काल विभाग भी प्रत्येक काल की कुछ निजी विशेषताएँ हैं, जैसे आदि काल में योग का, मध्य काल में संतों का तथा वर्तमान में रहस्यवाद का; पर ये इतनी स्पष्ट नहीं हैं कि उनका नाम साथ साथ दिया जा सके। साहित्य एक अखंड परंपरा के रूप में चलता रहता है और प्राचीन का नवीन के साथ इतना मेल रहता है कि कालगत विभिन्नताओं के रहते भी उसका प्रसार एक रस ही ज्ञात होता है। अस्तु, साधारण विभाग ही का इस इतिहास में उपयोग किया जायगा।

इस आदिकाल के आरंभ के बहुत पहिले ही से बौद्ध धर्म का भारत में हास होने लगा था। इस धर्म के पंडे, स्थविर, भिक्षु आदि उच्च धार्मिक आदर्श से च्युत हो चुके थे और जन साधारण में उनके प्रति आस्था या श्रद्धा नहीं रह गई थी। इस धर्म या इसके अनुयायियों के प्रति विद्वेष भड़क उठा था। दक्षिण में शंकराचार्य जी ने इसके विरुद्ध वादविवाद आरंभ किया और समस्त भारत में भ्रमण कर इसका एक प्रकार से उन्मूलन कर डाला। बौद्ध या जैन धर्म के दुर्बल अहिंसावाद को पुनः यहाँ के क्षत्रिय तथा अन्य वीरों ने उठने नहीं दिया और इस कारण यह धर्म पुनः अपने जन्म देश में पनपने नहीं पाया। ऐसा होते भी बौद्ध धर्म एक दम-लुप्त नहीं हो गया और इस धर्म के माननेवाले कुछ स्थविर आदि ने जन-साधारण के इस विद्वेष को देखकर बौद्धमत के सहज स्वाभाविक नियमों को, जो प्रायः सभी धर्मों में समानरूपेण पाए जाते हैं, लेकर तथा विशिष्ट और स्पष्ट नियमों को, जिनसे वे बौद्ध कहें

जाकर प्रताड़ित किए जा सकते थे, छोड़कर एक नया संप्रदाय स्थापित किया। यह संप्रदाय सहज धर्म लेकर निर्मित होने के कारण सहजिया संप्रदाय कहलाया और इसके प्रधान प्रधान आचार्य सिद्ध या सिद्धाचार्य कहलाए। इन लोगों ने अपने धर्म के विषय में जो रचनाएँ लिखी हैं वे सभी अपभ्रंश से विकसित पुरानी हिंदी में हैं और वे कई छंदों में होते भी 'दूहा' कही जाती हैं। दूहा कहने से इसी भाषा का उसी प्रकार बोध होता है, जिस प्रकार गाथा से प्राकृत का। वैष्णव भक्तों के समान इन लोगों ने बहुत से गेय पद भी बनाए हैं। इन सिद्धाचार्यों का समय विक्रमीय आठवीं शताब्दि से आरंभ होता है।

सहजिया संप्रदाय के एक ग्रंथ चर्याचर्या विनिश्चय के अनुसार इस संप्रदाय के आदि सिद्धाचार्य लुई पाद हुए और इन्होंने भारत-वर्ष से निर्वासित बौद्ध धर्म के बचे हुए तथा इधर
 लुई पाद उधर लुके छिपे हुए अनुयायियों में सहज धर्म का प्रचार किया था। इनका समय विक्रमीय आठवीं शताब्दि है। इन्होंने संस्कृत में व्रजतत्व-साधन, बुद्धोदय, श्रीभगवद्भिसमय तथा अभिसमयविभंग चार पुस्तकें लिखी हैं। इनके सिवा सांध्य भाषा में भी रचनाएँ हैं, जो दोहाकोप, लुई पाद-गीतिका आदि में मिलती हैं। यहाँ दो एक उदाहरण दिए जाते हैं।

१. काया तरुवर पंचवि डाल। चंचल चित्त पईठो काल ॥

दिट्ट करिअ महासुह परिमान। लुई भनइ गुरु पुच्छिय जान ॥

अर्थ—शरीर-रूपी वृक्ष में पाँच डाल हैं और चंचल चित्त में काल बैठा हुआ है, इससे महासुख (सहज आनंद) के परिमाण का विचार कीजिए और लुई कहता है कि तब गुरु से ज्ञान पृच्छिए।

२. भाव न होइ अभाव न जाई। अइस सँवोहें को पतिआई ॥

लुई भनइ वट दुलख विनाना। तिय धाए बिलसइ उह लागे ना ॥

जाहेर वानचिन्ह ख्व न जानी । सो कइसे आगम वेएँ बखानी ॥

काहेरे किसभनि मइ दिबि पिरिच्छा । उदक चाँद जिम साँच न मिच्छा ॥

लुई भनइ भाइब कीय । जालइ अच्छमता हेर उह न दिस ॥

अर्थ—भाव भी नहीं है और अभाव भी नहीं है, ऐसे संबोधन को कौन पतियायगा । लुई पाद कहता है कि इसलिए ऐसे दुर्लक्ष्य को बालयोगी नहीं समझ सकता जिससे वह त्रैधातुक (काय, वाक्, चित्त) में विलास करता है, समझता नहीं है । जिसके वर्ण चिह्न का रूप न जाना, वह कैसे आगम वेद का वर्णन करेगा । किस प्रकार कहकर मैं परीक्षा दूँगा, जो जल के चंद्र के समान न सत्य और न मिथ्या है । लुई पाद कहता है कि मैं किस प्रकार, भावा-भाव के अभाव में, भावना करूँ इसलिए अपनी अच्छमता देखकर चुप हो रहता हूँ अर्थात् प्रतीति मात्र कर लेता हूँ ।

लुई पाद के एक शिष्य दारिक पाद थे, जिन्होंने एक पद में लुई पाद की वंदना की है । इसने वज्रयोगिनी, कंकालिनी आदि कई रचनाएँ देवी देवताओं के संबंध में की हैं । श्री दारिक प्रसारिमिता देवी के ऊपर भी एक पुस्तक लिखी है । सांध्य भाषा के इनके गानों से एक पद यहाँ दिया जाता है ।

सून करुनरी अभिन वारें काअ वाक चिअ

बिलसइ दारिक गअनत पारिमकूलें ।

अलख लख चित्ता महासुहे

बिलसइ दारिक गअनत पारिमकूलें ॥

अर्थ—कारुण्य से संवृत शून्य और उससे अभिन्न परमार्थ दोनों में भेद न मानते हुए दारिक आकाश के आलोकत्रय से परिशुद्ध काय, वाक् और चित्त से विलास करता है । इस कारण अलक्ष्य को हृदय में देखकर महासुख में दारिक प्रसन्न होता है ।

इनका नाम सरोजवज्र, सरोरुद्र वज्र, पद्मवज्र तथा राहुलभट्ट

भी मिलता है। इन्होंने अनेक ग्रंथ लिखे हैं, जिनके नाम दोहा-
कोषगीति, दोहाकोषचर्या गीति, दोहाकोष उपदेश-
सरहपाद गीति आदि हैं। संस्कृत में भी तंत्र पर इन्होंने
कई पुस्तकें लिखी हैं। इनके शिष्य शबरपाद के
शिष्य लुई पाद हुए हैं, जिससे यह उसके पूर्ववर्ती हुए पर, जैसा
लिखा जा चुका है कि, लुई पाद आदि सिद्धाचार्य माने जाते हैं।
जो कुछ हो इनका समय भी आठवीं शताब्दि के लगभग है।
इन्होंने ब्राह्मण धर्म, जैन धर्म आदि की अपनी रचनाओं में आलो-
चना भी की है। कुछ उदाहरणः—

१. जहि मन पवन न संचरइ, रवि ससि नाह पवेस ।

तहि बट चित्त बिसाम कर सरहे कहि उववेस ॥

अर्थ—जिस मन में वायु का संचार नहीं और न सूर्य-चंद्र का
प्रकाश प्रवेश करता है, उसी में हे चित्त, विश्राम करो, ऐसा
सरह उपदेश देता है।

२. अपने रचि रचि भव निर्वाना । मिछें लोअ बँधावए अपना ॥

अंभे न जानहुँ अचित्त जोई । जाम मरन भव कैसन होई ॥

जइसो जाम मरन वी तइसो । जीवन्ते मअलें नाहि विशेषो ॥

जाएथु जाम मरने विसंका । सो करउ रस रसानेरे कथा ॥

जे सचराचर तिअस भमंति । ते अजरामर किमपि न होति ॥

जामे काम कि कामे जाम । सरह भनति अचित्त सो धाम ॥

अर्थ—स्वयं ही (ईश्वर) वासनादि की संसार में रचना कर तथा
लोगों को भ्रांति में डालकर बाँध देता है। जो चिंता से परे है और
संसार में जन्म मरण कैसे होता है उसे नहीं जानता। जैसा जन्म
है वैसा ही मरण भी है, पैदा होने तथा मरने में कोई विशेषता
नहीं है। जन्म लेते ही मरण की शंका होती है और योगी लोग
अनेक प्रकार के कल्प-प्रयोग आदि रसायन काम में लाते हैं। जो

चर अचर त्रिदशा में—जन्म, जीवन तथा मरण—भ्रम रहे हैं वे किसी प्रकार अजर तथा अमर नहीं होते। जन्म से कर्म होता है कि कर्म से जन्म होता है, सरह कहता है कि वह घर अचिंत्य है।

सरह के शिष्य शबरपाद या शबरीश्वर थे, जिन्होंने 'वज्र-योगिनी साधन' नाम की पुस्तक लिखी है। उड़ीसा के राजा इंद्रभूति ने वज्रयोगिनी की उपासना चलाई थी, जिसमें उनकी पुत्री लक्ष्मीकरा ने विशेष सहायता की थी। शबरपाद इसी दल के थे और इसलिए यह पुस्तक लिखी। इन्होंने संस्कृत में कई पुस्तकें लिखीं और सांध्यभाषा में 'महामुद्रा वज्रगीति, चित्तगुह्य गंभीरार्थगीति तथा शून्यतादृष्टि' लिखीं। इन्हीं के शिष्य लुई पाद कहे जाते हैं। उदाहरणः—

ऊँचा ऊँचा पवत तँहि बसइ सबरी बाली ।

मोरंगि पीच्छ परहिन सबरी गिवत गुञ्जरी माली ॥ १ ॥

उमत सबरो पागल सबरो मा कर गुली गुहाड़ा तोहोरि ।

निअ धरिनी नामे सहज सुंदरी ॥ २ ॥

×

×

×

उमत सबरो गरुआ रोषे

गिरिवर सिहर संधि पइसते सबरो लोडिव कइसे ॥ ७ ॥

अर्थ—ऊँचे पर्वत पर उसकी गृहिणी शबरी निवास करती है और मोरपक्ष के समान परिधान पहिरे हुए शबरी ग्रीवा में (गुह्य-मंत्र) गाती रहती है। हे विषय विह्वलचित्त शबर आनंद आदि का विकल्प मत करो, तुम्हारी निजी गृहिणी (ज्ञानमुद्रा) का नाम सहज सुंदरी है। सहज प्रमत्त शबर भारी क्रोध से पार्वत्य वन-स्थली में प्रवेश करके किस प्रकार अन्वेषण करे।

कान्हूपाद नामक एक सिद्धाचार्य इसी सहजिया संप्रदाय के हो गए हैं, जिनका समय एक सहस्र वर्ष पहिले था। इनका नाम

कृष्ण पाद, कृष्णाचार्य तथा कृष्णवज्र भी था ।
 कान्हू पाद इन्होंने भी सांध्य भाषा में बहुत से गीति पद लिखे
 हैं, जिनमें से कई 'चर्याचर्याविनिश्चय' में उद्धृत
 किए गए हैं। इन्होंने ५१ पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें दोहा कोष तथा कान्हू-
 पाद गीतिका पुरानी हिंदी में हैं। इस नाम के कई रचेता हो गए हैं
 अतः यह सब एक ही का लिखा है, यह स्पष्ट नहीं कहा जा सकता ।
 यह किस देश के निवासी हैं, यह निश्चय नहीं है। उदाहरणः—

जो मन गोएर आला जाला । आगम पोथी इष्टमाला ॥

भन कइसें सहज बोल वा जाय । काअर वाक् चिअ जसु न समाय ॥

आले गुरु उएसइ सीस । वाक् पथातीत काहिब कीस ॥

जे तई बोली ते तबि (ई) टाल । गुरु बोधसे सीसा काल ॥

भनइ कान्हू जिन रअन बिकसइसा । कालें बोब संबोहिअ जइसा ॥

अर्थ—मन के समझने योग्य विकल्प जाल है इसलिए वेद
 पुराणादि ग्रंथ किस प्रकार उस सहज मनूत्तर ज्ञान का वर्णन कर
 सकते हैं, जो काय-वाक्-चित्त में नहीं समाता। व्यर्थ ही गुरु
 शिष्य को उपदेश देता है, वाक्शक्ति के जो परे हैं, उसे किस प्रकार
 कहेगा। जो कुछ कहे वह सब टालटूल है, गुरु शिष्य को कल
 बोध करावेगा। कान्हू कहता है कि जिस प्रकार बधिर मूक को
 संकेतादि से समझाता है वैसे ही गुरु शिष्य को सहजानंद रूपी
 रत्न का परिचय देता है।

श्री हरप्रसाद शास्त्री को इन कविताओं की भाषा को 'बांगला
 बोलिते कुंठित होइबार कारण देखिना।' आप लिखते हैं कि इन
 शब्दों में कुछ शब्द—ऐसे, कैसन, कैसे आदि पुरानी बांगला में
 प्रचलित थे किंतु उनसे उत्पन्न कोई शब्द इस समय बांगला में नहीं
 चलते वरन् पास की भाषा में प्रचलित हैं। ऐसा होते भी आपने
 इसे बांगला मान रखा है।

बोधिचर्यावतार आदि ग्रंथों के रचयिता शांतिदेव का नाम रावत व भूसुक भी कहा गया है पर प्रथम तो अल्ल मात्र है और दूसरा उपनाम (भू + शुक) हो सकता है । इन

भूसुक ग्रंथों की रचना का समय सं० ६४७—७१६ है ।

भूसुक का निवासस्थान सौराष्ट्र कहा जाता है पर यह बहुत दिनों तक बिहार तथा नालंद में रहे और मंजुवज्र से दीक्षा ग्रहण की थी । सिद्धाचार्य भूसुक लुई पाद के शिष्य कहे जाते हैं और इस कारण इनका समय सं० ७५० से पहिले नहीं हो सकता । अतः दोनों भिन्न पुरुष ज्ञात होते हैं । एक अन्य शांतिदेव तांत्रिक हो गए हैं, जिन्होंने सहज गीतिका लिखी है । जो कुछ हो, भूसुक बंगाली न थे पर इस संप्रदाय में दीक्षित होने पर बंगाल निवासी हो गए थे । वे लिखते हैं:—

आजु भूसुक बंगाली भइली । तिअ घरनी चंडाली लेली ॥

इनके अनेक गान मिले हैं । यहाँ एक उदाहरण दिया जाता है:—

काहेरि घिनि मेलि अच्छहु कीस । बेटिल हाक पइअ चौदीस ॥

अपना मांसे हरिना बैरी । खनह न छाड़अ भूकुअ हेरी ॥

तिन न च्छुपई हरिना पिवइ न पानी । हरिना हरिनिर निलअ न जानी ॥

हरिनी बोलअ हरिना सून हरिआ तो । ए वन च्छाड़ी होहु भान्तो ॥

तरंगंते हरिनार खूर न दीसअ । भूसुक भनइ मूढ़ा हिअहि न पइसइ ॥

अर्थ—अरे किस लिए घृणा मिली हुई तथा किससे वेष्टित हाँक चारों दिशा में सुन पड़ रही है ? हरिण (चित्त रूपी) का अपना (मोह मात्सर्य रूपी) मांस ही वैरी है, जो क्षण भर भी साथ नहीं छोड़ता, हे भूसुक देखो ! हरिण न तृण खाता है और न पानी पीता है (अर्थात् नहीं विचार करता है) और न हरिणी (प्राण-वायु, ज्ञानमुद्रा) का स्थान जानता है । हरिणी (ज्ञान) हरिण से

कहती है कि हे हरिण (चित्त) सुन, तू इस (शरीर रूपी) वन को छोड़ अन्यत्र (सहज सुख-वन) में जाओ ।

सहजिया संप्रदाय के प्रायः तीस बत्तीस सिद्धाचार्यों की इस प्रकार की सांध्य भाषा की कविता का अबतक पता चला है और ये सब रचनाएँ सातवीं शताब्दि से दसवीं शताब्दि तक की हैं । उन सबके परिचय तथा उदाहरण देने का इस छोटे से इतिहास में स्थानाभाव है और जैसा पहिले लिखा जा चुका है, इन उदाहरणों में खड़ी बोली, ब्रजभाषा, बिहारी तथा बँगला सभी के प्राचीन तथा वर्तमान समय तक के रूप मिलते हैं । खड़ी बोली के विचार से संज्ञाओं में पानी, पोथी, सुंदरी, बोली, डाल, काया, चित्त, हरिनी, मांस, तिन (तृण), वैरी, आदि विशेषणों में सहज, साँच, ऊँचा, चंचल आदि, सर्वनामों में अपना, जा, उह, कैसे आदि और क्रियाओं में होई, जाई, जानी, पतियाई, समाय, पुच्छिय आदि उक्त उदाहरणों में प्रयुक्त हुए हैं । साथ ही वाक्य-योजना पर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि खड़ी बोली ही का इनका प्राचीन स्वरूप है । इन अन्य सिद्धाचार्यों में डोम्भी, विरूप, कंकण, महीधर, तिलपाद, आर्यदेव, जयनंदी, कुक्कुरीपाद आदि प्रमुख हैं ।

जैन धर्म भी प्रायः बौद्ध धर्म का समकालीन है और इस धर्म के भी आचार्यों, धर्मगुरुओं तथा उपदेशकों ने विशेषतः अपने ग्रंथ तथा उपदेश जनसाधारण में प्रचलित भाषाओं ही में लिखे और दिए हैं । ये संस्कृत या शिष्ट भाषाओं के मोह में नहीं पड़े । यही कारण है कि इनकी प्राप्त रचनाओं में वर्तमान कालीन भाषाओं के पूर्व रूप यतस्ततः मिलते हैं, जिनसे इतना पता मिलता है कि उस समय ये भाषाएँ बोलचाल में आ गई थीं पर उनमें विशेष रूप से

जैन धर्म

साहित्य की रचना नहीं हुई थी। ऐसे उद्धरण अनेक संग्रह-ग्रंथों में मिलते हैं, जिनका उल्लेख नीचे समय क्रम से दिया जाता है। दसवीं शताब्दि विक्रमीय की एक रचना 'द्रव्य-स्वभावप्रकाश' (द्रव्य-सोराठा आदि में है, जिसे श्री देवसेन सूरि ने लिखा है। इसका अनुवाद प्राकृत भाषा में माण्डव्यवल्ल ने मूल की रचना के पचीस तीस वर्ष बाद ही किया था, जो अनुवाद प्राप्त है। मूल के अप्राप्त होने से उसके उदाहरण नहीं दिए जा सके। शुभशीलमणि का कथाकोष सं० १०५९ में तैयार हुआ था। इसमें मगध के प्रसेनजित के अपभ्रंश भाषा में लिखे चरित्र के कुछ उद्धरण दिए गए हैं। राजा के तिरस्कार करने से उसका पुत्र रुष्ट होकर चला गया था और तब दोनों में जो पत्रव्यवहार हुआ था, उसका एक दोहा इस प्रकार है—जो कि सभा महँ बोलिऊँ ते अपमान कि मान ॥ सोच सँभार विचार कर तो आरोग उधान ॥

हेमचंद्र का जन्म सं० ११४५ में, दीक्षा सं० ११५४ में, सूरिपद सं० ११६६ में और मृत्यु सं० १२२९ में हुई थी। इनका नाम चंगदेव था पर दीक्षा लेने पर सोमचंद्र और हेमचंद्र सूरि होने पर हेमचंद्र हो गया। सिद्धराज जयसिंह के यहाँ इनका बहुत सम्मान था और इन्हीं के लिए इन्होंने अपना व्याकरण बनाया था। जयसिंह के बाद कुमारपाल के राजा होने पर यह उस राज्य के सर्वेसर्वा हो गए और अपने धर्म का खूब प्रचार किया। इस काल में बहुत-सी पुस्तकें लिखी गईं तथा प्रतिलिपियाँ कराई गईं और कई पुस्तकालय खोले गए।

हेमचंद्र का व्याकरण सिद्ध हैम या सिद्ध हेमचंद्रशब्दानुशासन कहलाता है। इसमें इन्होंने अपने समय तक की भाषा के नियम दिए हैं तथा उनके पूरे पूरे छंद, गाथा आदि के अवतरण

दिए हैं। ये सब अवतरण इनके पूर्ववर्ती कवियों के हैं और इनसे ज्ञात होता है कि इनके समय पुरानी हिंदी का कितना साहित्य उपलब्ध था। हेमचंद्र ने यह बड़े महत्व का कार्य किया है, जिससे हमें अप्राप्त पुराने साहित्य के नमूनों का अच्छा संग्रह पढ़ने को मिल जाता है। सिद्ध हैम के आठवें अध्याय में प्राकृत व्याकरण दिया है और उसके उदाहरण के लिए कुमारपाल चरित आठ सर्गों में लिखा है। देशी नाममाला नामक काव्यबद्ध एक कोष भी बनाया है। नीचे जो उदाहरण दिए गए हैं, वे दो भाग में हैं— 'अ' में हेमचंद्र के पूर्ववर्ती कवियों की तथा 'आ' में हेमचंद्र की रचना के उदाहरण हैं।

(अ) १. बिट्टी ए, मइ भणिअ तुहुँ मा कुरु बंकी दिट्ठि ।

पुत्ति, सकण्णी भल्लि जिवँ मारइ हिअइ प्रविट्ठि ॥

अर्थ— हे बिट्टी मैंने कहा (तुमसे) मत कर बाँकी दृष्टि।

पुत्रि सकर्णी भल्ल ज्यों मारै हृदय प्रविष्टि ॥

२. भल्ला हुआ जु मारिआ, बहिणि महारा कंतु ।

• लज्जेजं तु वयंसिअहु जइ भग्गा घर एंतु ॥

अर्थ— भला हुआ मारा गया, वहिन हमारा कंत।

सखियों में मैं लाजती जो भागा घर एंत (आता) ॥

३. भोलो भोलो दीसतो सदा गरीबी सूत ।

काकी, कुंजर काटताँ जाणवियो जेदूत ॥

(आ) १. रे मण करसि कि आलझी विसया अच्छहु दूरि ।

* करणइँ अच्छहु रुन्धिअइँ कड्डुँ सिवफलु भूरि ॥

अर्थ— रे मन क्यों अनर्थ करता है, विषयो, दूर रहो। हे इंद्रियो, रुद्ध रहो, जिसमें शिवफल (मोक्ष) बहुत काढ़ूँ (प्राप्त करूँ)।

२. पइठी कजि जिणागमहों वत्तडिआबि हु जासु ।

अम्हारउँ तुम्हारउँ वि एहु ममत्तु न तासु ॥

अर्थ—जिनागम की बात जिसके कान में पैठी उसे हमारा तुम्हारा का ममत्व नहीं रहा ।

जैन आचार्य मेरुतुंग ने प्रबंधचिंतामणि नामक संस्कृत ग्रंथ का सं० १३६१ में बड़वान (गुजरात) में रचना की थी, जो एक बार छप चुका है । इसका गुजराती तथा अंग्रेजी अनुवाद मेरुतुंग छप चुका है । इसमें जैन मत के प्रभाव बढ़ानेवाले किस्सों का संग्रह है । इसमें कथाप्रसंग में यत्रतत्र जो कविताएँ दी गई हैं, वह सब दूसरों की रचनाएँ हैं क्योंकि इसने स्वयं कुछ नहीं रचा है । तात्पर्य यह कि इस ग्रंथ में जो कविताएँ हैं वह सब इससे पुरानी हैं पर कितनी प्राचीन हैं यह कहना कठिन है । कम से कम वे तेरहवीं शताब्दि ईसवी की या उससे पहिले की हो सकती हैं । इनमें कुछ राजा भोज के पितृव्य मुंज की बनाई कही गई हैं, एक गोपाल कवि का नाम आया है और कुछ नवधन राजा के शोक में कही गई हैं । प्रबंधचिंतामणि से कुछ उदाहरण दिए जाते हैं—

१. राजा विक्रमादित्य ने एक मनुष्य को आधा दोहा-कहते हुए सुना और बुलाकर पृष्ठने पर उसने पूरा दोहा इस प्रकार कहा—

अम्मणिओ संदेसडओ तारय कन्ह कहिज ।

जग दालिहिहि डुब्बिउँ बलि बंधणह मुहिज ॥

अर्थ—हमारा संदेशा तारक कृष्ण से कहो । जग दारिद्र्य में डूबा है, बलि का बंधन छोड़िए ।

२. वि० सं० १०३६ में युद्ध में मारे गए कच्छ के राजा लापाक ने कुछ दोहे कहे हैं, जिनमें एक इस प्रकार है—

उग्या ताविउ जहिं न किउ लक्खउ भणइ निघट् ।

गणिया लब्भइ दीहइ के दहक अहवा अट्ट ॥

अर्थ—उगे हुए (उदय हुए शत्रु) को जिसने तापित न किया,

निघट्ट (निडर) लाखा कहता है कि तो उसे गिने हुए दिन मिलते हैं—दस अथवा आठ ।

३. राणा सच्चे बाणिया जेसलु बड्डु सेठि ।

काहूँ बणिजड्डु मण्डयउ अम्मीणा गढ हेठि ॥

अर्थ—(अन्य) सब राणा बनिए हैं, जेसल बड़ा सेठ है । किसी का बनिज व्यापार फैला है हमारे गढ़ के नीचे ?

प्रबंधचिंतामणि में दो प्रसंगों पर गद्य भी आया है, जिसमें संस्कृत के साथ देशी भाषा का भी पुट है, जैसे शृंगार कोड़ी साड़ी, पापखउ हारु (पापक्षय हार), माणिकउ परखेवडउ, १२० कोड़ी सार्द्ध इत्यादि ।

धार नरेश वाक्पतिराज द्वितीय उपनाम मुंज परमार वंशीय थे और यह सोलंकी राजा तैलप से युद्ध करते हुए कैद होकर मारे गए थे । तैलप की मृत्यु सं० १०५५ में हुई थी

मुंज राजा जिसके पहिले राजा मुंज मारे गए थे । यह स्वयं विद्वान् थे तथा गुणियों और विद्वानों के आश्रय-

दाता थे । सुभाषित रत्न संदोहकार अमितगति, नव साहसांक चरित के रचयिता पद्मगुप्त, दशरूप के कर्ता धनंजय आदि इसके आश्रित थे । इनकी रचना से दो उदाहरण दिए जाते हैं:—

१. कारागार में रहते हुए कष्ट पाकर इन्होंने जो कविता की थी, उसमें से एक इस प्रकार है—

१. भाली त्रुटी कि न मुउ किं न हुयउ छारपुंज ।

• हिंडइ दोरी बंधीयउ जिम मंकड तिम मुंज ॥

अर्थ—फाँसी से टूटकर क्यों न मरा, क्यों न (जलकर) चार का पुंज हुआ । घूमता है डोरी से बँधा हुआ, ज्यों मर्कट त्यों मुंज ।

२. सायर षाई लंक गढ़ गढ़वई दससिर राउ ।

भगवत्खय सो भजि गयमुंज म करि विसाउ ॥

अर्थ—सागर खाई लंक गढ़ गढ़पति दशशिर राव ।

भाग्यक्षय से दूट गए मुंज न करो विषाव(द) ॥

धारनरेश प्रमारवंशीय राजा भोज विद्वत्ता तथा विद्वानों को आश्रय देने के लिए बहुत प्रसिद्ध हैं । इसका पिता सिंधुराज मुंज के बाद गद्दी पर बैठा और गुजरात के राजा

भोज चामुंडराज के द्वारा परास्त होकर सं० १०६६ वि० के पहिले मारा गया । राजा भोज का एक

दानपत्र सं० १०७६ वि० का मिला है अतः यह अपने पिता की मृत्यु के बाद सं० १०६५ या उससे कुछ पहिले गद्दी पर बैठा था । यह बड़ा वीर भी था और कई नरेशों को इसने परास्त किया था । यह सं० १११० वि० के लगभग स्वर्गलोक सिधारा । कुछ उदाहरणः—

१. कसु कर रे पुत्र कलत्र धी कसु कर से करसण बाड़ी ।

एकला आइबो एकला जाइबो हाथ पग वे भाड़ी ॥

अर्थ—रे किसके पुत्र, स्त्री, कन्या हैं, किसकी खेती वारी है। अकेला आना, अकेला जाना हाथ पैर भाड़कर ।

२. एक समय भोज रात्रि में भ्रमण कर रहे थे । एक स्त्री को नीचे लिखा दोहा बारबार पढ़ते सुनाः—

मानुसड़ा दस दस दसा सुनियइ लोय प्रसिद्ध ।

मह कंतह इक्कज दसा अवरि ते चोरिहि लिद्ध ॥

अर्थ—मानव की दस दस दशा सुनती लोक प्रसिद्ध ।

मेरे कंत कि एक दशा और चुराई (सिद्ध) ॥

यह गुजरात के निवासी जैन आचार्य थे और आपाढ़ शुक्ल ८ रविवार सं० १२४१ को अनहिलपत्तन में कुमारपाल प्रतिबोध नामक अपनी रचना समाप्त की थी । यह रचना-

सोमप्रभ सूरि काल ग्रंथ में दिया हुआ है । यह पाँच प्रस्तावों में बँटा हुआ है और संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश

गद्य-पद्य में है। इसीमें पुरानी हिंदी के नमूने मिलते हैं। इसके सिवा सुमतिनाथ-चरित, सूक्ति मुक्तावली, सोमशतक आदि ग्रंथ भी रचे हैं। इनके संग्रह में भी इनसे प्राचीन अर्थात् पूर्ववर्ती कवियों की रचना से उदाहरण दिए गए हैं और निज की रचना भी दी है। इस कारण यहाँ भी दोनों प्रकार के उदाहरण दिए जाते हैं—

‘अ’, पहिले का और ‘आ’, इनका ।

(अ) १. माणि पणद्वइ जइ न तणु तो देसड़ा चइज्ज ।

मा दुज्जनकर पल्लवहिं दसिज्जंतु भमिज्ज ॥

अर्थ—मान नष्ट हो यदि न तन तो त्यागो वह देश ।

दुर्जन कर पल्लवों से (दिखलाते) मतकर वहाँ निवेश ॥

२. पुत्तु जु रंजइ जणय मणु थी आरादइ कंतु ।

भिच्चु पसन्नु करइ पहु इहु भल्लिम पज्जंतु ॥

अर्थ—पुत्र जो रंजै जनक मन स्त्री आराधै कंत ।

भृत्य करै खुश प्रभुहिं जो लहै भलाई अंत ॥

(आ) १. तो मुक्कउ गउ दित्तु तिण कंवळु कोसहि हत्थ ।

सो पेच्छंतह तीइ तसु खित्तु खालि अपसत्थि ॥

अर्थ—तब मुक्त होने पर वह गया और कोसा के हाथ में कंबल दिया पर उसने उसे देखते ही छोटे खाल में फेंक दिया ।

२. गयणमग्ग संलग्ग लोल कल्लोल परंपर ।

निक्करुण्णकड नक्क चक्क चंक्रमण दुहंकर ॥

उच्छलंत गुरुपुच्छ मच्छ रिंछोलि निरंतह ।

विलसमाण जाला जडाल बडवानल दुत्तर ॥

आवत्त सयायल जलहि लहु गोपठ जिम्ब ते नित्थरहि ।

नीसेस वसन गण निट्ठवणु पासनाहु जे संभरहि ॥

अर्थ—गगन मार्ग संलग्न लोल कल्लोल परंपर ।

निष्करुणोत्कट नक्क चक्क चंक्रमण दुखंकर ॥

उच्छलंत गुरुपुच्छ मत्स्य रिंछोल निरंतर ।
 विलसमान ज्वाला जटाल बड़वानल दुस्तर ॥
 आवर्त शताकुल जलधि लघु गोपद ज्यों वे निस्तरैं ।
 निःशेष व्यसन गण निस्थवन पार्श्वनाथ जो संभरैं ॥

वर्तमानकाल की खड़ी बोली की संस्कृतमय पदावली के समान ही यह सात सौ वर्ष पहिले की कविता है ।

राजपूताने में धरणीवराह के नाम से एक छप्पय प्रसिद्ध है, जो आवू का प्रमार-वंशीय राजा था । इसका समय विक्रमीय ग्यारहवीं शताब्दि का पूर्वार्द्ध है । इस छप्पय में अजमेर धरणीवराह का नाम आने से कुछ विद्वान् इसे बाद का बना हुआ कहते हैं, क्योंकि अजय देव ने अजमेर बसाया था । पर वह स्थान तो पहिले भी रहा होगा, जिसकी विशेष उन्नति बाद को हुई हो क्योंकि अधिक ऐश्वर्य संयुक्त स्थान होने से स्यात् वह इस प्रकार भाई को जागीर में न दे दिया गया होता । छप्पय इस प्रकार है:—

मंडोवर सामंत हुवो अजमेर सिद्ध सुव ।
 गढ़ पूगल गजमल हुवो लोद्वै भाँक भुव ॥
 अल्ह पल्ह अरबद् भोज राजा जालंधर ।
 जोगराज घर घाट हुवो हाँसू पारकर ॥
 नक्कोट किराडू संजुगत थिर पँवार हर थप्पिया ।
 'धरणीवराह' धर भाइयाँ काट बाँट जू जू किया ॥

तृतीय प्रकरण

आदिकाल—चारण-काव्य—नाथ-साहित्य

(सं० ११००-१५०० वि०)

यहाँ तक उस भाषा में खड़ी बोली के साहित्य की जाँच पड़ताल तथा खोज की गई, जो अपभ्रंश से विकसित होकर आधुनिक भारतीय भाषाओं में रूपांतरित हो गई हैं सामान्य परिचय और अब उसके बाद की भाषा के साहित्य में इसकी पड़ताल की जाएगी। यह काल साधारणतः आदिकाल कहा जाता है पर अपनी विशिष्टता के कारण यह वीरगाथाकाल भी कहलाता है। इसमें चारणों की रचनाएँ अधिक तथा महत्वपूर्ण हैं, इससे यह काल चारणकाल भी कहा गया है और इसकी भाषा डिंगल कही गई है। साहित्य परंपरा की व्रजभाषा स्यात् इसी वजन पर पिंगल कही गई है, क्योंकि यह निश्चय है कि पहिली दूसरी से प्राचीनतर है। पिंगल का अर्थ छंदशास्त्र है और हो सकता है कि व्रजभाषा काव्य अधिक छंदशास्त्रानुकूल होने के कारण इस नाम से पुकारा गया हो तथा चारणों की भाषा इसकी कमी के कारण हेय दृष्टि से डिंगल कही गई हो। डिंगल शब्द कितना प्राचीन है और पहिले पहिल इसका कब प्रयोग हुआ है यह अभी तक निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता और न इसकी व्युत्पत्ति ही निश्चित हो सकी है। यह अवश्य है कि चारणों की भाषा तथा राजस्थान की अब तक प्रचलित भाषाओं का रूप प्राचीन अपभ्रंश से विशेष मेल खाता है और इसीलिए अपभ्रष्ट समझकर इसका ऐसा नामकरण हो गया है।

रुढ़िप्रिय साहित्यकारों में यह एक विशेषता है कि वे प्रचलित

मँजे हुए शिष्ट शब्दों को भी तिरस्कृत कर प्राचीनता के लिहाज से उनके अप्रचलित उठे हुए रूपों को व्यवहार में निस्संकोच लाते हैं। उसकाल में भी सागर, वचन आदि से तत्सम व्यवहृत शब्दों को छोड़कर सायर, वयणु आदि शब्दों का प्रयोग करते रहते थे। तेरहवीं शताब्दि के शार्ङ्गधर तथा खुसरो की कविता की भाषाओं को देखने से उक्त बात बहुत स्पष्ट हो जाती है। एक की भाषा जितनी प्राचीनता की ओर जाती है उतनी ही दूसरी की वर्तमान की ओर आती है। एक बात अवश्य है कि इस काल में वीरो-ह्लासमयी कविता की प्रचुरता थी और कविगण अपनी भाषा में ओज लाने तथा श्रोताओं में उत्साह और युद्धोन्माद को उन्मेपित करने के लिए शब्दों के कर्कश रूप लेना अधिक पसंद करते थे, जिसके लिए वही प्राचीन भाषा विशेष उपयुक्त थी। राजस्थान के चारणों का तो क्या कहना—भूषण, सूदन, श्रीधर आदि के वीर काव्यों में भी यह विशेषता पाई जाती है। अस्तु, तात्पर्य इतना ही है कि आदिकाल में दोनों प्रकार की डिंगल तथा पिंगल भाषाओं में साहित्य मिलता है तथा खड़ी बोली हिंदी का अस्तित्व भी बराबर साहित्य में मिलता चलता है।

जैसा लिखा जा चुका है, ग्यारहवीं शताब्दि विक्रमीय के अंत तक महमूद गजनवी की चढ़ाइयाँ समाप्तः प्रायः हो चुकी थीं पर उसका आधिपत्य पंजाब प्रांत में बहुत कुछ ऐतिहासिक स्थिति जम चुका था। उसके उत्तराधिकारी गजनी से निकाले जाने पर यहाँ आ गए थे और छोटी मोटी चढ़ाइयाँ अड़ोस पड़ोस पर कर रहे थे। गोर के सुलतान शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी ने गजनवी सुलतानों से पंजाब छीनकर राजपुताने तथा आर्यावर्त की ओर चढ़ाइयाँ आरंभ की और आपस में लड़ने में पटु भारतीय नरेशगण आपस की लड़ाइयों से शक्ति-

हीन होकर क्रमशः परास्त होते चले गए। आर्यावर्त में उनका प्रभुत्व फैलता गया और यहाँ के क्षत्रियगण राजपुताने की ओर धीरे धीरे जाकर छोटे छोटे राज्य स्थापित करते रहे। ये लोग भी बराबर मुसलमानों से लोहा लेते रहे। ऐसे नरेशों में पृथ्वीराज चौहान, जयचंद राठौड़, बीसलदेव, दुर्लभराज, अजयदेव, हम्मीर आदि प्रमुख थे। इनके सिवा बुंदेलखंड, मालवा, गुजरात आदि के हिंदू नरेशगण अपनी स्वतंत्रता कुछ और अधिक समय तक रक्षित रख सके थे पर बाद को पठानों के खिलजी, तुगलक आदि वंशों के समय तक इनमें कई स्वतंत्रता खो बैठे और बचे खुचे मुगल वंश के स्थापित हो जाने पर परतंत्र हो गए।

केवल विद्वत्ता तथा काव्यकौशल दिखलाकर या दानियों की उदारता तथा दानशीलता का बड़ा चढ़ा वर्णन कर उससे लाभ उठाने का समय नहीं रह गया था; प्रत्युत् गृह में विचार परिवर्तन घुस आए हुए शत्रु के विरुद्ध वीरता तथा साहस प्रदर्शन करनेवाले, घोर युद्ध में हृदय से जमकर तलवार का जौहर दिखलानेवाले तथा अपने पराक्रम से विजयश्री को अपनानेवाले वीरों के यशकीर्तन कर उनके हृदयों में उमंग भरने का जो कवि जितना ही उदात्त प्रयत्न करता था उतना ही वह सम्मानित किया जाता था। यही कारण है कि इस काल में ऐसी रचनाएँ विशेष महत्वपूर्ण हुईं। इससे यह तात्पर्य नहीं है कि इस काल में और किसी प्रकार की कविता हुई ही नहीं। हाँ, यह अवश्य है कि इसकाल में वीर रस ही प्रधान रहा है और अन्य रस गौण रूप में आए हैं। खुसरो की पहेलियाँ तथा विद्यापति के भक्तिपूर्ण गेय पद इसी काल के अंतर्गत आते हैं पर वे वीर गाथा के अंतर्गत किसी प्रकार नहीं आ सकते। ऐसा विभेद तो प्रायः सभी काल में पाया जायगा। इसके साथ साथ धार्मिक उत्थान पर

भी यहाँ के मतप्रवर्तक शांत नहीं बैठे और यत्र तत्र अपने उपदेशों का प्रचार कर रहे थे।

राजनैतिक अशांति के कारण साहित्यिक क्षेत्र में भी यदि युद्ध, विद्रुव, मारकाट का ही विशेष वर्णन मिलता है तो कोई आश्चर्य नहीं क्योंकि दोनों का पारस्परिक संबंध ही इस प्रकार का है। द्वितीय प्रथम की छाया है। जो अनुभूत हो रहा था वही वाक्शक्ति द्वारा व्यक्त किया जा रहा था। यही कारण है कि इस काल में अनेक 'रासो' प्रणीत हुए।

इस काल के आरंभ में ऐसे कवियों का नाम आता है, जिनकी कुछ कविता अब तक प्राप्त नहीं हो सकी है। पुंड या पुण्य का नाम मात्र मिला है और इसका समय आठवीं शताब्दि कहा जाता है। दलपति विजय के खुमानरासो का भी नाम मात्र मिला है। जो नवीं शताब्दि का कहा जाता है। इसके अनंतर साईदान, मसूद, कुतुबअली तथा अकरम फैज के नाम मिलते हैं। मसूद (ख्वाजा मसऊद) की मृत्यु सं० ११८८ में बतलाई जाती है, जो हिंदी का कवि था। इसने फारसी, अरबी तथा हिंदी में तीन दीवान लिखे हैं। अकरमफैज बारहवीं शताब्दि के पूर्वार्द्ध में था और इसने भी हिंदी में कविता की है। इसकी कविता प्राप्त नहीं है पर यदि कभी मिलेगी तो वह खड़ी बोली ही में होगी या उस पर इसका काफी पुट होगा। यह डीडवाणा का निवासी तथा आमेर के माधवसिंह का आश्रित कहा जाता है। यह सं० ११७९ में वर्तमान था।

अबतक साहित्य के इतिहासों में इसका नाम कुतुबअली लिखा मिलता है पर वह अशुद्ध है। तुर्की भाषा में मौलाना नूरुद्दीन मुहम्मद ऊफी ने एक पुस्तक 'जामेउल हिकायात व लवामेउल् रिवायात' लिखी है, जो शम्सुद्दीन अल्तमश के राज्यकाल (सं० १२६८—सं० १२९३)

में था। यह यात्री था और भारत में इसने बहुत भ्रमण किया था। वह लिखता है कि अग्निपूजक पारसियों के उभाड़ने पर काफ़िरों ने एक मसजिद नष्ट कर दिया और राजकर्मचारियों के न सुनने पर खातिबअली ने अहेर जाते समय राय जयसिंह को हिंदी में लिखा हुआ एक कसीदा, जिसमें पूरा विवरण दिया हुआ था, दिया। राय स्वयं छद्मवेश धारण कर खंभात गया और घटना की जाँच कर तथा एक कलश समुद्र का पानी भरकर लौट आया। दरबार में दोनों पक्ष के एकत्र होने पर मुकदमा सुना गया। राय ने कहा कि 'इसमें दो धर्मवालों का झगड़ा था इसलिए किसी दूसरे पर विश्वास न कर वह स्वयं मौके पर गया जिसका सबूत यह समुद्री पानी है। उसका धर्म है कि उसकी प्रजा किसी भी मत की अनुयायी हो पर उसके राज्य में शांतिपूर्वक रह सके।' उसने उपद्रवियों को दंड दिया और मसजिद भी बनवा दी। खातिबअली को पुरस्कार में चार वस्त्र दिए गए, जो बाद में लोगों को उत्सव के समय दिखलाए जाते थे।

यह कसीदा, जो फारसी छंदशास्त्र के अनुसार होता है, हिंदी में था अतः वह खड़ी बोली ही में हो सकता है। सिंध में लिखे जाने के कारण काव्यभाषा की रूढ़ि के भी वह बाहर था। उक्त पुस्तक में जयसिंह सोलंकी के न्याय आदि की अनेक कहानियाँ हैं, जिसका समय सं० ११५०-१२०० माना गया है।

चारणों की प्रथम रचना खुम्माणरासो का नाम मात्र मिलता है, न इसके रचिता के नाम का अबतक पता चला है और न इसकी कोई प्रति मिली है। यहाँ तक कि इस रचना का कोई उद्धरण किसी संग्रह ग्रंथ में अब तक नहीं मिला है। जो खुमानरासो अब मिला है उसमें मेवाड़ के द्वितीय खुमान का चरित्र वर्णन है तथा राणा प्रताप के समय तक का वृत्त है। यह प्रथम रासो नहीं हो सकता।

इस रचना के बाद चंदबरदाई के पृथ्वीराजरासो का समय आता है जो सं० १२५० के लगभग है। यह विशालकाय महान् ग्रंथ है, जिसके एकमात्र प्रकाशन का श्रेय काशी नागरी प्रचारिणी सभा को है। केवल मूल २६१५ पृष्ठों में पूरा हुआ है और

चंद बरदाई

प्रायः ५०० पृष्ठों में रासोसार आदि हैं। यह दस वर्ष में छपा था। इस ग्रंथ की ऐतिहासिकता अत्यंत संदिग्ध है और यह प्रामाणिक नहीं माना जाता। इसकी रचना ही में साहित्य-मर्मज्ञों को संदेह है कि यह चंद कृत है या नहीं है और उतने प्राचीनकाल की है या नहीं। चंद दिल्ली के अंतिम सम्राट् पृथ्वीराज के सामंत तथा राजकवि थे। यह जाति के भट्ट तथा जगात गोत्र के थे। यह तथा इनके आश्रयदाता का जन्म एक ही दिन का था तथा दोनों एक ही दिन वीरगति को प्राप्त हुए थे। चंद का जन्म लाहौर में हुआ था। यह शाखकुशल तथा कई शाख के विद्वान् थे। यह अपने आश्रयदाता के सखा, मित्र, दरबारी सभी थे और सदा साथ रहनेवालों में से थे।

इस ग्रंथ का अंतिम भाग इनके पुत्र जल्हन ने पूरा किया था। इसमें अग्निवंश की उत्पत्ति तथा चौहानों के अजमेर में राज्यसंस्थापन से लेकर पृथ्वीराज के कैद होने तक का विवरण दिया गया है। इस सब के बीच अन्य राजाओं के भी बहुत से आख्यानक भरे पड़े हैं। इतने भारी ग्रंथ को एकदम कोरा जाल कह देना बड़े साहस का काम है। उदयपुर के विक्टोरिया मेमोरियल हॉल की रासो की प्रति के अंत में लिखा है कि 'राणा अमरेश की आज्ञा से बिखरे हुए रासो के अंशों को एकत्र किया।' चंद के बनाए रासो की पांडुलिपि के अस्तव्यस्त हो जाने से उसके बाद के चारणों ने अपनी अपनी रचनाएँ उसमें जोड़ दी होंगी, जो एकत्रीकरण के समय उसमें मिल गई और संकलनकर्ताओं ने समय

आदि में विभाग करते हुए प्रस्तुत रूप रासों को दे दिया है। संवत् तथा ऐतिहासिक बातें ठीक न मिलने से यह निश्चय अवश्य है कि इसका बहुत अंश प्रक्षिप्त है पर अब ऐसे साधन भी उपलब्ध नहीं हैं कि वे अलग किये जा सकें।

पृथ्वीराज ने चंद को नागौर में बहुत सी भूमि दी थी, जहाँ उसके वंशज अब तक विद्यमान हैं। इन्हीं में एक नानूराम भट्ट हैं, जिन्होंने चंद से अपने समय तक का वंशवृक्ष तैयार किया है। सूरदास के कूट पदों की साहित्य लहरी की टीका में एक पद है, जिनमें सूरदास इन्हीं चंद के वंशधर बतलाए गए हैं और यह वंशावली भी नानूराम की वंशावली से मिलती हुई है।

पृथ्वीराज रासों का प्रधान रस वीर है पर शृंगार भी प्रचुरता से विद्यमान है। अन्य रस भी बराबर मिलते हैं। प्रेमगाथा का मिश्रण वीरों की वीरता के प्रदर्शन का साधनमात्र है। इतिहास की दृढ़ भित्ति पर होते हुए भी कवि-कल्पना ही का आधिक्य है और ये कल्पना-प्रसूत प्रसंग अत्यंत मनोरंजक तथा हृदयग्राही हैं। जिस समय की यह रचना कही जाती है, उस समय की प्रायः सभी विशेषताएँ इसमें मौजूद हैं। अनेक प्रकार के छंदों के प्रयोग से ग्रंथ की मनोरंजकता बढ़ गई है और भाषा-सौष्टव प्राचीनता के कारण दुरुह होते भी अपूर्व है। जीवन के सभी अंगप्रत्यंग पर कवि की दृष्टि रही है और उन सब की अभिव्यक्ति भी श्रवणीय उक्तियों द्वारा की गई है। भाषा की दृष्टि से भी इसमें बड़ी गड़बड़ी है, प्राचीनता तथा नवीनता दोनों का मेल है और व्यर्थ के शब्द भी आए हैं। खड़ी बोली का पुट लिए हुए भी बहुत से अंश मिलते हैं। कुछ उदाहरण :—

१. वाम अंग पठान । विरचि बाजीद सुपनिय ।

उन उप्पर कैमास । हुकुम पृथीराज सुदिनिय ॥

२. जयं जाय पत्तौ पृथ्वीराज जुद्धं । करी सव्व सेना विरुद्धं विरुद्धं ।
 बजे ताल कालं महा मल्लवीरं । दुहूँ बाँह सेना विरुद्धं सुधीरं ॥
 लगैं गुर्ज सीसं इसे टोप दुहूँ । मनो दंग दाहं लगैं बंस फुट्टैं ॥
 इसे मंत्र छत्री लगे लाग षगो । प्रलै काल ख्यालं मनो बीर जगो ॥

(प्रथम भाग पृष्ठ ३७६-७७)

३. करं तिय भंडिय रंग अनेक । फुरकहि भंषहि भंषह तेग ।
 चले धर बान सुसद्विय दिट्ट । अगैं हथ नारि अमूल गरिट्ट ॥

(प्रथम भाग पृष्ठ ४०४)

४. सुनि करि वचन आल्हा घर आये । छंज्यौ बास पयान कराये ॥
 साहन बाहन सब ही लीनौ । कनवज दिसा पयानौ कीनौ ॥

(छठा भाग पृष्ठ २५२६)

चंद बरदाई तथा उनके पुत्र जल्हन के बाद भट्ट कंदार तथा मधुकर कवियों का नाम आता है, जिन्होंने पृथ्वीराज के प्रति-स्पर्धी जयचंद का यशकीर्तन किया है पर उनकी रचनाएँ अप्राप्त हैं । जगनिक सं० १२३० के लगभग था और इसने कालिंजरनरेश परमाल के सामंत बनाफर वंशीय आल्हा और ऊदल के वीर चरितों का विशद वर्णन गेय छंद आल्हा में किया है, जो विशेष लोकप्रिय हुआ है । यह प्रबंध काव्य के रूप में रचा गया था पर मौखिक होने के कारण इसमें बहुत हेरफेर हो गया है । इसकी गूँज अब भी उत्तरी भारत के दिहातों में बनी हुई है पर बैसवाड़े में अधिक है । बुंदेलखंड में भी इसका बहुत प्रचार है । इन आल्हों का संग्रह पहिले पहिल मि० चार्ल्स इलिअट ने सं० १९१० के लगभग किया था और उसे छपवाया था । कुछ उदाहरणः—

कूदे लाखन तब हौदा से औ धरती मैं पहुँचे आइ ।

गगरी भर के फूल मैगाओ सो भुरुही के देओ पियाइ ।

जैसे भेबहा भेबन पैटे जैसे सिह बिडारै गाय ।

वह गत कीनो है लाखन ने नदी बेतवै के मैदान ।

देवि दाहिनी भइ लाखन को मुरचा हटो पिथौरा क्यार ।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा से परमाल रासो नामक एक ग्रंथ प्रकाशित हुआ है जिसके रचता का तथा रचनाकाल का पता नहीं है । यह पृथ्वीराजरासो ही के समान एक रचना है और उसी सी मिश्रित भाषा में है । दो एक उदाहरण यहाँ दे दिए जाते हैं:—

१. कियो परमाल हुकुम्म सगाज । चले सब साँवत जंग पै साज ॥

चँदेल बनाफर मुख्य सो सूर । बघेल सु गोहिल लोह करूर ॥

२. चले जात मग जन घने शिविका स्यंदन बाह ।

परब पाय मानौ चली गंगा जू की राह ॥

यह विग्रहराज चतुर्थ उपनाम वीसलदेव का आश्रित तथा समकालीन था । इसने सं० १२१२ वि० में वीसलदेव रासा नामक एक छोटा सा ग्रंथ लिखा है, जिसमें अपने नरपति नाह्द आश्रयदाता के युद्धों का वर्णन न कर मालवे की राजकुमारी राजमती से उसके विवाह होने, उससे रूठकर उड़ीसा जाने, विरह तथा लौटने आदि का वर्णन है । प्रेम प्रधान होते भी एक वीर के प्रेम-वर्णन के कारण इसे भी वीर गाथाओं में स्थान मिल गया है । गीति काव्य होने से मौखिक परंपरा से चले आने के कारण कुछ अंश प्रक्षिप्त हो सकता है । इसकी भाषा पश्चिमी हिंदी है, जिससे इसमें शुद्ध हिंदी या खड़ी बोली की विशेषताएँ भी मिलती हैं तथा अरबी फारसी के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं । काव्य परंपरा की हिंदी प्रधान ही है । इसकी भाषा अपभ्रंश तथा वर्तमान हिंदी की मध्यवर्तिनी है अतः इसे पुरानी हिंदी तथा खड़ी बोली हिंदी दोनों कह सकते हैं । उदाहरण:—

१. राजा राणी लेइ बोलाइ । गलि लागै अ रुदन कराइ ॥

उलिगांणउ घरि चालियौ । नमि नमि दूणौ करैं जुहार ॥

- राज कीज्यो घरि आपणइ । राणी नइ दियो कोडि टंकावलि हार ॥
 २. दुष्ट बचन बोल्या तिणि ठाई । ले चीठी आपी तणी राई ॥
 ३. एक उड़ीसा को धनी बचन हमारइ तू मानि जू मानि ।
 ज्यों थारइ सांभर डगगइ राजा उणि भरि युगइ हीरा खानि ॥
 जीभ न जीभ बिगोयनी दव दाधा का कुपली मेल्हइ ।
 जीभ का दाधा नुपाँगुरइ नाल्ह कहइ सुण जइ सब कोई ॥

नरपति नाल्ह के बाद शार्ङ्गधर के हस्मीर रासो, नल्लसिंह भट्ट के विजयपाल रासो आदि सुने जाते हैं पर ये सब अभी तक प्रकाश में नहीं आ सके हैं। पद्य-साहित्य के सिवा गद्य-साहित्य भी बहुत है और दोनों ही की रचना बराबर होती रही है, जिनका आगे यथावसर उल्लेख भी मिलेगा पर इनमें खड़ी बोली का कहीं कहीं प्रयोग मिलता है पर उसका मेल बराबर दिखलाई पड़ता है। यद्यपि चौदहवीं शताब्दि से वीरदर्प की कमी हो चली थी और इसी कारण पहिले के से एक भी रासो न बन सके पर राजस्थान ही में मुसल्मानों से कई शताब्दियों तक मुठभेड़ होती रही इससे गद्य या पद्य में कुछ रचनाएँ होती रहीं।

इस काल में उक्त चारण-साहित्य के साथ-साथ कुछ मनोरंजन का साहित्य भी तैयार हुआ था, जो विदेशीय आक्रमणकारियों के संपर्क के प्रभाव को स्पष्ट करता है। यह विशेष
 अन्य रचनाएँ न होते भी इन्हीं कारणों से महत्वपूर्ण है और साथ ही खड़ी बोली हिंदी के तत्कालीन प्रचलित रूप को भी दिखलाता है। खुसरो की कविता से उस समय के समाज आदि का भी कुछ कुछ पता चलता है और यह भी ज्ञात होता है कि विदेशीय यहाँ की बातों को जानने के कितने इच्छुक थे। मनोरंजन के साथ धर्मभरो भारत धार्मिक साहित्य-रचना में भी सदा के समान दत्तचित्त रहा। साहित्य-इतिहास के किसी काल में भी

वह इस ओर से विमुख नहीं रहा, कमी या अधिकता दूसरी बात है। राजनीति से दूर इस काल में भी कई महानुभावों ने अपने अपने उपदेश दिए हैं और नए नए पंथ भी स्थापित किए हैं, जिनमें गोरखनाथ के हठयोग मत, पुंडलीक भक्त का वारकरी पंथ तथा चक्रधर का महानुभाव पंथ प्रमुख हैं।

गोरखनाथ का समय संदिग्ध है और जब एक दल उनका समय आठवीं शताब्दि बतलाता है तब दूसरा पंद्रहवीं शताब्दि

तक उसे खींच लाता है। श्री ज्ञानेश्वर ने अपनी

गोरखनाथ

गुरुपरंपरा कही है, जिनका समय चौदहवीं

शताब्दि का मध्य भाग है। ज्ञानेश्वर जी के बड़े

भाई निवृत्तिनाथ ने गोरखनाथ के शिष्य गैलीनाथ या गहनीनाथ से दीक्षा ली और इन्होंने स्वयं अपने बड़े भाई से। इस प्रकार गोरखनाथ का समय तेरहवीं शताब्दि का मध्य मान्य है। गोरखनाथ शैवमत के अंतर्गत थे और दत्तात्रय के अवतार कहे जाते हैं। हठयोग के यह प्रवर्तक थे और इनका चलाया मत नाथपंथ कहलाता है। कहते हैं कि बौद्धमत के शून्यवाद से विकसित होकर यह इन्हीं के द्वारा शैवमत के अंतर्गत चला आया है और अलग निरंजन हो गया है। निरंजन पंथ, वाम पंथ आदि में वही व्याप्त है। गोरखनाथ की बहुत सी रचनाएँ संस्कृत तथा हिंदी में कही जाती हैं पर अब तक असंदिग्ध रूप से कोई भी रचना उन्हीं की नहीं बतलाई जाती। इनके निम्नलिखित उद्धरण प्रायः सभी साहित्येतिहासों में पाए जाते हैं। इनमें ब्रजभाषापन तथा राजस्थानीपन सभी ने देखा पर इनके खड़ापन से सबने आँख मींच ली। वास्तव में ये खड़ी बोली के प्राचीन उदाहरण ही कहे जा सकते हैं, अन्य का इन पर पुट मात्र है।

१. मैं जु हौं गोरख सो मछंदरनाथ को दंडवत करत हौं। हैं कैसे वै

मछंदरनाथ । आत्मा जोति निश्चल है अंतद्वकरन जिनि कौ अरु मूल
द्वार तैं छह चक्र जिनि नीकी तरह जानै ।

२. अवधू रहिया हाटे बाटे रूष बिरष की छाया ।

तजिवा काम, क्रोध, लोभ मोह संसार की माया ॥

३. खाए भी मरिए अनखाए भी मरिए ।

गोरख कहै पूता संजमि ही तरिए ॥

४. चारि पहर आल्यंगन निद्रा संसार जाइ विषया बाहो ।

उभय हाथों गोरखनाथ पुकारै तुम्है भूल महारो माह्या भाई ॥

५. आओ भाई धरि धरि जाओ गोरखवाल भरि भरि खाओ ।

भरै न पाका वाजै नाद ससिद्ध सूरन वाद विवाद ॥

पवन गोटिका रहणि अकास महिव्यल अंतरि गगन बिलास ।

पयाल नी डीबी मुनि चढ़ाई कथत गोरखनाथ मच्छींद्र बताई ॥

मुछंदरनाथ या मत्स्येंद्रनाथ किसी शाप के कारण नैपाल में रहते हुए व्यसन में फँस गए तब उनके शिष्य गोरखनाथ ने पहुँच कर सचेत किया—‘जाग मुछंदर गोरख आया ।’

गोरखनाथ के वास्तव में ऐसा ज्ञात होता है कि मुछंदरनाथ गुरु समकालीन योगी होते भी गोरखनाथ से प्रभावान्वित हुआ था ।

मुछंदरनाथ के अन्य कई शिष्य थे, जिनमें चौरंगी नाथ, घोड़ा चोली आदि प्रसिद्ध हैं । मुछंदरनाथ का गुरुभाई जलंधरनाथ कहा जाता है, जिसका शिष्य कानपाव या कणोरी था । इन सब की भी स्फुट कविताएँ मिलती हैं, जिनके कुछ उदाहरण दिए जाते हैं:—

जलंधरनाथ—यह संसार कुवधि का खेत । जब लग जीवे तबलग चेत ।

आँखियाँ देखै काना सुणै । जैसा बाहै तैसा लुणै ॥

चौरंगीनाथ—माली लौ भल माली लौ सींचे सहज कियारी ।

उनमनि कला एक पहुँपन पाईले आवागवन निवारी ॥

घोड़ा चोली—नषसिष पूरि रहीले पौन । आया दूध-भात तो खाए कौन ॥

मेर डंड काठा करि बंधि । बाई खेले चौसंठि संधि ॥

कानपाव—सगौ नहीं संसार चित्त नहिं आवै बैरी ।

नृभय होइ निस्संक हरिष में हस्यो कणेरी ॥

हस्यो कणेरी हरिष में एक लड़े आरन्न ।

जुरा बिछोही जो मरण मरण बिछोह्या मन्न ॥

यह नाथ संप्रदाय के सिद्ध महात्मा थे और गहनीनाथ के गुरु भाई कहे जाते हैं । गहनीनाथ का समय सं० १२७०-१३५० के

लगभग माना गया है अतः इनका समय भी

चरपटनाथ

प्रायः वही है । रज्जवदास जी ने अपने ग्रंथ सर-

वंगी में इन्हें राजस्थान के किसी चारण स्त्री का

पुत्र होना लिखा है । इनकी हिंदी रचना की भाषा प्राचीनता लिए सरल खड़ी बोली है और ओजस्विता पूर्ण है । कुछ उदाहरणः—

१. किसका बेटा किसकी बहू । आप सवारथ मिलिया सहू ।

जेता पूता तेती आल । चरपट कहै सब आल जंजाल ॥

२. चरषट चीर चक्र मन कंथा । चित्त चमाऊँ करना ।

ऐसी करनी करो रे अवधू । ज्युँ बहुरि न होइ मरना ॥

यह भी एक प्रसिद्ध महात्मा नाथ संप्रदाय के हो गए हैं, जो

चुणकरनाथ

चरपटनाथ ही के प्रायः समकालीन हैं या कुछ

पहिले के हो सकते हैं । इन्होंने भी कुछ पद

हिंदी में कहे हैं । उदाहरण लीजिएः—

साँधी सूधी के गुरु मेरे वाई सँ व्यंद गगन में फेर ।

मनका बाकुल चुणिया बोलै साधी ऊपर क्यों मन डोलै ॥

वाई संध्या सयल जग बाई किनहुँ न बंध ।

बाई बिहुरा ढहि पड़े जोरै कोई न संघ ॥

यह नाथ संप्रदाय के एक सिद्ध महात्मा थे, जिन्होंने गोरख-

नाथ से दीक्षा ली थी। ज्ञानेश्वर के बड़े भाई निवृत्तिनाथ इनके शिष्य थे, जिनका समय चौदहवीं शताब्दि का गहनीनाथ मध्य है। निवृत्तिनाथ का जन्म सं० १३३० में हुआ था और इनके पिता तथा पितामह को भी गहनीनाथ ने उपदेश दिया था अतः इनका समय तेरहवीं शताब्दि का उत्तरार्द्ध आता है। इन्होंने अवश्य ही अवस्था बहुत पाई थी, जिससे तीन पीढ़ियों तक शिष्य बनाए। इनकी रचनाओं की भाषा प्राचीनता लिए हुए भी खड़ी बोली हिंदी है। एक उदाहरणः—

गोरख सुत गहनी कहे नाथ पंथ की बानी ।

ग्यानी जानत गुरु पुत होत सोहि चढ़े निरबानी ॥

वालानाथ तथा देवलनाथ दोनों ही नाथ संप्रदाय के सिद्ध योगी थे। ये समकालीन थे और पंजाब के निवासी ज्ञात होते हैं। पंजाब में वालानाथ का टीला प्रसिद्ध है। वालानाथ, देवलनाथ दोनों ही ने हिंदी में कविता की है। ये चरपट-नाथ के प्रायः कुछ दिनों के लिए समसामयिक थे। भाषा इनकी चलती हुई हिंदी है। दोनों के उदाहरण क्रम से दिए जाते हैंः—

१. पहिले किए लड़का लड़की अब हो पंथ में पैठा ।

बूढ़े चमड़े भसम लगाई बज्र जती हैं बैठा ॥

पहिले पहरै सब कोई जागै, दूजे पहरै भोगी ।

तीजे पहरै तसकरि जागै, चौथे पहरै जोगी ॥

२. देवल भए दिसंतरी सब जग देख्या जाइ ।

नादी बेदी बहु मिलै भेदी मिला न कोइ ॥

मृतानैणसी की ख्यात में लिखा है कि धूँधलीमल का शिष्य गरीबनाथ सिद्ध योगी लाखड़ी नगर में आया, जिसके शाप से कच्छ का राय कर्ण घोघा शत्रु द्वारा परास्त हो गया और धूँधली-

मल के आशीर्वाद से भीम जाड़ेचा वहाँ का राजा धूधलीमल, गरीबनाथ हुआ। घीणोद में गरीबनाथ ने गद्दी स्थापित की। भीम का समय सं० १४४२ के आस-पास है, जिससे ये दोनों गुरु-शिष्य चौदहवीं शताब्दि के अंत से पंद्रहवीं शताब्दि के प्रायः मध्य तक रहे। दोनों के उदाहरण नीचे क्रम से दिए जाते हैं।

१. आइसजी आवो बावा आवत जात बहुत जुग दीठा कछू न चढ़िया हाथं ।
 अब का आवणा मुफल फलिया पाया निरंजनसिध का साथं ॥
 आइसजी बैठो बावा उठा बैठी बैठो उठि उठि बैठी जग दीठा ।
 घरि घरि रावल भिक्षा मागैं एक अमीरस मीठा ॥

२. पाताल की मीड़की आकास जंत्र बावैं ।
 चंद सूरज मिलै तहाँ तहाँ गंग जमुन गीत गावैं ॥
 सकल ब्रह्मांड तब उलटा फिरै तहाँ अधर नाचै डीव ।
 सति सति ही भापंत श्री सिद्ध गरीब ॥

महाराष्ट्र में पंढरपुर एक प्रसिद्ध तीर्थस्थान है जहाँ विठोबा या विठ्ठलनाथ जी का प्रसिद्ध मंदिर है। आपाढ़ तथा कार्तिक की शुक्ला एकादशी को यहाँ बड़ा मेला लगता है और दर्शनार्थ की गई इस यात्रा को वारी तथा यात्रियों को वारकरी कहते हैं। इसी वारकरी पंथ से इस पंथ का नाम पड़ा है। यह मूर्ति पुंडलीक नामक भक्त महात्मा की स्थापित की हुई है तथा यह संप्रदाय भागवत है और वैदिक धर्मानुकूल है। यह पंथ अद्वैतवादी है पर इसमें भक्ति ही मुक्ति का साधन माना गया है। भक्ति को मूल और ज्ञान को फल माना है। हरिकीर्तन ही प्रधान साधन है। इसकी कई शाखाएँ हैं, जिनमें चैतन्य, सख्य, आनंद तथा प्रकाश मुख्य हैं। इस पंथ में महाराष्ट्र के अधिकांश भक्त महात्मा हो गये हैं। ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम आदि संतगण इसी

पंथ में हो गए हैं। महाराष्ट्र के सभी पंथों से यह प्रार्चीन है।

सुप्रसिद्ध वारकरी पंथ के सिद्ध भक्त ज्ञानेश्वर का समय तेर-हवीं शताब्दि का अंतिम भाग रहा है और इनकी लिखी श्रीमद्भग-

वद्गीता की ज्ञानेश्वरी टीका इनकी उत्कृष्टतम रचना है। यह तीन भाई तथा एक बहिन थे—

निवृत्तिनाथ, ज्ञानेश्वर, सोपानदेव तथा मुक्ताबाई। सभी ने मराठी में रचना की है पर द्वितीय तथा अंतिम ने हिंदी में भी कविता की है। इनके बड़े भाई ने गोरखनाथ जी के शिष्य गहनीनाथ जी से दीक्षा ली थी। इन्हीं अपने बड़े भाई से ज्ञानेश्वर जी ने दीक्षा ली। इनकी तथा इनके बहिन की कविता के उदाहरण क्रमशः नीचे दिये जाते हैं।

१. निर्गुन सागर अथक पसारा, वाको तरैंग सकल संसारा।

उद्भव परलय बातें होई, लेना एक और देना दोई ॥

१. अ सोई कच्चा बे नहीं गुरु का बच्चा।

दुनिया तज कर खाक रमाई जा कर बैठ बन में।

खेचरि मुद्रा बज्रासन में ध्यान धरत है मन में ॥

हुकुम निवृत्ति का ज्ञानेश्वर को तिनके ऊपर जाना।

सद्गुरु की कृपा भई तब आप हि आप पिछाना ॥

२. वाह वाह साहब जी सद्गुरु लाल गुसाई जी।

लाल बीच में उदला काला ओंठ पीठ सों काला।

पीत उन्मनी भ्रमर गुंफा रस झलनेवाला ॥

सद्गुरु चेले दोनों बराबर एक दस्त में भाई।

एक से ऐसे दर्शन पाए महाराज मुक्ता बाई ॥

दक्षिण के एक भक्त कवि हो गए हैं, जिनका जन्म शक संवत् ११९२ (१३२७ वि०) में हुआ था और मृत्यु सं० १४०७ में हुई थी। आप के सहस्रों मराठी तथा हिंदी में पद्य पाए जाते हैं।

यह सितारा के नरसी बमनी गाँव के निवासी थे। यह जाति के दरजी या छीपी थे। यह पहिले डाँके डालते थे नामदेव पर बाद को पश्चात्ताप कर विशोवा खेचर के शिष्य हो गए और विठोवा की भक्ति में पंढरपुर में रहकर वहीं जीवन बिताया। तीर्थाटन करते हुए उत्तरी भारत भी आए थे। इनके विषय में अनेक चमत्कारपूर्ण दंतकथाएँ प्रचलित हैं। यह ज्ञानेश्वर जी के समकालीन थे। सिक्खों के ग्रंथ साहब में इनके पद भी संगृहीत किए गए हैं। कुछ उदाहरण :—

जहाँ तुम गिरिवर तहाँ हम मोरा, जहाँ तुम चंदा तहाँ हम चकोरा।

जहाँ तुम सरवर तहाँ हम माछी, जहाँ तुम दीया तहाँ हम बाती।

बेल के पाती शंकर पूजा, नामदेव कहे भाव न दूजा।

जोग जग्य तैं कहा सरै तीरथ-व्रत-दाना।

ओसै प्यास न भागिहै भजिए भगवाना ॥

दक्षिण के अनेक पंथों में महानुभाव या मानभाव भी एक है, जो पंजाब में जयकृष्ण और गुजरात में अच्युत कहलाता है।

इस पंथ की सभी बातें, धर्मग्रंथ आदि गुप्त रखे जाते थे पर इधर कुछ दिनों से विद्वानों की दृष्टि इस ओर गई है और कई लेख आदि निकले हैं।

इस पंथ के अनुयायियों के प्रति दक्षिण में लोगों की बड़ी अश्रद्धा थी। मूर्ति-पूजन न करने, स्त्री तथा शूद्र को संन्यास देने और मुसल्मान फकीरों सा संन्यासियों का काला कपड़ा पहिरने आदि अहिंदू आचारों के कारण इन पंथ वालों पर अश्रद्धा हो गई थी। श्रीकृष्ण तथा दत्तात्रेय इस पंथ में उपास्य देव हैं और गीता तथा वेद मान्य ग्रंथ हैं। इसका आरंभ बारहवीं शताब्दि में हुआ। इसके संस्थापक भड़ोच के नरेश हरपाल देव प्रसिद्ध नाम चक्रधर थे। इसमें गृहस्थ और संन्यासी दोनों होते हैं। इस पंथ के लोगों ने मराठी में

प्राचीन तथा अर्वाचीन काल में अच्छा साहित्य प्रणयन किया था। इस पंथ के उपदेशकों ने दूर दूर तक इसका प्रचार किया है और धर्मग्रंथों को प्रकाशित करने में इस पंथवाले अब अग्रसर हो रहे हैं।

महानुभाव पंथ के संस्थापक तथा प्रथम आचार्य चक्रधर का समय सं० ११९९ निश्चित माना गया है और इन्होंने भी हिंदी में कुछ रचनाएँ की हैं, पर वे सब प्रकाश में नहीं आई

उमाम्बा

हैं। इनके शिष्य नागदेवाचार्य थे, जिनकी वहिन

उमाम्बा की कुछ चौपदियाँ मिलती हैं, जो गुजराती मिश्रित खड़ी बोली हिंदी में है। इनका समय तेरहवीं शताब्दी का पूर्वार्ध है। इनकी रचना का एक उदाहरण नीचे दिया जाता है :—

नगर द्वार हो भिच्छा करो हो बापुरे मोरी अवस्था लो ।

जिहा जावो तिहा आप सरीखा कोउ न करी मोरी चिता लो ॥

हाट चौहटा पड़ रहूँ हो माँग पंच घर भिच्छा ।

बापुइ लोक मोरी अवस्था कोउ न करी मोरी चिता लो ॥

उक्त चक्रधर जी के समकालीन तथा शिष्य दामोदर पंडित ने भक्ति-विषयक कविता की है और अनेक राग-रागिनियों में बहुत से पद बनाए हैं। ये उच्च कोटि के कवि थे और

दामोदर पंडित

इनकी रचनाओं में हिंदी का काफी प्रभाव पड़ा है। शुद्ध हिंदी की कविता न करने पर भी उसमें

खड़ी बोली हिंदी के स्पष्ट छोटे छोटे टुकड़े मिलते हैं। जैसे:—

स्फटिक मध्ये हीरा बेध कर गया ।

उजयङ्गी लापली भिग कला ॥

महानुभाव या जयकृष्णी पंथ का पंजाब में प्रचार करनेवाले यही कृष्ण मुनि हुए हैं, जिनका समय पंद्रहवीं शताब्दी का मध्य है। यह उक्त प्रांत के अंतर्गत सारंगगढ़ के निवासी थे पर व्यापार के

विचार से जब यह दक्षिण गए तब वहाँ महानुभाव पंथी साधुओं के सत्संग से यह भी उसी पंथ के एक साधु हो
 कृष्णमुनि गए और स्वदेश लौटकर उसका प्रचार भी किया। इनकी कई रचनाएँ मिलती हैं। इनकी कविता का एक उदाहरण दिया जाता है:—

जड़ मूल बिना देखा एक दरख्त गूलर का।
 उसको अनंत अपार गूलर लागे शुमार नहीं फूलों का ॥
 जमीन आसमान बराबर देखे दो दो सूरज चंदा देखे नीलख तारे।
 चौदह भुवन सातों दरियाव मेरु पर्वत नदी नाले कई हजार ॥

यह साँभर देश के चौहान राजा हम्मीरदेव के एक सभासद राघव देव के पौत्र तथा दामोदर के पुत्र थे। यह हम्मीर रंतभँवर दुर्ग के राजा थे, जो सं० १३५७ में दिल्ली के शाहजहाँ सुलतान अलाउद्दीन खिलजी से लड़ा था। इस प्रकार शाहजहाँ का समय चौदहवीं विक्रमीय शताब्दि का उत्तरार्द्ध होता है। इसने हम्मीररासो नामक एक काव्य लिखा था, जो अप्राप्त है। दूसरी रचना शाहजहाँ-पद्धति नामक एक सुभाषित संग्रह है, जिसमें उसके पहिले के सुकवियों के पदों का चयन किया गया है। इसने वैद्यक पर भी ग्रंथ लिखे हैं। उक्त संग्रह ग्रंथ में शावर मंत्र दिए गए हैं और कुछ भाषा चित्र काव्य के उदाहरण भी हैं, जिनमें खड़ी बोली के टुकड़े भी मिले हुए हैं। कुछ उदाहरण यहाँ दिए जाते हैं:—

१. ओं गुरु के पाय शरणम् । ओं चवि चवि चार भार विसु माटो ॥
२. ओ दष्ट कर अष्ट कर कालिगनाग हरिनाग ।
 सर्प डुंडी बिसु दाढ़ बंधन शिव-गुरु-प्रसाद ॥
३. कलियाखिणी की दुहाई महादेव की पूजा पाई टालहि
 जई आगिली विष देहि ।

४. नूनं बादल छाई खेह पसरि निःश्राणशब्दः खरः

शत्रुं पाडिलुटालि तोडि हनिसौ एवं भणंत्युद्गताः

भूटे गर्व भया मयालि सहसा रे कंत मेरे कहे

कंठे पाग निवेशयाहि शरणं श्रीमल्लदेवं प्रभुं ॥

(श्रीकंठ रचित)

५. कीदृग्मतमंतंगजः कमभिनत्यादेननंदात्मजः

शब्दः कुत्रहि जायते युवतयः कस्मिन्सति व्याकुलः ।

विक्रेतुं दधि गोकुलात्प्रचलिता कृष्णेनमार्गे धृता

गोपी काचनतं किमाह करुणं दानी अनोखे भए ॥

उपर्युक्त उद्धरणों में शुद्ध खड़ी बोली के छोटे छोटे टुकड़े बराबर आए हैं, जो कम से कम आज से छ शताब्दि से पहिले के हैं। काव्य परंपरा की हिंदी भाषा के रूप भी हैं अर्थात् उस समय दोनों ही प्रकार के हिंदी के रूप प्रचलित थे। शाङ्गधर के हम्मीर रासो का एक पद निम्नलिखित कहा जाता है :—

ढोला मारिय ढिल्लि महुँ मुच्छिउ मेच्छ सरीर ।

पुर जज्जला मंत्रिवर चलिय वीर हम्मीर ॥ .

चलिअ वीर हम्मीर पाअ भर मेंइणि कंपइ ।

दिग दिग डह अंधार धूलि सुरिरह अच्छाइहि ॥

अमीर खुसरो का जन्म सं० १३१२ वि० में हुआ और इसकी मृत्यु सं० १३८१ में हुई। फारसी का यह प्रसिद्ध कवि तथा लेखक था। कहा जाता है कि इसने ९९ पुस्तकें लिखी थीं, जिनमें अब केवल बीस बाईस प्राप्त हैं। इसके समय में दिल्ली के राजसिंहासन पर ग्यारह सुलतान बैठे थे, जिनमें सात का यह स्वयं आश्रित रहा। यह गायन वादन दोनों में अत्यंत कुशल था तथा विनोद-प्रिय और सभा चतुर भी था। हिंदी में भी इसने बहुत कविता

की थी पर अब थोड़ी ही प्राप्त है, जिनका एक संग्रह प्रकाशित हो चुका है। खुसरो ने अपने निवासस्थान के आसपास के जन-साधारण की बोलचाल की भाषा में बहुत-सी कहसुकरियाँ, पहेलियाँ, पद आदि कहे हैं, जिससे वह शीघ्र ही सर्वजनप्रिय हो उठा। खुसरो ने यह भाषा गढ़ी नहीं थी प्रत्युन् जो जनसाधारण में नित्य-प्रयुक्त थी उसीका उपयोग किया है। इसकी कविता में दो प्रकार की भाषा मिलती है—गीत आदि में ब्रजभाषा और पहेली बुझौअल में खड़ी बोली। अंतिम पर ब्रजभाषा का पुट है। खुसरो साहित्यिक था पर हिंदी काव्यभाषा की परंपरा के बाहर था इसीलिए इसकी रचना में बोलचाल की भाषा का प्राधान्य होते भी काव्यभाषा का मेल है। इसने विदेशियों की सुविधा के लिए खालिकवारी नामक कोष लिखा है, जिसमें फारसी, तुर्की तथा अरबी शब्दों के पर्याय 'हिंदी या हिंदुई' में दिए गए हैं। यह कोष कविता में हैं और मौखिक साहित्य न होने के कारण इसमें अधिक रह बदल होने का स्थान नहीं है। इसकी तथा पहेली, गीत आदि की भाषा इतनी सुधरी हुई तथा कटी छँटी है कि वह वर्तमान काल की भाषा में बहुत दूर नहीं जान पड़ती। उदाहरण :—

१. एक तरुवर का फल है तर । पहिले नारी पीछे नर ॥

वा फल की यह देखो चाल । बाहर खाल और भीतर बाल ॥

२ आदि कटे से सबको पाले । मध्य कटे से सबको मारे ॥

अंत कटे से सबको मीठा । खुरू वाका आँखों दीठा ॥

उत्तर—काजल

३. रोटी जली क्यों ? घोड़ा अड़ा क्यों ? पान सड़ा क्यों ?

उत्तर—फेरा न था

४. औरों की चौपहरी बाजे चम्पू की अठपहरी ।

बाहर का कोई आए नहीं, आए सारे सहरी ॥

५. किसे पड़ी है जो जा सुनावे पियारे पी को हमारी बतियाँ ।

६. आतिश आग आब है पानी ।

बहिदी जुबाँ खानः हम बैत घर है ॥

बया आओ बिनशीं वैठो बिरी जा ।

बुबीं देख बिदेह दे बखुर खा ॥

चतुर्थ प्रकरण

पूर्व-मध्यकाल या भक्ति तथा ज्ञान काल—संत-साहित्य

(सं० १४००—१५०० वि०)

भारत में इस काल के आरंभ तक मुसल्मान स्थान स्थान पर छोटे छोटे राज्य स्थापित कर बस गए थे और दिल्ली में मुसल्मानी बादशाही की जड़ जमा दी गई थी, जहाँ के विषय-प्रवेश अधिकारी पहिले सुलतान और बाद को बादशाह कहलाने लगे । इनका साम्राज्य फैलता हुआ प्रायः समग्र भारत पर अधिकृत हो गया था । दास वंश से लगा कर मुगल राजवंश तक, प्रायः छः शताब्दि तक, कम या अधिक प्रभुत्व बना रहा और अंतिम के ध्वंसावशेष पर, क्योंकि हिंदू वीर नरेश-गण इनके अत्याचार से कुढ़ कर इनको प्रायः ध्वंस ही कर चुके थे, वर्तमान शासकगण अपना प्रभुत्व जमाने लग गए थे । इस मुसल्मान साम्राज्य की विस्तृत सीमा के भीतर तथा बाहर भी अनेक मुसल्मान राज्य स्थापित तथा नष्ट होते रहे थे । उत्तरी भारत के राजपूत नरेशगण मुसल्मानों द्वारा तथा आपस की फूट के कारण शक्तिहीन हो जाने पर हटते हुए राजस्थान में जा कर

बस चुके थे और उनकी छोटी छोटी शक्तियाँ भी वहीं सीमित हो जाने पर आपस ही के भगड़े में व्यस्त रहीं। कुल शक्तियों ने कभी सम्मिलित हो कर देश के लिये कुछ न किया। वे विदेशियों के अधीन उनके झंडे के नीचे रह कर स्वदेशियों से युद्ध करने में साहस तथा वीरता के कार्य बराबर करते रहे पर कभी भी अपने देशबंधुओं के लिए एक हो कर वे न लड़ सके। यही मुख्य कारण है कि भारत आज छ सात शताब्दियों से परतंत्रता की बेड़ी में जकड़ा पड़ा है।

तात्पर्य यह कि मुसल्मानों का संपर्क बढ़ता गया और उनके धर्म तथा संस्कृति का प्रसार होता गया, जिसका असर भारतीय धार्मिक, सामाजिक तथा राजनैतिक विचारों पर पड़ा और इसी कारण एतद्देशीय भाषाओं के साहित्यों पर उनकी पूरी पूरी छाप पड़ गई। चारण काल सी समस्त उत्तरीय भारत की साहित्य-रचना सिमित कर राजस्थान में सीमित हो गई और वहाँ भी वह केवल एक एक छोटे राज्य, राजवंश या स्फुट वीर की प्रशंसा में गाई जाने लगी। समग्र उत्तरी भारत के साहित्य की वह विशेषता जब न रह पाई तब राजनैतिक परिवर्तनों के कारण उत्पन्न स्थिति विशेष से एक नई विशेषता स्फुट हुई और यह काल धार्मिक रंग से रंजित हो गया।

‘शस्त्रेण रक्षितं राष्ट्रं शास्त्रविद्यां प्रयुज्यते’ उचित ही नीति है पर जब हम स्वदेश की रक्षा ही न कर सके और हमारे धर्मांध शत्रुओं ने हमारे सामने ही देव-मंदिरों को नष्ट भ्रष्ट किया, हमारे पूज्य महात्माओं तथा धर्मग्रंथों का अपमान किया और हमलोग केवल देखते रहने के सिवाय कुछ भी उनका प्रतीकार न कर सके तब हमारा आत्म-गौरव, उत्साह तथा शौर्य एक प्रकार अंतर्हित हो गया। ऐसी निरुत्साहपूर्ण तथा रुद्धवीर्य जनता जब कोई साह-

सिक या वीरतापूर्ण कार्य न कर सकी तब किस हृदय से वह वीर-काव्य रच या सुन सकती थी। उसका हृदय बैठ गया था, आगे बढ़ नहीं रहा था तब उसको उसे अपने ईश्वर की सुररक्षिणी पर असुर-विनाशिनी शक्ति की ओर प्रेरित कर सांत्वना देने की चेष्टा करनी पड़ी। इन धर्मांध आगंतुकों में इतना हठ तथा कट्टरपन था कि वे दूसरों को अपने विश्वास, श्रद्धा तथा परिपाटी से अपने अपने ईश्वर की पूजा अर्चा करने देना नहीं चाहते थे, उनके देवालयों तथा उपासना-गृहों को नष्ट कर डालते थे और उनके अपने धर्मग्रंथों के पठनपाठन करने में बाधा डालते थे। इन सब कष्टों से जनता की प्रवृत्ति उस ओर अग्रसर हुई, जिसमें आडंबर या कर्मकांड का आधिक्य न था अर्थात् उनके धार्मिक सिद्धांतों तथा विचारों में परिवर्तन हुए और वे सगुण उपासना में 'राम ते अधिक राम कर नामा' मानने लगे तथा निर्गुण उपासना की ओर भी झुके। इन दोनों ही में कर्मकांड के विशेष समारोह की आवश्यकता ही न रही। मुसलमानों के धर्म का भी प्रचार हो रहा था और उसके प्रभाव से सूफियाना प्रेम, इश्क हकीकी, का भी असर पड़ रहा था। अपने ईश्वर को समग्र सृष्टि का स्रष्टा समझनेवाली हिंदू जनता ने मुसलमानों से अभेद भाव स्थापित करने के विचार से राम-रहीम की एकता प्रस्तावित किया, जिसका कुछ सहृदय मुसलमानों ने समर्थन भी किया। दोनों धर्मों की कुछ मोटी मोटी मिलती जुलती बातें लेकर बहुत से पंथ प्रवर्तकों ने अनेक संप्रदाय चला दिए और इसके साथ ही क्रमशः ईश्वरोन्मुख प्रेम अर्थात् भक्ति का ऐसा प्रबल और विस्तृत प्रवाह बहा कि सारा देश इससे तरंगित हो उठा। तात्पर्य यह कि इस काल में जो साहित्य बना वह धर्म ही का आधार लेकर निर्मित हुआ, चाहे वह प्राचीन वैदिक या पौराणिक रूप में हो, चाहे नवीन रूप में।

वैदिक काल के कर्मकांड का समय बीत गया था तथा ज्ञान और विरक्तिपूर्ण धर्मों की ओर से भी जनसाधारण उदासीन हो रहे थे। वे अत्यधिक आडंबरपूर्ण कर्मकांड से ऊबसे सगुण उपासना गए थे और गार्हस्थ्य धर्म त्यागकर ही जो कार्य हो सकता था उसकी ओर भी वे आकर्षित नहीं हो सकते थे। उनकी चित्तवृत्ति कोरे ज्ञानकांड से तृप्त नहीं हो रही थी अतः वे उपासना धर्म की ओर आकृष्ट हो रहे थे। कुमारिल भट्ट ने वैदिक कर्मकांड की जागृति की और शंकर स्वामी ने अद्वैत मत का प्रतिपादन किया, अभेद में भेद माया के कारण बतलाया। पर जनसाधारण की इनसे तुष्टि नहीं हुई और वे परमाशा रूपी परमेश्वर को पाने की चिंता में व्यग्र रहे और राजनैतिक स्थिति के कारण अपनी दीनता प्रकट करते हुए उसी को याद करते रहे। इस अवसर के अनुकूल ही पहिले पहिल रामानुजाचार्य ने विशिष्टाद्वैत का मत प्रवर्तन कर ज्ञान तथा उपासना का सम्मिश्रण किया और अपरिमेय गुणों युक्त परब्रह्म परमेश्वर का सगुण रूप में अर्चन करने का उपदेश दिया। परमेश्वर की त्रिगुणात्मक त्रिमूर्ति में से पालक विष्णु भगवान की उपासना चलाई, जो भारत में प्रायः सर्वत्र प्रचलित है। इनके बाद अनेक आचार्यगण हुए, जिनमें किसी ने विष्णु के रामावतार की और किसी ने कृष्णावतार की उपासना चलाई। अंतिम में बाल रूप, युगल रूप आदि भाव की उपासना के भेद से कई संप्रदाय हो गए। श्रीकृष्ण चैतन्य संप्रदाय में उपासना के साथ नाम-कीर्तन को प्रधानता दी गई। नीचे की तालिका से संक्षेप में ये स्पष्ट हो जायेंगे क्योंकि साहित्य-तिहास में धार्मिक इतिहास पर विशेष विवेचन की आवश्यकता नहीं है।

संख्या	दैवी आचार्य	लौकिक आचार्य	संप्रदाय उपासना				विशेष
			का नाम	का भाव	सिद्धांत	आचार	
१	लक्ष्मीजी	रामानुजाचार्य	श्री	दास्य	विशिष्टा द्वैत	विष्णु भगवान	
२	सनक सना- तन, सनंदन, सनत्कुमार	निंबादित्य	हंस	सख्य	द्वैताद्वैत	राधाकृष्ण	
३	ब्रह्माजी	मध्वाचार्य (श्री- कृष्ण चैतन्य)	ब्रह्म	माधुर्य	द्वैत	राधाकृष्ण	नाम-कीर्तन का प्रधान्य
४	महादेवजी	विष्णुस्वामी (वल्लभाचार्य)	रुद्र	वात्सल्य	शुद्धा- द्वैत	वाल्कृष्ण	

इस प्राचीनतर सगुण उपासना की कुछ समयानुकूल परिवर्तित परंपरा के साथ नवीन परिस्थिति के अनुकूल एक सामान्य भक्ति मार्ग का भी प्रचार होने लगा, जिसकी भी दो निर्गुण उपासना शाखाएँ फूट चलीं। यह मुख्यतः एकेश्वरवाद था और इसमें उसका कोई निश्चित स्वरूप नहीं माना गया था। यह निर्गुण मार्ग ब्रह्मवाद तथा खुदावाद दोनों ओर ढलता था, इसलिए जातिबंधन या उच्च नीच आदि का विचार न कर ईश्वर की भक्ति का सबको समान अधिकारी मानता था। यह सब झगड़ा प्रतिमा पूजन ही में चलता है और केवल राम-कृष्ण, ईश्वर, अल्लाह का नाम लेने का सभी को समान अधिकार है। ये निर्गुणिए भक्तगण कभी ब्रह्मज्ञान छोटते थे, कभी अवतारों का वर्णन करने लगते थे और कभी एकेश्वरवादी, कभी अद्वैतवादी तथा कभी सगुण उपासक से बन जाते थे। इन पंथ-प्रवर्तकों का वास्तव में मुख्य ध्येय यही रहा है कि कोई ऐसा मार्ग निकाला जाय, जिस पर सभी जाति तथा धर्म के लोग आपस के झगड़े

भूलकर साथ-साथ अग्रसर हो सकें। यही कारण है कि हिंदू तथा मुसल्मान दोनों धर्मों की मिलती जुलती साधारण साधारण बातें लेकर तथा दोनों की स्पष्ट विभिन्नताओं की, जैसे मूर्तिपूजन, अवतार वाद की एक ओर तथा रोज़ा निमाज की दूसरी ओर, असारता दिखलाते हुए एक सामान्य भक्ति-पद्धति निकाली गई। ब्रह्म, जीव, माया आदि का वकभक्त खूब किया गया। इनमें एक शाखा में ब्रह्मज्ञान की और दूसरे में सूफी मतानुकूल इश्क हकीकी अर्थात् शुद्ध प्रेम की प्रधानता है।

जिस प्रकार विनाशकारी महाभारत युद्ध के बाद चार्वाक मत का प्रचलन हुआ था उसी प्रकार भारत के परतंत्र हो जाने के बाद ये निर्गुण ज्ञानप्रधान पंथ संतों द्वारा प्रच-
 ज्ञान प्रधान लित किए गए थे। मूर्ति-खंडकों द्वारा पादाक्रांत भारत ने अपने चमत्कार-प्रिय स्वभाव के कारण शक्तिहीन के समान देव-मूर्तियों को नष्ट-भ्रष्ट होते देखकर उन पर अश्रद्धा प्रकट की और निर्गुण, निराकार ब्रह्म की ओर वह झुक पड़ा। कंठी, जमेऊ, मूर्ति पूजन, व्रत आदि की हँसी लेते हुए लोग उनका खंडन करने लगे। बाह्याडंबर तथा कर्मकांड को यथाशक्ति दूर कर धर्म का अत्यंत साधारण रूप ग्रहण किया गया, जिसे सभी समान रूपेण मान सकते हैं। इन ज्ञानियों में कविता का अत्यधिक प्रचार हुआ और सभी पंथ-प्रवर्तकों ने अपने उपदेश कविता ही में दिए। इनमें कुछ प्रतिभावान कवि थे पर अधिकतर कोरे तुकड़ ही रहे। साखी, सबद, दोहरों की भरभार हो गई पर इनमें साहित्य की कोटि में बहुत कम आ सके। इनकी कविता में एक ही प्रकार की बातों की फिर फिर आवृत्ति होती रही और चर्वित चर्वण की ओर आकर्षण रह भी नहीं जाता। भाषा भी इन लोगों की सुव्यवस्थित नहीं थी और जनसाधारण में प्रचलित भाषा ही को

इन्होंने लिया था। शिष्ट भाषा का अभाव इस कारण भी था कि सुशिक्षितों और उच्चकोटि वालों की इस ओर रुझान कम रही। भक्त कवियों की रचनाओं सी सरलता, काव्यकुशलता तथा तल्लीनता उनमें न आ सकी पर तब भी धार्मिक दृष्टि से शुद्धाचरण, आत्मसम्मान आदि भावों को जनसाधारण में उत्पन्न कर बाह्या-डंबर, अहम्मन्यता आदि कमकर इन संतों ने उन्हें उठने का अवसर दिया। परंतु राम-रहीम की एकता का जो प्रस्ताव लेकर ये संत उठे थे वह एक दम असफल ही रह गया। इन संतों में कबीर, नानक, दादू दयाल, सुंदरदास आदि प्रतिभाशाली पुरुष हो गए हैं।

प्रेम प्रधान शाखा में लौकिक प्रेम के कथानकों को लेकर ही अलौकिक-प्रेम की व्याख्या की गई है। वास्तव में वे नीरस हृदय, जिनमें लौकिक प्रेम को भी स्थान नहीं मिल सकता, अलौकिक प्रेम की महत्ता समझ ही क्या सकते हैं और इसके विपरीत प्रयास करना मानों सिक्का से स्नेह निकालना है। सूफी संप्रदाय में इसी अलौकिक प्रेम, ईश्वर-प्रति-प्रेम अर्थात् इश्क हकीकी, को लेकर ही संसार से विरक्त हो उसी परमेश्वर की खोज की जाती है और उसके न मिलने तक अर्थात् विरहकाल में जो व्यथा हृदय को होती है उसीकी उक्त संप्रदाय के कविगण अपनी अपनी कविता में व्याख्या करते हैं। ये आशिक अर्थात् प्रेमी होते हैं और माशूक अर्थात् प्रिय खुदा या परमेश्वर होता है। सारा जीवन उसकी खोज में, विरह में कटता है, जो प्रेम की पीर कहलाती है। हिंदी में भी अनेक सहृदय सूफी मुसल्मानों ने इस प्रकार की प्रेम गाथाएँ लिखी हैं। इनमें इस प्रेम के पीर की जितनी ही मार्मिकता तथा विह्वलता से व्याख्या की गई है उतनी ही वह लौकिक प्रेम से

ऊँच उठी है तथा कवि अपने प्रयत्न में उतना ही सफल हुआ है। धार्मिक द्वंद्व से परे होने के कारण इन्हें सभी धर्मवाले रुचि से पढ़ते हैं, जिनमें संसार से परे परोक्ष के रहस्य की ओर भी कुछ संकेत मिल जाता है।

इस काल में इस खड़ी बोली हिंदी की एक धारा और बहने लगी, जो आरंभ में अत्यंत क्षीण थी। सहृदय मुसलमानों के जब हिंदी में हार्दिक उद्गार यत्र-तत्र कविता के रूप में निकलने लगे और उनका प्रचार भी मुसलमानों में होने लगा तब कुछ कठमुल्लाओं में यह धारणा फैली कि यदि यही क्रम जारी रहा तो शीघ्र ही मुसलमानगण हिंदुओं की भी हिंदी रचनाएँ मनन करने लगेंगे तथा उनकी संस्कृति पर असर पड़ने लगेगा। ये धर्म के लिए कितने कट्टर रहे हैं और हैं, यह प्रत्यक्ष है और यह निश्चय था कि भावुक कवि बिना कुछ कहे किसी प्रकार मान नहीं सकता अतः हिंदी भाषा लेते हुए पर फारसी के छंदशास्त्र तथा फारस की भावना, दृश्य, अंतर्कथा आदि का प्रयोग कर रचना करने की ओर वे कविगण प्रोत्साहित किए जाने लगे। क्रमशः इसका प्रचार हुआ और खूब हुआ। भक्ति काल में जितने हिंदी के मुसलमान कवि हो गए उसके चतुर्थांश भी रीतिकाल में नहीं मिलेंगे और वर्तमान काल में नाम को भी नहीं रह गए। यह दूसरी बात है कि ग़ज़लों या मसनवी आदि से सरल भाषा के उदाहरण चुनकर हम उन्हें हिंदी में स्थान दे दें या कुछ कवि या शायर ऐसे भी वर्तमान हैं, जो गेय पद प्रायः शुद्ध हिंदी में लिखते हैं। जो कुछ भी हो इस उर्दू धारा की आत्मा हिंदी ही रही है और रहेगी तथा जिस दिन वह उससे वंचित की जायगी उसी दिन उसका नाम बुत जायगा, उसमें उसके कविगण कोहे बेसतून का या दजलः व फरात का या बुलबुले हजार दास्ताँ का

कितना भी बयान करें क्योंकि 'दिल उनका नादीदः उनपर फिदा है' पर जिस दिन उनकी भाषा से 'है, उन पर तथा उनका' हटा दिया जायगा उसी दिन उनकी यह भाषा 'उनका' (कल्पित पक्षी) हो जायगी।

इस दृश्य सृष्टि का कोई स्रष्टा है और वह सृष्टि के किसी भी जीव से महत्तर है, ऐसी भावना अत्यंत प्राचीन काल से प्रायः

संभ्य या असंभ्य सभी जातियों में चली आ रही है, इसमें संदेह का कोई स्थान नहीं है। यह प्रायः

संत काव्य

सभी लुप्त या वर्तमान धर्मों की भित्ति रही है।

उस स्रष्टा की अनेक प्रकार से अनेक रूप में अनेक नाम से व्याख्या की गई है और उस स्रष्टा से जीव से क्या संबंध है तथा जीव उसका किस प्रकार ध्यान, कीर्तन, उपासना आदि कर सकता है, इसकी भी विवेचना बहुत से रूपों में की गई है और होती रहेगी। यही अनेकरूपता संसार के सारे धार्मिक द्वंद्व की मूल कारण रही है। इस्लाम धर्म का प्रभाव इस काल के साहित्य पर प्रेमकाव्य के सिवा संतों की कविता पर भी विशेष रूप से पड़ा है। कट्टर मुसल्मान शासकगण का अन्य धर्मों तथा धर्मवालों का नाश करना ध्येय था अतः वे हिंदुओं के मूर्ति पूजन तथा धार्मिक ग्रंथों के पठन-पाठन या प्रणयन के पूर्ण विरुद्ध थे। वे मूर्तियों तथा प्राचीन धर्मग्रंथों के नष्ट करने में सदा व्यस्त रहे और यह जटिल प्रश्न हिंदुओं के सामने था कि वे उनकी रक्षा करें या उन्हें हटाकर कोई ऐसा सामान्य धर्म मानें जिससे उनके हिन्दुत्व की रक्षा के साथ वे उसका प्रचार कुछ सुविधा के साथ कर सकें। इसी प्रश्न के उत्तर स्वरूप संतगण हिंदू धर्म के मूल सिद्धांतों को लेते हुए इस्लाम धर्म की भी कुछ बातों को ग्रहण कर अपना उपदेशमय साहित्य सृजन करने लगे, जो बाद को संत-साहित्य कहलाया और उनके चलाए मत संत-पथ या निर्गुण पंथ कहलाए। इस प्रकार ये संत भक्त साधक

होते हुए कवि भी थे। हिंदी साहित्य के मध्यकाल की यह एक निजी विशेषता है कि इसके प्रायः सभी कवि भक्त, महात्मा तथा साधक थे और यही कारण है कि यह काल असामान्य रूप से इसके साहित्येतिहास में महत्वपूर्ण हुआ है।

ज्ञान प्रधान शाखा के प्रधान संत कवि कबीर की जन्मभूमि काशी है और स्वयं कबीर ने कहा है कि:—

काशी का मैं बासी बाभन नाम मेरा परबीना ।

एक बेर हरिनाम बिसारा पकरि जुलाहा कोना ॥

काशी में हम प्रगट भए हैं रामानंद चिताए ।

कहा जाता है कि लहरतारा तालाब के पास नीरू नीमा नामक जुलाहा दंपति ने इन्हें सद्यः प्रसूत पाकर पालन पोषण किया था

और विधवा ब्राह्मणी से ज्येष्ठ शु० १५ सं०

कबीर

१४५६ को इनका जन्म हुआ था। श्री रामानंदजी

का इन्होंने शिष्यत्व ग्रहण किया। इन्होंने लोई

नामक स्त्री से विवाह किया था, जिससे दो संतान कमाल और कमाली थीं। इनका मृत्यु संवत् भी संदिग्ध है पर सोलहवीं शताब्दि के मध्य के आसपास इनकी मृत्यु हुई है। इनकी मृत्यु काशी में नहीं हुई थी। ये स्वयं लिखते हैं:—

सकल जनम शिवपुरी गंवाया। मरति बार मगहर उठ धाया ॥

जो काशी तन तजे कबीरा। तो रामहि कौन निहोरा ॥

कबीर ने अपना एक पंथ ही अलग चलाया, जो कबीर पंथ के नाम से प्रसिद्ध है और बहुत से कबीर पंथी अब भी पाए जाते हैं। इसमें हिंदू धर्म के भावों की अधिकता है। निर्गुण, निराकार एकेश्वरवाद आदि की इनकी रचनाओं में अधिक व्याख्या है। इनकी उल्टवाँसी प्रसिद्ध है और कहीं-कहीं व्यंग्य साधारण मजाक हो गया है, जैसे:—

कंठी बाँधे हरि मिले तो कबिरा बाँधे कुंदा ॥

पाहन पूजे हरि मिले तो मैं पूजूँ पहार ।

घर की चाकी कोइ न पूजे पीसि खाय संसार ॥

कबीर की रचनाएँ जितनी सब बतलाई जाती हैं वह संदिग्ध हैं। उसमें मिला हुआ प्रक्षिप्त अंश बहुत है। इनकी भाषा भी खिचड़ी सी है और इनकी दृष्टि भी भाषा की शुद्धता पर न थी। छंदशास्त्र का भी विशेष विचार न करते थे, कहीं दो एक मात्रा अधिक है तो कहीं कम है। अपने भावों को व्यक्त कर देना ही इनका ध्येय था। जनसाधारण में प्रचलित भाषा ही में अपना उपदेश देते थे क्योंकि उन्हीं के समझने के लिए वे उपदेश बनाए जाते थे। इनकी भाषा में खड़ी बोली का विशेष मेल है। उदाहरण:—

१. नारी तो हम भी करी कीया नहीं बिचार ।

जब जानी तब परिहरी नारी बड़ा बिकार ॥

२. ज्ञान को रंग ध्यान पिचकारी हँस हँस नाम रंग दो डार ।

कहै कबीर सुनो भाई साधो जग में खेलो सँभार ॥

३. कबीरा इश्क का माता दुई को दूर कर दिल से ।

जो चलना राह नाजुक है हमन सिर बोझ भारी क्या ॥

४. मोरे बाबुल दीन्हों गवनवाँ मैं तो चली हूँ सइआँ के नगर ।

आ मोरी गोइयाँ गरे लागो हमरे फेर के न होइहे मिलनवा ॥

अंत बिदा हो चली है दुलहन पिय पिय लगी रटनवा ।

कहै कबीर सुनरी दुलहन पिय के धर ले चरनवा ॥

यह बलख बुखारा के राजवंश के थे और विरक्त होकर भारत चले आए थे। इनके विषय में विशेष ज्ञात नहीं हुआ है। कहा

जाता है कि सेना में एक मरे हुए ऊँट को देखकर

वाजिद

यह संसार से विरक्त हो गए थे। इनका उल्लेख भक्तों में हुआ है। मीराबाई ने अपने पद में इनका

नाम अन्य भक्तों के साथ दिया है, इससे यह पंद्रहवीं शताब्दि के आस पास के हो सकते हैं। इन्होंने स्फुट पद बनाए हैं और प्रायः सब खड़ी बोली में हैं। कुछ उदाहरण:—

दिल के अंदर देख कि तेरा कौन है ।

चले न मेला साथ अकेला गौन है ॥

देख देह धन दार इन्हूँ से चित दिया ।

रटा न निस दिन राम काम तैं क्या किया ॥

यह काशी-निवासी चर्मकार जाति के थे। इनकी भगवद्भक्ति तथा वैष्णवों में इनका मान देखकर कुछ अशांति मची थी पर इनकी अलौकिक शक्ति देखकर लोग पस्त हो गए।

रैदास इनकी कई चामत्कारिक दंतकथाएँ प्रसिद्ध हैं।

यह सुकवि थे और इनके पद 'ग्रंथ साहिब' में संगृहीत हैं तथा रैदास की बानी, साखी आदि छप भी गई हैं। इन्होंने पूर्ण आयुष्य पाया था। इनका समय पूरी पंद्रहवीं शताब्दि है। नाभाजी के भक्तमाल में इनका उल्लेख है। खड़ी बोली मिश्रित भाषा ही में कविता इन्होंने की है। कुछ उदाहरण:—

१. तसवी फेरो प्रेम की, दिल में करो निमाज ।

फिरो सगुल दीदार को उसी सनम के काज ॥

२. जिसके इश्क आसरा नाहीं क्या निमाज क्या पूजा ?

३. तीरथ बरत न करों अँदेसा । तुम्हरे चरन कमल क भरोसा ।

जहँ जहँ जाओ तुम्हरी पूजा । तुमसा देव और नहिं दूजा ॥

४. प्रभुजी तुम मोती हम धागा, जैसे सोनहि मिले सोहागा ।

प्रभुजी तुम स्वामी हम दासा, ऐसी भक्ति करे रैदासा ॥

५. सब घट अंतर रमसि निरंतर मैं देखन नहिं जाना ।

गुन सब तोर मोर सब अवगुन कृत उपकार न माना ॥

यह सिंध प्रांत के सेहवन नगर का निवासी था। कसाई होते

भी जीव हिंसा से दूर रहता था। दूसरों के यहाँ से मांस लाकर
 बेचता था। कहा जाता है कि यह शालिग्राम
 की एक ही बटिया से तौलकर सभी वजन मांस
 बेचता था। यह नामदेव जी का समकालीन था
 और जगन्नाथ जी जाकर वहीं भक्त हो कर रह गया। भक्तमाल में
 इसका उल्लेख है और इसकी टीका में भी। इसने भक्ति के स्फुट
 पद बहुत से कहे हैं। कुछ उदाहरण:—

एक बूँद जल कारने चातक दुख पावे ।

प्राण गए सागर मिले पुनि काम न आवे ॥

प्राण जो थाके थिर नहीं कैसे विरमावो ।

बूढ़ मुए नौका मिले कहु काहि कढ़ावो ॥

मैं नार्ही कछु हौं नहीं कछु आहि न मोरा ।

औसर लज्जा राखि लेहु सदना जन तोरा ॥

यह जाति के जाट थे तथा इनका जन्म सं० १४७२ में कहा
 जाता है। यह राजस्थान के निवासी थे। यह विरक्त भक्त थे
 तथा पूजापाठ और भजन में सदा लीन रहते थे।

यह श्री रामानंद जी के शिष्य हुए थे। इनका भक्त-
 माल में उल्लेख हुआ है, जिसमें इनकी भक्ति की

चमत्कारपूर्ण कथाएँ भी दी हुई हैं। स्फुट पद कहे हैं। उदाहरण:—

ज्ञान प्रवेस गुरुहि धन दीया ध्यान मान मन एक भये ।

प्रेम भगति मानी सुख जान्या त्रिपति अधाने मुक्ति भये ॥

जोति समाय समाने जाके असली प्रभु पहिचान्या ।

धनै धन पाया धरणीधर मिलि जन संत समाय ॥

यह गागरुन्नगढ़ के अधिपति थे, इनका जन्म सं० १४८२ में
 हुआ था। यह पहिले देवी के उपासक थे पर बाद में श्री रामानंद जी
 के शिष्य होने पर उनके साथ इन्होंने बहुत तीर्थाटन किया। इनकी

पत्नी सीता भी इनके साथ बराबर रहीं। यह
 पोपा अंत में द्वारिका जी में बस गए। यह बड़े विरक्त
 वैष्णव थे और इनकी भक्ति की अलौकिक कथाएँ
 प्रसिद्ध हैं। भक्तमाल में इनका भी उल्लेख है। इन्होंने स्फुट पद
 बहुत कहे हैं। कुछ उदाहरण :—

काया देवा काया देवल काया जंगम जाती ।

काया धूप दीप नैवेदा काया पूजा पाती ॥

जो ब्रह्मंडे सोई पिंडे जो खोजे सो पावे ।

पीपा प्रणवे परम तत्तु है सतगुरु होय लखावे ॥

यह बांधवगढ़ के निवासी धनाढ्य वैश्य थे। यह कबीर के
 प्रधान शिष्य तथा उनकी गद्दी के उत्तराधिकारी
 धर्मदास हुए। इनका जन्म सं० १४५६ के बाद हुआ था
 क्योंकि कबीर से अवस्था में छोटे थे। आरंभ
 काल में तीर्थ यात्रा, अर्चन पूजन में बहुत व्यय करते थे। धर्मदास
 अपने अमर सुखनिधान में स्वयं लिखते हैं:—

धरमदास बंधो की बानी। प्रेम प्रीति भक्ति में जानी ॥

मनसा वाचा भजे गुपाला। तिलक देइ तुलसी की माला ॥

द्वारिका जगन्नाथ होइ आए। गया बनारस गंग नहाए ॥

मथुरा से लौटते समय कबीरदास से धर्मदास की भेंट हुई,
 जिनकी प्रसिद्धि काफी हो चुकी थी। कबीर के उपदेश सुनकर यह
 ऐसे प्रभावित हुए कि उसके शिष्य हो गए और काशी में रहने लगे।
 कबीर के बाद प्रायः बीस वर्ष यह गद्दी पर रहे और तब इनके पुत्र
 चूड़ामणि गद्दी पर बैठे। इनकी शब्दावली का संतों में बहुत आदर
 है। इनकी शब्दावली कम होते भी कर्कश नहीं है, सहृदयता पूर्ण
 है। भाषा पूर्वी है, कहीं कहीं खड़ी बोली का पुट है। उदाहरण :—

१. साधु भक्त के चरन पखारे। भोजन कराइ अस्तुति अनुसार ॥

२. खुली किवरिया मिटी अंधियरिया । धन सतगुरु जिन दिया है लखाय ॥

कबीर के पुत्र का नाम कमाल था । इसने भी कुछ कविता की है और वह साधारण है । इसकी भाषा में
 कमाल भी खड़ी बोली का पुट काफी है और कहीं कहीं इसकी कविता शुद्ध खड़ी बोली है । कविता अधिक

प्राप्त नहीं है । उदाहरण :—

जिकर कर जिकर कर फिकर कूँ दूरकर बैठ चौगान बिच बाँध ताटी ।
 अलक ने खलक कुल जो कि पैदा किया अंत हो जायगी खाक माटी ॥
 मीर उमराव घड़ि चार के पहर में ऊठकर चले दरवार हाथी ।
 कहत 'कम्माल' कब्बीर का बालका करम औ धरम दो संग साथी ॥

नानक का जन्म सं० १५२६ के कार्तिक की पूर्णिमा को लाहौर के तलवंडी ग्राम में हुआ था । पिता का नाम कालूराम और माता का वृत्ता था तथा जाति के खत्री थे । इनका विवाह
 नानक सुलक्षणा से सं० १५४५ में हुआ था, जिससे दो पुत्र श्रीचंद और लक्ष्मीचंद हुए । प्रथम ने उदासी

पंथ अलग चलाया था । नानक की मृत्यु सं० १५९५ में करतारपुर में हुई । इनका मन व्यवसाय आदि सांसारिक कार्यों में न लगता था । कुछ दिन सेवा वृत्ति करने के बाद तथा साधु सेवा करते हुए इन्हें एक बार नदी में स्नान करते समय आत्म ज्ञान हुआ तब सब छोड़कर यह पर्यटन करने निकले । यह भक्ति भाव से जा पद बनाकर गाते थे उन सबका संकलन ग्रंथ साहब में हुआ है । इनकी भाषा ब्रज की तथा खड़ी बोली है, जिस पर पंजाबी का पुट है । इन्होंने सरल भाषा में भक्ति तथा विनय के उपदेश दिए हैं । संसार की अनित्यता, विरक्ति आदि भी इनकी कविता में दिखलाई गई है । उदाहरण :—

१. सोच विचार करे मत मन में जिसने हँडा तिसने पाया ।

नानक भक्तन दे पद परसे निसि दिन राम चरन चित लाया ॥

२. गुरु परसादी दुर्मति खोई । जहँ देखा तहँ एकै सोई ॥

३. अस्तुति निंदा दोऊ त्यागे खोजे पद निरवाना ।

जन नानक इह खेल कठिन है किनहु गुरु-मुख जाना ॥

४. काहे रे बन खोजन जाई ।

तैसे ही हरि बसे निरंतर घट ही खोजो भाई ॥

५. गुरु परसादी बूझ ले तऊ होय निबेरा ।

घर घर नाम निरंजना सो ठाकुर मेरा ॥

इस पद जो अरथाइ ले सो गुरु हमारा ।

नानक चीन्हे आपको सो अपर अपारा ॥

अहमदाबाद के लोदीराम नामक नागर ब्राह्मण को वांछा नदी में एक बहते संदूक में एक बालक मिला, जिसे इन्होंने पाला। यह बालक

११ वर्ष की अवस्था में विरक्त होकर देशाटन को

दादूदयाल

निकला पर माता पिता ने पुनः लिवा जाकर विवाह

करा दिया। निर्वाह के लिए यह रूई धुनने का काम

करने लगे। इन्हें दो पुत्र और दो पुत्रियाँ थीं। नराणा में सं० १६०१

में इनका देहावसान हुआ और इनके बड़े पुत्र गरीबदास जी

उत्तराधिकारी हुए। नराणा ही इनका और दादू पंथियों का

मुख्य स्थान है, जहाँ 'दादू द्वार' स्मारक बना हुआ है। इनके अनेक

शिष्यों ने बहुत सी गहियाँ स्थापित कीं, जिनमें गरीबदास, दोनों

सुंदरदास, रज्जब जी, मोहनदास, जगजीवन, बघना, जनगोपाल

अधिक प्रसिद्ध हैं।

इनके चलाए संप्रदाय में निरंजन निराकार ब्रह्म की सत्ता मानी

जाती है और हिंदू धर्म की बहुत सी बातों को ये आडंबर या ढोंग

समझकर नहीं मानते, जैसे मूर्ति-पूजन, तिलक आदि। इनके यहाँ

परोपकार, अहिंसा, दैन्य, वैराग्य, ज्ञान आदि में तल्लीनता ही का

उपदेश है। साधु के लिए किसी प्रकार बाह्य आडंबर रखना, जैसे

मूँड मुँडाना जटा रखना, भेष बनाना ये निस्सार समझते हैं। तप, योग तथा भक्ति में तत्पर रहना ही इनका आवश्यक कर्म है। पर अब बहुत से साधु भगवा रंग के वस्त्र पहिरते हैं, जो विरक्त हैं। नागा साधु स्वेत वस्त्र पहिरते हैं और कुछ टोपा चादर भी धारण करते हैं। राजस्थान, पंजाब तथा संयुक्त प्रांत में इस दादू पंथ के अनुयायी अधिक हैं।

दादूदयाल की कुल रचनाएँ दो भागों में काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमें उनकी कुल 'बानियाँ' तथा 'सबद' संगृहीत हैं। यह सुकवि थे और ज्ञान, विराग आदि के अनेक अंगों पर बहुत सी कविता की है। यह एक पंथ-प्रदर्शक थे तथा उपदेश देने और उनका जनसाधारण में प्रचलन करने के लिए खड़ी बोली ही में कविता की है, जिसपर काव्य परंपरा की भाषा तथा राजस्थानी का भी पुट बराबर है। उदाहरण:—

लीला राजाराम की खेलैं सब ही संत ।

आपा पर एकहि भया छूटी सबै भरंत ॥

यह घट दीपक साधु का ब्रह्मजोति परकास ।

दादू पंछी संत जन तहाँ परइ निज दास ॥

दादू गाफिल हो रहा बहिरा हुआ गँवार ।

सो दिन चित न आवइ सोवइ पाँव पसार ॥

सुप्रसिद्ध संत दादूदयाल जी के आमेर में बीस वर्ष की अवस्था में यह शिष्य हुए। इनका जन्म सं० १६२४ के लगभग एक

पठान के घर में सांगानेर में हुआ था। यह

रजब जी

अन्य गुरु भाइओं के साथ काशी भी आए थे।

यह गुरु की मृत्यु के बाद अधिकतर सांगानेर में रहते थे और गुरु की वाणी का अच्छा अध्ययन किया था। यह बहुत अवस्था प्राप्तकर सं० १७४६ के पहिले मर गए। इनसे सुंदरदास जी ने बहुत ज्ञानार्जन किया था। इन्होंने तेरह ग्रंथ रचे

हैं जिनमें वाणी और सर्वगी भी हैं। इनकी भाषा खड़ी बोली ही है पर राजस्थान निवासी होने से वहाँ की भाषा का पुट काफी है। 'साषियाँ' अधिक कही हैं और इनके त्रिभंगी तथा अडिल्ल छंद अच्छे बन पड़े हैं। उदाहरण :—

फाटे पर्वत पाप के गुरु दादू की हाँक ।

रज्जब निकसा राह उस प्राण मुक्त बेबाक ॥

गुरु दादू र कबीर की काया भई कपूर ।

रज्जब रीझ्या देखकर सरगुण निरगुण नूर ॥

सुंदरदास का जन्म जयपुर राज्य के दौसा ग्राम में सं० १६५३ में हुआ था और यह दादूदयाल के बाल्यकाल ही में शिष्य हुए।

इनके पिता का नाम परमानंद या चोखा था और

सुंदरदास माता का सती। यह खंडेलवाल बूसर वैश्य थे।

यह बीस वर्ष काशी में अध्ययन कर स्वदेश लौटे।

इनकी मृत्यु सं० १७४६ में हुई थी। यह विद्वान, सुकवि तथा संत थे। इन्होंने देशाटन भी खूब किया था और बड़ी निडर प्रकृति के थे। दादू जी के शीघ्र मर जाने से इन्होंने अपने गुरुभाई रज्जब जी से गुरु वाणियों का अध्ययन किया था। इन्होंने ज्ञानसमुद्र नामक एक बड़ा ग्रंथ तथा सैतीस छोटी छोटी रचनाएँ तैयार की थीं। इनकी भाषा में खड़ी बोली, ब्रजभाषा तथा राजस्थानी का मेल है। ये काव्यकला के अच्छे ज्ञाता थे और इनकी कविता में वेदांत तथा सांख्य और भक्ति की अच्छी सूझें हैं। पद गंभीर तथा सरस हैं और सवैये, मनहर छंद अच्छे कहे हैं। उदाहरण :—

क्या दुनिया असतूति करैगी क्या दुनिया के लसे से ।

नाहिब सेती रहो सुखरू आतम बखसे ऊसे से ॥

जन सुंदर अलमस्त दिवाना सबद सुनाया धूँसे से ।

मानू तो मरजाद रहेगी नहिं मानू तो धूँसे से ॥

यह सो भक्ति अलिंगनी बिरला जाने भेव ।

भाग्य होय तो पाइए समभावै गुरुदेव ॥

यह रज्जब जी के शिष्य थे पर इन्होंने सुंदरदास जी के सत्संग से बहुत लाभ उठाया था । काव्यकला तथा अध्यात्मविद्या इन्हीं से सीखा था और इन्हें गुरु मानते थे । यह भी मोहनदास अच्छी कविता करते थे और इन्होंने बहुत से पद बनाए हैं । अपने गुरु रज्जब जी की प्रशंसा में बहुत से पद कहे हैं, जो 'रज्जब बाणी' की छपी प्रति में सम्मिलित कर लिए गए हैं । सुंदरदास जी की भी, केवल गुरु का गुरुभाई ही न मानकर, उनके गुणों के तथा महात्मा होने के कारण बड़ी नम्रता लिए हुए काफी प्रशंसात्मक कविता लिखी है । इनकी कविता में खड़ी बोली का पुट सर्वत्र मिलता है और कुछ शुद्ध खड़ी बोली में भी कविता की है । उदाहरण :—

रज्जब के चरणन कूं छूबे को प्रताप ऐसो,

पाप के पहार मानों फाटे हैं पराक दे ।

युग युग जीव जमद्वारे बंदियान हो तो,

संकल के संधिसाल खूटे हैं खराक दे ॥

गौतम की तरुनी के करुनी ज्यों कृपाल भये,

साँचे हे सराय तूटे ताँति ज्यों तराक दे ।

ज्ञान के गयंद चढ़ि चले है 'मोहन' मन,

ऊँचे आसमान जाय बैठे हैं फराक दे ॥

यह जाति के वैश्य और फतहपुर सीकरी के निवासी थे । यह भी दादू पंथी थे और अपने जन्मस्थान में शिष्य हुए थे । यह सुंदरदास जी के प्रायः समकालीन थे और सुकवि तथा महात्मा हो गए हैं । इनकी बारह रचनाएँ मिलती हैं और इससे ज्ञात होता है कि इन्होंने और भी

जनगोपाल

ग्रंथ लिखे होंगे। इनकी कविता में ओज की मात्रा काफी है। रज्जब जी की सर्वगी में इनके पद आए हैं तथा अन्य संग्रहों में भी मिलते हैं। उदाहरण:—

तोसी नैं स्वामी बहै आए। द्वारे सेवग तिम सुख पाए ॥

अरु जब बीते समये दोइ। हुंदाहर की बिनती होइ ॥

स्वामी गए सबन सुख पाए। रमते नम्र नराणैं आए ॥

बखनौ होरी गावत देख्यो। गुरु दादू अपनो करि पेख्यो ॥

इनका जन्म वैशाख कृष्ण ५ सं० १६३१ को सुंदरदास कक्कड़ खत्री के यहाँ इलाहाबाद के अंतर्गत कड़ा में हुआ था और १०८ वर्ष की अवस्था में इनकी मृत्यु सं० १७३९ में हुई थी। इनके

मलुकदाम

विषय में अनेक चमत्कार पूर्ण दंत कथाएँ प्रसिद्ध हैं। यह पढ़े लिखे थे और यौवन काल ही से

सत्संगी थे। इन्होंने अपना अलग पंथ चलाया

तथा बारह शिष्य किए, जिनसे इस मत की बारह गढ़ियाँ विभिन्न स्थानों में प्रतिष्ठित हुईं। इनके दो ग्रंथ रत्न खान और दानबोध प्रसिद्ध हैं; जिनकी भाषा विशेषतः खड़ी बोली है। कहीं कहीं फारसी शब्द भी अधिक दिए हैं। भाषा सुव्यवस्थित तथा कविता भी कलापूर्ण है। इन्होंने अपने उपदेश ओज पूर्ण भाषा में दिए हैं, जिससे बड़ा प्रभाव पड़ता है। औरंगजेब से कट्टर सम्राट् ने सिराथू ग्राम इन्हें माफी में दिया था। इनकी कविता के कुछ उदाहरण:—

१. नाम हमारा खाक है हम खाकी बंदे।

खाकहि से पैदा किये अति गाफिल गंदे ॥

कबहूँ न करते बंदगी दुनिया में भूले।

आसमान को ताकते घोड़े चढ़ फूले ॥

२. अजगर करे न चाकरी पंछी करे न काम।

दास मल्लका कह गए सबके दाता राम ॥

३. प्रेम पियाला पीउ ते बिसरे सब साथी ।

आठ पहर यों झूमते ज्यों माता हाथी ॥

साहब मिलि साहब भये कछु रही न समाई ।

कह मद्धक तिस घर गये जहँ पवन न जाई ॥

यह काठियावाड़ निवासी क्षत्रिय थे और इनका जन्म सं० १६७५ में हुआ था । यह सिंध आदि अनेक प्रांतों में पर्यटन करते हुए पन्ना राज्य में आ बसे, जहाँ महाराज छत्रसाल इनके शिष्य

हो गए । यह अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे । यह

प्राणनाथ

विवाहित थे और इनकी पत्नी भी कविता करती

थीं । पदावली में दोनों की रचना है । इन्होंने

कई ग्रंथ लिखे हैं । पर 'कुलजुम' इनका मुख्य ग्रंथ है, जिसका इनके पंथवालों में वेद के समान आदर है । यह अधिकांश हिंदी में है और बाकी सिंधी, उर्दू तथा गुजराती में है । यह सिद्ध महात्मा थे और इन्हीं ने, कहा जाता है कि, छत्रसाल को हीरे की खान दी थी । इनका पंथ धामी कहलाता है, जो काठियावाड़ तथा बुंदेल-खण्ड में पाया जाता है । राधाकृष्ण के प्रेम के वर्णन ही में भगवान तथा भक्त का प्रेम दिखलाया है । भाषा इनकी सुव्यवस्थित नहीं है । उदाहरण :—

वाणी मेरे पीउ की न्यारी जो संसार ।

निराकार के पार थैं तिन पारहु के पार ॥

यह दिल्ली निवासी थे और अपने गुरु बीरू साहब की मृत्यु

पर उनकी गद्दी पर बैठे । इनका समय सं० १७२५

यारी साहब

मे सं० १७८० तक माना गया है । इनकी कोई

रचना नहीं मिलती पर स्फुट पदों का एक संग्रह

रत्नावली नाम से प्रकाशित हुआ है । कविता साधारण है और कहीं कहीं फारसी के शब्द अधिक आए हैं । उदाहरण :—

१. बिन बंदगी इस आलम में खाना तुम्हें हुराम है रे ।

बंदा करै साइ बंदगी खिदमत में आठो जाम है रे ॥

२. तारनहार समर्थ है और न दूजा कोय ।

कह यारी सतगुरु मिलैं अचल अमर तब होय ॥

यह यारी साहब के शिष्य थे । यह जाति के बनिया और बुल्ला

साहिब के गुरु भाई थे । इनका जीवनकाल इस

केशवदास प्रकार अनुमानतः सं० १७५०—१८२५ तक ठहरता

है । इनकी एक छोटी रचना अमीघूट प्रकाशित हो

चुकी है । यह भक्ति, सच्चे ईश प्रेम, से भरी है । उदाहरण :—

निसि बासर वस्तु-विचार सदा मुख साँव दिए करना धन है ।

अघ निग्रह संग्रह धर्म कथा निपरिग्रह साधन को गुन है ॥

कह केसो भीतर जोग जगै इत बाहर भोग मई तन है ।

मन हाथ भये जिनके तिनके बन ही घर है घर ही बन है ॥

मारवाड़ के जैतारण ग्राम में सं० १७३३ में दरिया साहब का

जन्म हुआ था और सं० १८१५ में यह परलोक सिधारे । यह जाति

के धुनिया थे । अल्पावस्था ही में मातृ-पितृ हीन

दरिया साहब हो अपने नाना के यहाँ मेड़ता के एक ग्राम रैन में

रहने लगे । यह प्रेम जी नामक एक संत के शिष्य

हुए जो बीकानेर निवासी थे । दरिया साहब का भी एक पंथ चल

निकला, जिसके माननेवाले सहस्रों मनुष्य अब भी मारवाड़ में हैं ।

इन्होंने भी कुछ उपदेशात्मक कविता रची है, जो अधिकतर खड़ी

बोली में है । उदाहरण :—

गुरु आए धन गरज कर करम कड़ी सब खेर ।

भरम बीज सब भूनिया ऊग न सकै फेर ॥

कंचन भाजन विष भरा सो मेरे किस काम ।

दरिया बासन सो भला जामें अमृत राम ॥

दरिया सूरज ऊगिया नैन खुला भरपूर ।

जिन अंधे देखा नहीं उनसे साहब दूर ॥

कुछ अन्य संतों की रचनाओं से, जिनका परिचय आदि देनेका
स्थानाभाव है, उदाहरण नीचे उद्धृत किए जाते हैं ।

धरनी पलक परे नहीं पिय की झलक सुहाय ।

पुनि पुनि पीवत परम रस तबहुँ प्यास न जाय ॥

‘धरनी’ तन में तख्त है ता ऊपर सुलतान ।

लेत मोजरा सबहि का जहँ लौं जीव जहान ॥—धरनीदास

दिल के अंदर देहरा, जा देवल में देव ।

हरदम साखी भूत है करो तासु का सेव ॥

एते करता कहाँ हैं, वह तो साहिब एक ।

जैसे फूटी आरसी टुक टुक में देख ॥—गरोबदास

प्रेम-बान जोगी मारल हो, कसके हिया रे मोर ।

जोगिया के लाल लाल अँखियाँ हो, जस कमल के फूल ।

हमरी सुरँग चुनरिया हो दूनों भए इक तूल ॥—पलटूदास

देख आई मैं तो साईं की सेजरिया, साईं की सेजरिया, सतगुरु की डगरिया ।

सबदहि ताला सबदहि कुंजी, सबद की लगी है जँजरिया ।

सबद ओढ़ना, सबद बिछौना, सबद की चटक चुनरिया ॥—दूलनदास

नीच नीच सब तर गए संत-चरन लौलीन ।

जातिहि के अभिमान ते डूबे बहुत कुलीन ॥—तुलसी साहब

भजन तें उत्तम नाम फकीर ।

छमा सील संतोष सरल चित, दरदबंत पर पीर ॥—भीखा साहब

सत समरथ में राखि मन करिय जगत का काम ।

‘जगजीवन’ यह मंत्र है सदा सुख बिसराम ॥—जगजीवन

तू शंका मत कर अब चित में ।

चलो देस हमारे रहो सुख में ॥—शिवदयाल

यहाँ तक जिन मुख्य मुख्य संत-साहित्यिकों का उल्लेख किया गया है, उनके सिवा और भी मत-प्रवर्तक हुए हैं तथा उन सबके चलाए पंथों की शिष्य परंपरा में बहुत से संत-साहित्यिक हो गए हैं। इन संतों की परंपरा भी बराबर अब तक चली आ रही है और चलती भी रहेगी। इनमें अक्षर अनन्य, बाबालाल, लालदास, धर-नीधर, तुलसी साहब, पलटू साहब, भीखा जी, दूलनदास आदि प्रसिद्ध हो गए हैं। ऐसे संतों की बानियाँ, साखी आदि भी प्रकाशित हो गई हैं और हो रही हैं। तथा इन सब में खड़ी बोली का या तो प्राधान्य है या उसका काफी पुट सब पर है। वास्तव में ऐसे संतों की रचनाओं में साहित्यिक कोटि की कविता या कृति बहुत कम है और ऐसा ही होना स्वाभाविक भी है। ये निर्गुण निराकार-वादी पंथ प्रचारक प्रधानतः थे और उनका ध्येय उपदेश देना ही था, यही कारण है कि इनका प्रचार उन पंथों के श्रद्धालु अनुयायियों में, विशेषतः अशिक्षितों में, अधिक है। इनमें उन सभी भावनाओं की सम्यक् व्यंजना नहीं पाई जाती, जो मनुष्य जीवन में नित्य प्रति अनुभूत होती रहती हैं और इसी से वे समान रूप से सबको आकर्षित नहीं कर पाईं।

उक्त समीक्षासे यद्यपि ज्ञान प्रधान शाखा के सभी संत कवियों को साहित्येतिहास में विशिष्ट स्थान नहीं दिया जा सकता पर उनकी रचनाओं तथा उपदेशों से जो सांस्कृतिक प्रभाव पड़ा है उसके लिए हिंदू जनता उनकी उपकृत है। यद्यपि बहुतों ने 'कहै कबीर सुनो भाई साधो' के साथ सुर में सुर मिलाया है पर वे उसमें रँगें नहीं और इस प्रकार उनके आकृष्ट न होने का कारण वही है, जो ऊपर दिखलाया जा चुका है। हिंदू-मुसल्मान-संघर्ष दूर करने का भी इन संतों का जो प्रयास था, वह कहाँ तक सफल हुआ है वह आज भी 'पाकिस्तान' की योजना से स्पष्ट हो रहा है।

पाँचवाँ प्रकरण

प्रेम काव्य—उर्दू—हिंदी धारा

निर्गुण धारा की दूसरी शाखा प्रेम-प्रधान है और इसके कवियों ने केवल आख्यानक काव्य ही लिखे हैं। इन काव्यों की कथा साधारणतः प्रेमी-युगल की होती है, जिनके मिलन में अनेक प्रकार की बाधाएँ पड़ती हैं। नाम आदि की विभिन्नता का तथा कभी ऐतिहासिक नामों का उपयोग कर कविगण ने अपने अपने काव्य ग्रंथ रचे हैं। कवि की प्रतिभा, काव्य कौशल, भाषा पर अधिकार तथा तल्लीनता के अनुसार ये ग्रंथ अधिक विशद, व्यापक तथा सुंदर हुए हैं। हिंदू-मुस्लिम संघर्ष के बाद ही इन आख्यानक काव्यों की परंपरा चली है पर जो प्राचीनतम ऐसा काव्य प्राप्त है वह सोलहवीं शताब्दि के आरंभ का है। यह परंपरा उससे पहिले से चली थी और प्रायः अब तक चली आ रही है पर अब गद्य के विकास से वह आप ही बंद हो गई है। ऐसे आख्यानक काव्य को चरित-काव्य कहना भ्रांति मात्र है और इनमें से कोई भी चंद के पृथ्वीराज रासो, सूदन के सुजान चरित, मान के राज विलास आदि की कोटि में नहीं रखे जा सकते। ये अलिफलैला की कहानियाँ भी नहीं हैं, जैसा कि एक सज्जन ने लिखा है, क्योंकि वे कहानियाँ शुद्ध मनोरंजन की सामग्री मात्र हैं और उनमें का प्रेम केवल लौकिक है, आख्यानकों सा लौकिक से अलौकिक की ओर नहीं गया है।

इन आख्यानकों के लेखक हिंदू और मुसल्मान दोनों रहें हैं तथा प्रायः सभी साधु फकीर रहे हैं। इस प्रकार ये दो संप्रदाय में बाँटे जा सकते हैं—हिंदू तथा मुसल्मान। साहित्य की दृष्टि से दूसरा

ही विशेष महत्व का है और ऐसा ही होना स्वाभाविक था। हिंदू सुकवि भक्तों ने विशेषतः सगुण उपासना की ओर अपना रुझान रखा और जो निर्गुण की ओर भुके वे ज्ञान प्रधान शाखा की ओर आकृष्ट हुए। हिंदुओं ने यदि आख्यानक काव्य लिखे तो जो उनमें उच्च साहित्य कोटि में आए वे मूलतः इस प्रेम-काव्य से कुछ दूर हटे रहे और जो इस परंपरा में रह गए वे साधारण कोटि ही के रह गए। वे साधारण श्रेणी के कवि थे तथा मनोरंजनार्थ कुछ लिख गए। दूसरे संप्रदाय के मुसल्मान आख्यानक कवियों में धार्मिक उत्साह भरा हुआ था और उसका प्रचार भी उनका ध्येय था। वे सूफी सिद्धांतों से प्रभावित थे तथा फारसी की प्रेम काव्य मसनवियाँ आदर्श रूप में उनके सामने उपस्थित थीं। यहाँ की भाषा तथा आख्यानों को लेकर पर अपने धर्म की बातों को रंजित रूपमें व्यक्त करते हुए उन्होंने उच्च साहित्यिक काव्य तैयार कर डाले। हाँ, ये हिंदी-साहित्य की वास्तव में अनमोल निधि हैं पर तब भी इन काव्यों का हिंदी भाषी जनता में विशेष प्रचार नहीं हुआ।

इस प्रेम-काव्य की परंपरा आदि काल ही से आरंभ हो गई थी पर उस समय के कोई काव्य मिलते नहीं। मुल्ला दाऊद कृत

‘चंदाबन’ नामक एक काव्य का उल्लेख अब्दुल
दाऊद कादिर बदायूनी अपने इतिहास ग्रंथ मुंतखवितु-
त्तवारीख के भाग १ पृष्ठ २५० पर इस प्रकार

करता है—‘किताब चंदाबन को, जो हिंदवी भाषा में एक मसनवी है और जिसमें नूरक व चंदा नाम के प्रेमी व प्रियतमा के प्रेम का वर्णन है तथा वास्तव में अनुभवपूर्ण है, मौलाना दाऊद ने उस नाम से कविता में लिखा है। उस प्रांत में उसके अत्यंत प्रसिद्ध होने से वह परिचय देने की आवश्यकता नहीं रखती। मखदूम शेख तकीउद्दीन वाएज रब्बानी दिल्ली में इसके कुछ आरंभ के पद मेंबर

से पढ़ता और उससे श्रोताओं पर बहुत असर पड़ता। उस समय के कुछ विद्वानों ने जब शेख से पूछा कि इस हिंदवी मसनवी के पढ़ने का क्या कारण है तब उसने उत्तर दिया कि यह दैवी सत्यता से भरा है।' यह रचना सन् ७७२ हिजरी, (सं० १४२७ वि०) के पहिले की है क्योंकि उसी वर्ष में फिरोज शाह तुगलक के राज्य काल में इसका उल्लेख हुआ है।

शेख रिजकुल्ला मुश्ताकी का जन्म सन् ८९७ हिजरी, (सन् १४९२ ई०) में और मृत्यु सन् ९८९ हिजरी (सन् १५८१ ई०) में हुई थी। इसके पिता का नाम रज्जन शेख सादुल्ला था। यह सूफी संप्रदाय का था और बड़े लोगों का सत्संग करता था। फारसी तथा हिंदी भाषाओं का ज्ञाता था। इसने फारसी कविता के लिए 'मुश्ताक' (इच्छुक) उपनाम रखा था और हिंदी के लिए 'रज्जन'। इसके विषय में लिखा गया है कि यह हिंदुई भाषा में बड़ी योग्यता रखता था और सूफी मत का अच्छा ज्ञाता था। "इसकी 'पेमबन जोब निरंजन' तथा अन्य रचनाएँ विश्व विख्यात थीं।" फारसी में वाक़ेआते मुश्ताकी तथा अन्य इतिहास भी लिखे हैं।

उक्त ग्रंथों के सिवा जायसी ने कई आख्यानों का इस प्रकार उल्लेख किया है कि जब रत्नसेन शिव मंदिर में बेहोश हो गया और पद्मिनी लौट गई तब इसके पत्र के उत्तर में उसने लिखा कि :—

बहुतन्ह ऐस जीउ पर खेला । तू जोगी कित आहि अकेला ॥
 बिक्रम धँसा प्रेम के बारा । सपनावति कहँ गयऊ पतारा ॥
 मधूपाछ मुगुधावति लागी । गगनपूर होइगा बैरागी ॥
 राजकुँवर कंचनपुर गयऊ । मिरगावति कहँ जोगी भएऊ ॥
 साध कुँवर खंडावत जोगू । मधुमालति कर कीन्ह बियोगू ॥
 प्रेमावति कहँ सुरसर साधा । ऊषा लागि अनिरुध बर बाँधा ॥

हैं रानी पद्मावती सात सरग पर बास ।

हाथ चढों मैं तेहिके प्रथम करै अपनास ॥

उक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि पद्मावती पहिले के उन प्रेमियों का उल्लेख कर रही है, जिन्होंने 'अपनास' कर प्रेयसियों को प्राप्त किया था । वे इस प्रकार थे—

१. विक्रम = सपनावती
२. मधु = मृगावती
३. राजकुँवर = मृगावती
४. कुँवर = मधुमालती
५. ? = प्रेमावती
६. अनिरुद्ध = उषा

इन प्रेमी-युग्मों पर आख्यानक काव्य लिखे गए थे या नहीं ऐसा जायसी के उद्धरण से ज्ञात नहीं होता पर मृगावती तथा मधुमालती काव्यों के मिलने से यह आशा की जा सकती है कि ऐसे काव्य सभी पर निर्मित हुए हों पर अभी अप्राप्त हों । मृगावती में 'राजकुमार' नायक है और जायसी का 'राजकुँवर' उसका द्योतक हो सकता है पर मधुमालती का नायक मनोहर है और उसका नाम जायसी ने नहीं दिया है, केवल कुँवर लिख दिया है । यदि उसने वह काव्य देखा होता तो क्या नाम नहीं दे सकता था, जैसा अन्य में दिया है ? प्रेमावती क्या रज्जन के 'पेमबन जोब निरंजन' की नायिका है, जो अभी अप्राप्त है ?

प्रेम काव्यों की भाषा विशेषतः या मुख्यतः अवधी रही है और सभी ने चौपाई, दोहे तथा सोरठे ही में रचना की है । कहीं कहीं किसी में खड़ी बोली का पुट मिलता है क्योंकि मुसल्मान कवियों के बोल चाल की भाषा तो वही थी पर परंपरा के अनुसार अवधी ही काम में लाई गई । दामो ने 'लक्ष्मणसेन

पद्मावती' सं० १५१६ में लिखी थी, जिसमें उसने वीर कथा रस करूँ बखान । उदाहरण :—

सुरो कथा रसलीन विलास ।

योगी मरण अउर बनवास ॥

पद्मावती बहुत दुख सही ।

मेलो करि कवि दामो कही ॥

कुतबन ने सन् ९०९ हिजरी (सं० १५६०) में अपनी मृगावती लिखी । इसकी भाषा का भी दो एक नमूना नीचे दिया जाता है, जिससे ज्ञात होगा कि स्वभावतः खड़ी बोली का पुट आता रहा है ।

साह हुसेन अहै बड़ राजा । छत्र सिंहासन उनको छाजा ॥

पंडित औ बुधिवंत सयाना । पढ़े पुरान अरथ सब जाना ॥

रुक्मिनि पुनि वैसहिं मरि गई । कुलवती सत सों सति भई ॥

बाहर वह भीतर वह होई । घर बाहर को रहै न जोई ॥

मंभन ने मधुमालती इसके बाद लिखा है, जिसका रचनाकाल संदिग्ध है और केवल अनुमान से इसका समय सं० १५७० माना जा रहा है । इसका कथावस्तु मृगावती से अधिक विशद तथा मनोरंजक है । इसका नायक मनोहर साथियों सहित

‘पूछत चले महारस देसा ।

जहवाँ विक्रमराय नरेसा ॥’

मलिक मुहम्मद जायसी इस शाखा के प्रधान कवि हुए, जिसका पद्मावत सं० १५९६ में आरंभ हुआ था । इसके अखरावट तथा ‘आखिरी कलाम’ दो ग्रंथ और मिले हैं । इसकी कविता में कहीं कहीं ऐसे वाक्य मिलते हैं :—

१. जेइ सब खेल रचा दुनियाई ।

२. तिन्ह संतति उपराजा भौतिहि भौति कुलीन ।

हिंदू, तुरुक दुवौ भए अपने अपने दीन ॥

३. ना-नमाज है दीन क थूनी । पढ़ै नमाज सोई बड़ गुनी ॥

कही सरीअत चिसती पीरू । उधरित असरफ औ जहँगीरू ॥

४. जिन्ह जस माँसू भखा पराया । तस तिन्हकर लेइ औरन खाया ॥

५. आजु नाथ जीउ दीजिए आजु अगिन हम जूइ ॥

सं० १६३९ वि० में आलम ने माधवानल कामकंदला काव्य लिखा । उसमान ने सं० १६७० वि० में चित्रावली की रचना की । इसके कुछ उद्धरण दिए जाते हैं, जिनमें खड़ी बोली का पुट है ।

बलं दीप देखा अँगरेजा । तहाँ जाइ नहि कठिन करेजा ॥

तब लहु सहिए बिरह दुख जब लगि आव सो बार ।

दुःख गए तब सुख है जानै सब संसार ॥

कौन भरोसा देह का छाँडहु जतन उपाय ।

कागद की जस पूतरी पानि परे घुल जाय ॥

यह धरमसी नाहर के पुत्र थे और 'गोरा बादल की बात' सं० १६८० में सबल ग्राम में पूरा किया था । इनकी 'प्रेमलता चौपाई'

में लिखा है—'तहाँ बसत जटमल लाहौरी'

जटमल

इससे यह लाहौर के मूल निवासी ज्ञात होते हैं ।

नाहर ओसवालों का एक अल्ल है, जिससे यह जैनधर्मानुयायी ज्ञात होते हैं । इन्होंने अपने को श्रावक भी लिखा है अतः यह जैनी थे । प्रेमलता चौपाई में प्रेमविलास तथा प्रेमलता के प्रेम का वर्णन है । यह तथा गोराबादल की बात दोनों शुद्ध आख्यानक काव्य हैं । इनके सिवा इस कवि की अन्य कई रचनाएँ प्राप्त हुई हैं । बावनी में ५६ छंद हैं, लाहौर गजल में ६० पद हैं और स्त्री गजल या सुंदरी गजल में २५ के लगभग पद हैं । फुटकर कविताएँ भी मिलती हैं । कवित्वशक्ति, भाषासौष्ठव आदि अच्छे हैं । खड़ी बोली ही में अंतिम रचनाएँ हैं और अन्य पर भी उसका काफी पुट है । पंजाबी होने से इस भाषा का भी मेल है । इसने

अपने एक आश्रयदाता का नाम सिंधुतटस्थ जलालपुर का शासक जलाल खाँ लिखा है। उदाहरण :—

नारी इम बाणी सुनी पिय की पगड़ी साथ ।
 सती भई आणंद सो शिवपुर दीनो हाथ ॥
 नगर भलो वित्तौड़ है तापर दूठ दुरंग ।
 रतनसेन राणउ निपुण अमली माण अभंग ॥
 कहत कुँवर सँइक दिन कुँवरी । तेरे प्रेम भई हूँ बवरी ॥
 कबही पिता मोहिं परणावे । तेरे बिरह मरण मुझ आवे ॥
 अरी सखी छाती जरी कर कुछ अब उपचार ।
 हाथा मैं मर जाहुँगी पछतावे तिहाँ बार ॥

एक सूफी मतावलंबी मुसल्मान कवि का उपनाम पेमी था, जिसकी एक रचना पेमपरकाश (प्रेम प्रकाश) की हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई है। यह औरंगजेब का समकालीन था।
 पेमी और यह रचना उसीके राज्यकाल में हुई। यह श्रीनगर का निवासी था पर मारहरा में आ बसा था। इसकी कविता बड़ी आकर्षक है और अच्छे उद्देश्य से लिखी गई है। इसमें प्रेम विरह आदि को लेकर अच्छे उपदेश दिए गए हैं। यह साठ बासठ पृष्ठों की पुस्तक है। भाषा खड़ी बोली है और उसपर कहीं कहीं परंपरा की भाषा का प्रभाव है। उदाहरण :—

औरंगजेब के राज में भई ग्रंथ की आस ।
 प्रेमी नावें विचार के धरी पेम परकाश ॥
 पेमी हिंदू तुरुक में हर रँग रह्यो समाइ ।
 देवल और मसीत में दीप एक है भाइ ॥
 जहाँ पीत तहाँ बिरह है जहाँ सुख दुख देख ।
 जहाँ फूल तहाँ काँट है जहाँ दरब तहाँ सेख ॥

जिस प्रकार भारतीय भाषाओं में फारसी अरबी के शब्द बहुत

दिन हुए प्रयुक्त होने लगे जैसा कि चंद, कबीर, नानक, तुलसी, सूर आदि के काव्यों को देखने से स्पष्ट है, उसी प्रकार मुसल्मानों की विदेशीय भाषाओं में भारतीय भाषाओं के शब्द प्रचलित होने लगे। ऐसा होना दोनों के संपर्क के आरंभ-काल से ही हो सकता है, पहिले से नहीं। जब वे इस देश में आकर बसने लगे तब नित्य की आवश्यकताओं को पूरी करने के लिए यहाँ वालों को,

उर्दू-हिंदी काव्य जिनके बीच में वे थे, अपनी बात समझाना अत्यंत जरूरी था अतः उन्हें यहाँ की भाषा का ज्ञान

वाध्य होकर प्राप्त करना पड़ा। उनकी भाषा में स्वभावतः उनके देश के शब्द भी आते थे पर तब भी भाषा यहीं की होती थी। इस प्रकार की मिश्रित भाषा बहुत दिनों तक चलती रही और इसका नमूना खुसरो में विशिष्ट रूप से मिलता पर वह विद्वान् सुकवि था और उसकी दृष्टि भाषा की शुद्धता पर अधिक थी। उसने भाषा, भाव सभी कुछ यहाँ का लिया था और यह उन लोगों की कोरी भ्रांति है, जो उसे उर्दू का प्रथम कवि कहते हैं। वास्तव में उर्दू हिंदी ही है, पर उसे इतना बाहरी रंग रूप क्रमशः दे दिया गया है और धार्मिक जोश में इतनी घोषणा पर घोषणा की गई कि वह सचमुच दूसरी ही बन बैठी है। समय ही ऐसा है, अपने गैर हो रहे हैं, हिंदू मुसलमान होकर 'गैरियत' दिखलावे तो सह्य हो सकता है पर अपने रहकर भी जो अपनी भाषा के विरुद्ध कहे, तो उसमें भी इस देश के लिए आश्चर्य नहीं है, अतः वह भी सहन करना पड़ता है।

यहाँ उर्दू-हिंदी के कुछ ऐसे कवियों का उल्लेख किया जाता है, जिनकी भाषा ने अपना रूप विशेष नहीं बदला था, केवल रेख्तः अर्थात् मिश्रित हो गई थी और भाव आदि भी प्रायः यहीं के थे। केवल छंद के कारण वह दक्खिनी या रेख्ते की बोली कही जाने

लगी थी। यों तो प्रसिद्ध गालिब तक ने अपने एक पत्र में अपने दीवान को रेख्तः का दीवान लिखा है।

मुहम्मद कुली कुतुबशाह सन् १५८० ई० में गोलकुंडा की गद्दी पर बैठा और ३१ वर्ष राज्य कर सन् १६११ ई० में मरा। यह कुछ दिनों तक बीजापुर से युद्ध करने में व्यस्त रहा।

कुली कुतुबशाह इसके अनंतर इसने हैदराबाद नगर बसाया, जो पहिले भागनगर कहलाता था। कविता में यह अपना उपनाम 'कुतबा' और 'मुआनी' रखता था। यह प्रथम कवि है, जिसने फारसी ढंग पर हिंदी में दीवान लिखकर उर्दू-हिंदी साहित्य की नींव डाली। इसकी कविता उच्च कोटि की नहीं है और भाषा में दक्षिण में प्रयुक्त बहुत से शब्द आए हैं। फारसी के मै (मदिरा) व मस्ती की रंगत काफी है, इश्क का वर्णन कम नहीं है पर अन्यान्य विषयों पर भी लिखा गया है। मानवी विचार, प्रकृति, फल, फूल पत्ती आदि पर भी कविता है। हिंदी उपमा, कथानक आदि बराबर लिए गए हैं। उदाहरणः—

सदा फूल बन और मद है मुँजे ।

नहीं है खुमारी अभी होर दे ॥

सँपूरन है तुज जोत सों सब जगत ।

नहीं खाली है नूर थे कोई शै ॥

निसि के समुंदे स्याम में सोने का रोजक डब्या ।

डूबने में तिरने लगे बुबुबुदे कई लख हजार ॥

मुहम्मद कुली कुतुबशाह के भतीजे तथा दामाद मुहम्मद कुतुब शाह ने भी दक्खिनी में 'जिल्ले अल्लाह' उपनाम से कविता की है और इनके समय के अन्य कवियों तथा मुलेखकों की भी रचनाएँ मिलती हैं। इनमें कुछ ऐसी भी प्रेमगाथाएँ मिलती हैं, जैसी हिंदी में मुसल्मान कवियों ने लिखी हैं। पद्मावती, मृगावती आदि के समान;

पर फारसी छंदों में लिखे जाने के कारण वे हिंदी साहित्य में न आ सकीं। इब्न निशाती की फूलवान और तहसीनुद्दीन की 'किस्सै कामरूप और कला' ऐसी ही रचनाएँ हैं। गद्यग्रंथ भी ऐसी प्रेम कहानी लेकर लिखे गए जैसे मौलाना वजीह का 'सबरस'। अबुल् हसन कुतुब शाह, इब्राहीम आदिल शाह तथा अली आदिल शाह द्वितीय भी कवि तथा गुणग्राहक थे। इनके दरबारों में अनेक कवियों ने ग्रंथ लिखे। नसरती की मसनवी 'गुलशने इश्क' में मनोहर और मधुमालती का प्रेम वर्णन है। वीरकाव्य 'अली-नामा' में अली आदिल शाह बीजापुरी के युद्धों का वर्णन किया गया है। हाशिमि ने 'यूसूफ जुलेखा' मसनवी लिखी तथा इसी प्रकार की कई मसनवियाँ लिखी गईं। इन सबका परिचय तथा उद्धरण यहाँ देना उचित नहीं जान पड़ता। सादी इस काल में एक प्रसिद्ध कवि हो गया है, जिसका उल्लेख कर दिया जाता है।

शेख सादी दक्षिण का निवासी था और इसने खड़ी बोली में काफी कविता की है। यह अपने को बहुत बड़ा कवि मानता था।

यह सोलहवीं शताब्दि विक्रमीय के अंत में था

सादी और उसी समय इसने कविताएँ लिखीं। दक्खिनी

भाषा में भी इसने कविता की है पर इसकी कुल रचनाएँ अभी प्राप्त नहीं हुई हैं। फारसी का भी पुट इस पर है।

उदाहरणः—

१. हमना तुमन को दिल दिया तुम दिल लिया औ दुख दिया ।

हम यह किया तुम वह किया ऐसी भली यह रीत है ॥

सादी कि गुफ्तः रेख्तः दर रेख्तः दुर रेख्तः ।

शीरो शकर हम रेख्तः हम रेख्तः हम गीत है ॥

२. जाइ बजार में बेच दिया तब दोनों भई मन में हरखानी ।

बानर न्याय कियो अति सुंदर दूध को दूध औ पानी को पानी ॥

महम्मद अफ़ज़ल^१ उपनाम 'अफ़ज़ल' के विषय में मीर हसन अपने तजकिर: शुअराए उर्दू में लिखते हैं कि 'यह पुराने कवि हैं।

किसी हिंदू लड़के गोपाल पर आशिक हो गए थे
 अफ़ज़ल और अपनी हालत में बारहमासा उर्फ़ बिकट
 कहानी लिखी है, जिसमें आधी फारसी और
 आधी हिंदी है पर ईश्वर की स्वीकृत है कि वह हृदयों पर प्रभाव
 डालती है।' परंतु आधी फारसी होना अशुद्ध है, कुल पुस्तक में दस
 बारह शौर फारसी के हैं बाकी कुल खड़ी बोली हिंदी में है। जो हस्त-
 लिखित प्रति मेरे पास है उसका अंतिम पृष्ठ नहीं है पर उस पर
 सन् १२३३ हिजरी की मुहर है। इससे वह उसके पहिले की रचना
 हो सकती है। मीर हसन ने यह तजकिर: सन् ११९० हिजरी
 (सं० १८२७) के लगभग लिखा था और उस समय 'अफ़ज़ल' पुराने
 शायर लिखे गए हैं। इससे इनका सत्रहवीं शताब्दि विक्रमीय में
 होना संभव है। सं० १६४८ में यह कहानी लिखी कही जाती है।
 इसका उदाहरण:—

सुनो सखियो बिकट मेरी कहानी। भई हूँ इश्क के गम से दिवानी ॥
 न मुझको भूख है ना नींद राता। बिरह के दर्द से सीना पिराता ॥
 मेरे गल में पड़ी है प्रेम फाँसी। भया मरना मेरा औ लोग हाँसी ॥
 जिन्होंने दिल मुसाफिर से लगाया। उन्होंने सब जनम रोते गँवाया^२ ॥

उक्त हस्तलिखित प्रति में दो पुस्तकें उर्दू-हिंदी की और हैं,
 जिनमें एक 'हिंदी मनायल दीनी' और दूसरी नूरनाम: है। प्रथम
 किसी 'फकीरा' की लिखी है तथा सन् १२५३ हिजरी की प्रति-

१. इसका उपनाम सरखुश भी कहा जाता है। जन्म सन् १६४० में और मृत्यु
 सन् १७२० के लगभग हुई। फारसी में एक दीवान और चार मसनवियाँ
 लिखी हैं।

२. अंतिम दो पंक्तियाँ मीर हसन के तजकिर: में भी उद्धृत हैं।

लिपि है और दूसरी भी प्रायः उसी काल की लिखी हुई है। इसके विषय में अधिक कुछ नहीं ज्ञात हुआ। दोनों के उदाहरण क्रमशः यहाँ दे दिए जाते हैं :—

१. अल्ला नाम जपो हर साँसा । जो चाहो बैकुंठ का बासा ॥

इसकी कदर मैं बेहतर जानी । किस बिरते पर तत्ता पानी ॥

जब जमजी लेने को आवे । तेरे कोई काम न आवे ॥

ओछे पीर सों जो मिले क्यों ना होवे ख़्वार ।

पूँछ जो पकड़े भेड़ की वार रहे ना पार ॥

२. जबाने अरब में तो था यह कलाम । किया नज़्म हिंदी में मैंने तमाम ॥

समझ उसकी हर एक को दुश्वार थी । कि हिंदी जुबाँ उनको दरकार थी ॥

इसीके सबब मैंने कर फिक्र गौर । लिखा नूरनामे को हिंदी के तौर ॥

हकीकत तो है इसमें सब नूर की । मुहम्मद नबी हक के मंज़ूर की ॥

शम्स वलीउल्ला उपनाम वली का जन्म सन् १६६८ ई० में औरंगाबाद में हुआ था और इसने अहमदाबाद में मौलाना वजी-

हुद्दीन अलवी की 'मुरीदी' ग्रहण की । वहाँ से स्वगृह

वन्नी लौटकर यहीं दक्खिनी हिंदी भाषा में पर फारसी

बहों में कविता करने लगा । सन् १७०० ई० में दिल्ली

आने पर फारसी के सूफी कवि शाह सादुल्ला के कहने पर सरल हिंदी

छोड़कर फारसीमय हिंदी अर्थात् उर्दू में कविता करने लगा और

'बाबए रेख्तः' कहलाया । सन् १७७४ ई० में इसकी मृत्यु हो गई ।

१. इस रैन अँधेरी में मत भूल पड़ूँ तिससँ ।

टुक पाँव के बिछुवों की आवाज सुनाती जा ॥

मुख बात बोलता हूँ शिकवः तेरे कपट का ।

तुझ नैन देखने को दिल ठाँठ कर चुका था ॥

२. दिल वली का ले लिया दिल्ली ने छीन ।

जा कहो कोई मुहम्मद शाह सों ॥

३. जख्मी किया है मुझ तेरी पलकों की अनी ने ।

यह जख्म तेरा खंजरे भालाँ से कहुँगा ॥

मिर्जा मुहम्मद रफीअ का उपनाम 'सौदा' था । इनका जन्म दिल्ली में सन् १७१३ ई० में हुआ था और वहीं शिक्षा प्राप्त की ।

यह उर्दू में कविता करते थे पर हिंदी में भी कुछ
सौदा कविता की है । यह वृद्धावस्था में लखनऊ गए

और वहीं अंत तक नवाब आसफुद्दौला के आश्रय में रहे । सन् १७८१ ई० में इनकी मृत्यु हो गई । इन्होंने गद्य-पद्य दोनों लिखे हैं और फारसी तथा रेख्ते में दीवान लिखे हैं । दो दर्जन मसनवियाँ लिखी हैं । यह भी सरल उर्दू के सैकल करनेवालों में से थे पर हिंदी शब्दों, विचारों तथा कथानकों का भी काफी प्रयोग इन्होंने किया है । इनकी कविता के उदाहरण :—

१. कारी रैन डरावनी घर ते होइ निरास ।

जंगल में जा सो रहे कोऊ आस न पास ॥

कहै हरम सर पीटकर खोकर अपनी लाज ।

माटी में तू रल गयो दीन दुनी के लाज ॥

२. कोई जो मुझसे य पूछता होय क्यों तू रोता है कह तो हमसे ।

हर एक आँसू मेरे नयन का जगह जगह सर पटक रहा है ॥

सैयद ईशाअल्लाह खाँ 'इंशा' का जन्म मुर्शिदाबाद में हुआ था । अपने पिता माशाअल्लाह खाँ से शिक्षा प्राप्तकर दिल्ली आए और कुछ

दिन शाह आलम के दरबार में रहने पर लखनऊ
इंशा पहुँचे । मिर्जा सुलेमान शिकोह के आश्रय में कुछ

दिन रहकर नवाब सआदत अली खाँ के दरबार में गए, जहाँ इनकी बड़ी प्रतिष्ठा हुई पर कुछ दिनों बाद नवाब इतने क्रुद्ध हो गए कि इनका पद, वेतन आदि सब जन्त कर लिया । अंत में सन् १८७४ में बड़ा कष्ट उठाकर इनकी मृत्यु हो गई । इन्होंने

दीवान, मसनवी आदि के सिवा ठेठ हिंदी में 'रानी केतकी की कहानी' गद्य में लिखी है, जिसमें आए हुए पदों में से दो उदाहरण यहाँ दिए जाते हैं :—

१. छा गई ठंडी साँस भावों में ।

पड़ गई कूक सी पहावों में ॥

२. पौदों ने रँग के सूहे जोड़े पहने ।

सब पाँव में डालियोने तोड़े पहने ॥

नजीर का नाम बली महम्मद था और यह दिल्ली-निवासी मुहम्मद फारूक का पुत्र था । अहमदशाह अब्दाली की चढ़ाईओं के समय यह आगरे आ बसा, जिसके बादशाही

नजीर नाम अकबराबाद पर यह अकबराबादी कहलाया ।

यह फारसी तथा अरबी का विद्वान था । संतोष-प्रिय होने से निमंत्रण मिलने पर भी यह लखनऊ नहीं गया और शिक्षण-कार्य कर कालयापन करता रहा । सन् १८३० ई० में वृद्धावस्था में इसकी मृत्यु हुई । यह स्वभावतः विनोदप्रिय तथा गाना सुनने, तमाशा देखने का शौकीन था । धर्माधता की इसमें कमी थी और यह अंत में सूफी हो गया । इसने कविता बहुत लिखी थी पर अब जो संग्रह प्राप्त है उसमें केवल छ सहस्र के लगभग शेर हैं । रोटीनामा, पैसानामा, वंजारानामा, कन्हैया का बालपन आदि कविताओं में भावोत्कर्ष और कवित्वशक्ति के सिवा सांसारिक ऐश्वर्य में विरक्ति की मात्रा भी पूरी है । पढ़ने तथा सुनने में भी ये चित्ताकर्षक हैं । हिंदू-मुसल्मान द्वेष के अभाव के कारण ये विशेष लोकप्रिय हो उठे और कई बार हिंदी लिपि में इनका प्रकाशन भी हुआ । इनमें जिस किसी बात का वर्णन हुआ है वह सहज स्वाभाविक तथा स्वानुभूति के आधार पर हुआ । इसकी भाषा देशीय थी और उसे विलायती बनाने का इसने कभी प्रयास

नहीं किया। सहज चलती भाषा पर इसका अनुराग था और उसे फारसी अरबी शब्दों के भार से लददू बनाने की इसे आवश्यकता ही नहीं पड़ी। विषय के उपयुक्त भाषा रखना ही यह उचित समझता था और वास्तविकता के साथ उसका वर्णन कर डालता था, जिससे यह सजीव तथा मनोहर हो गई है। उदाहरण :—

१. ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन। क्या क्या कहूँ मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन ॥

२. जब चलते चलते रस्ते में यह गून तेरी ढल जावेगी।

इक बधिया तेरी मिट्टी पर फिर घास न चरने पावेगी ॥

३. क्या गेहूँ चावल मोट मटर क्या आग धुआँ और अंगारा।

सब ठाट पड़ा रह जावेगा जब लाद चलेगा बंगारा ॥

४. खोटी खरी जो कुछ कि है तिसका परेखा है यहाँ।

जो जौ पड़ा तुलता है दिल तिल तिल का लेखा है यहाँ ॥

५. हर मन की होके मोहनी और चित्त लुभावनी।

निकली जहाँ धुन उसकी वह मीठी लुभावनी ॥

सब सुनने वाले कह उठे जै जै हरी हरी।

ऐसी बजाई किशन कन्हैया ने बासुरी ॥

उर्दू-हिंदी के अन्य कवियों के केवल कुछ शैर उदाहरण रूप में दे दिए जाते हैं, इनके विषय में कुछ लिखने के लिए इस पुस्तक में स्थानाभाव है।

न भुँईं पर बसे वह न असमान में। रहा शह उसी नार के ध्यान में ॥

भुलाई चँचल धनि वो यौ शाह को। कि लुभवाए ज्यों कह रुबा काह को ॥

ना पूछ बरहमन जोतिसी। कब मिलना पिउ सों होयसी ॥

(वजही, सत्रहवीं शताब्दि)

खुदा का नूर का मथकर समुंदर। यही चौदह रतन काढ़े हैं बाहर ॥

अगर फहमिदः हिकमत आशाना है। इसी नुसखे में चौदह विद्या है ॥

अज्मे सफर चूँ करदी साजन नैनों नींद न आई जी ।

कद्रे वसालत नादानिस्तम तुम बिन बिरह सताई जी ॥

(हामिद, सत्रहवीं शताब्दि)

बाम्हन की बेटी आज मेरी आँख मो परी ।

गुस्सा किया व गाली दिया और बिगर लरी ॥

(कजिलबाश खाँ 'उम्मेद')

नैन से नैन जब मिलाय गया । दिल के अंदर मेरे समाय गया ॥

तेरे चलने की सुन खबर आशिक । यही कहता मुआ कि हाय गया ॥

अफसोस है कि मुझको वह यार भूल जावे ।

वह शौक वह मुहब्बत वह प्यार भूल जावे ॥ (शाह आबरू)

लड़े हुए तो बरस बीस इनको बीते थे ।

दुआ के जोर से दाई दवा के जीते थे ।

न पानी पीने को पाया वहाँ न खाना था ।

मिले थे धान जो लश्कर तमाम छाना था ॥

(शाकिर नाजी)

क्यों कै सबसे तुझे छिपा न । जान है, दिल है, दिल का अन्तर है ॥

जुदा नहीं सब सेती तहकीक कर देख । मिला है सबसे और सबसे है न्यारा ॥

(शाह हातिम)

तू कब तई मुझ साथ मेरी जान मिलेगा । ऐसा भी कभी होगा कि फिर आन मिलेगा ॥

अगर तुझको चलना है चल साथ मेरे । यह कब लग तू बातें बनाता रहेगा ॥

(मीर दर्द)

इश्क बुरी है ख्याल पड़ा है चैन गया आराम गया ।

दिल का जाना ठैर गया है सुबह गया या शाम गया ॥

वे दिन गए कि आँखें दरिया सी बहतियाँ थीं ।

सूखा पड़ा है अब तो मुद्दत से यह दो आबा ॥

(मीर तक़ी)

तुम मेरे पास होते हो गोया । जब कोई दूसरा नहीं होता ॥ (मोमिन)

लोग घबरा के यह कहते हैं कि मर जाएँगे ।

मर के गर चैन न पाया तो किधर जाएँगे ॥ (जौक)

प्रायः इस काल ही से हिंदी-उर्दू इतनी फारसी तथा अरबी मय होती गई कि वह एक प्रकार हिंदी मिश्रित फारसी हो गई और तब वास्तव में आजकल की घोषित शुद्ध उर्दू बन गई ।

षष्ठ प्रकरण

सगुण संप्रदाय—भक्ति काव्य—स्फुट

सगुण उपासना में यद्यपि भक्ति का प्राधान्य है पर इसका यह अर्थ नहीं है कि निर्गुण में उसका एक दम अभाव है । साकार या निराकार दोनों ही में इष्ट देव कोई माना ही जाता है और उसका कुछ न कुछ नामकरण भी कर लिया जाता है ।

भक्ति उस तक पहुँचने के अनेक उपाय या मार्ग मानव-मस्तिष्क ने खोज निकाले हैं, जिनमें ज्ञान-मार्ग, प्रेम-मार्ग तथा भक्ति-मार्ग तीन का हिंदी-साहित्य में विशेष परिचय दिया गया है । सभी मार्ग अभी तक मानव शक्ति द्वारा खुल चुके हैं, यह निश्चय पूर्वक अभी नहीं कहा जा सकता । किन मार्गों पर 'गाइडों' अर्थात् मार्ग प्रदर्शकों की आवश्यकता है, किन पर नहीं यह भी कुछ निश्चित नहीं । कुछ ऐसे लोग भी हो गए हैं, जिन्हें मार्ग की आवश्यकता ही न पड़ी, वे स्वयं ही ब्रह्म बन बैठे, सब भक्तों से छुट्टी हो गई, जरा शिर झुकाया और अपने ही में देख लिया । तात्पर्य यह कि इन सभी मार्गों के यात्री आसक्ति, प्रेम, तल्लीनता, अनन्यता, ज्ञान आदि से जीवन भर उसी को देखते हैं, उसी

से मिलने की उत्कंठा रखते हैं, सारी सांसारिक माया, मोह आदि छोड़ बैठते हैं, इसी लिए कि उनका उस पर अलौकिक प्रेम अर्थात् भक्ति है। मुक्ति स्वार्थमय है, अपने जीवन-मरण के कष्टों से छुटकारा पाने की इच्छा मात्र है पर भक्ति सदा उसी की सेवा माँगती है, सब प्रकार के कष्ट सहते हुए। संसार को त्याग कर वन्यजीवन व्यतीत करते हुए अपनी मुक्ति येन केन प्रकारेण प्राप्त कर लेना पौरुष नहीं है, मुक्त पुरुष वही है जो अपने अनुभव, ज्ञान, प्रेम तथा भक्ति से दूसरों को भी लाभ पहुँचा जाता है। ऐसे ही पुरुष संत, साधु, महात्मा या भक्त कहे जाते हैं, पर प्रथम तीन पदवियों में उनका निजत्व है, उनमें अहंता का भाव है पर भक्त शब्द में अपनापन नहीं है, अहंता का भाव मिटा दिया गया है, वह केवल किसी का भक्त बनकर ही परिचय प्राप्त करता है। इसी से भगवान ने कहा है :—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनाम् हृदयेऽपि न ।

मद्भक्ताः यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥

भक्तों ने अपने जो विचार, भाव, इष्ट की उपासना, ध्यान, कीर्तन, लीला-वर्णन आदि किया है, वह निरविकार चित्त से अपने इष्टदेव ही में अपने को लीन करके किया है।

भक्ति काव्य

जिनमें जैसी प्रतिभा थी या जितना काव्यकौशल या साहित्यज्ञान था वह उतना ही अपनी कविता में ऊँचे उठा है पर इससे उसकी भक्ति की माप नहीं की जा सकती। सच्चे भक्त कवियों की कविता में, उनके सारे काव्यकौशल तथा अगाध पांडित्य में और उनकी सशक्त प्रतिभा की उन्मुक्त कल्पनाओं में भक्ति की आभा सर्वत्र छाई हुई मिलेगी। जिस भक्त-कवि के जो इष्टदेव रहे उसने उनके शास्त्रानुकूल चरित्र ही का आधार लेकर अपने अनुभव के अनुसार लीला वर्णन किया है; जनता, समाज

या आलोचकों का प्रिय करने के लिए चरित्र को मनमाना रंजित कर या हेरफेर कर बिगाड़ा नहीं है। सूरदास वल्लभ-संप्रदाय के भक्त शिष्य थे, जिसमें वात्सल्य भावना से बालकृष्ण की उपासना होती है। श्रीकृष्ण का बाल्यकाल ब्रजमंडल में व्यतीत हुआ था, इसलिए सूरदास ने उनकी ब्रजलीला ही का अत्यंत विशद वर्णन किया है, अन्यत्र कहीं का नहीं। यही इस संप्रदाय के सभी भक्त-कवियों का हाल है। इनमें से किसी से मथुरा, द्वारिका या महा-भारत के श्रीकृष्ण के वर्णन की आशा वही रखेगा, जो इन लोगों की चित्तवृत्ति कुछ भी न समझ सका है। तुलसीदास के इष्ट देव मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचंद्र थे और उन्हीं का पूरा चरित्र उनका वार्य विषय था। रामचंद्र प्रसिद्ध दिग्विजयी वीर थे और एक साम्राज्य के सिंहासन को इन्होंने सुशोभित किया था। न्यायतुला सदा उनके सामने रहती थी। तुलसीदास ने ऐसे चरितनायक को पाकर उन्हीं के चरित्र के अनुकूल दास्यभाव से सांगोपांग वर्णन किया है, किसी एक अवस्था ही की लीला को लेकर नहीं रह गए हैं और न रह सकते थे। इसपर भी हृदयस्थ भक्ति के कारण श्री रामचंद्र जी की राजनैतिक चालों का यत्रतत्र लचर दलीलों से समर्थन किया है। मीराबाई माधुर्य उपासनावाले संप्रदाय की थीं और उनके इष्टदेव श्रीकृष्ण कैशोर अवस्था के थे अतः उन्होंने उसी अवस्था की लीला का वर्णन किया है। भक्त इष्टदेव को सर्वस्व मानता है और इसीसे मीरा ने श्रीकृष्ण को सर्वस्व मानकर उनसे अपना अमर 'सोहाग' जोड़ा था। तात्पर्य यही है कि भक्तों की कविता उनके आचार विचार, उनके संप्रदाय के अनुकूल इष्टदेव की भावना, उनकी भक्ति, तल्लीनता आदि के अनुकूल ही हुई है और उसी दृष्टि से उन्हें समझना चाहिए।

हिंदी का भक्ति काव्य दो मुख्य शाखाओं में विभक्त है, एक

राम-काव्य तथा दूसरा कृष्ण-काव्य । इनके सिवा और भी कितने भक्त-कवि हो गए हैं जिन्होंने अन्य देवी देवता को इष्ट मानकर उन्हें अपनी अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है पर साहित्य भक्ति-काव्य की भाषा के विचार से वे ऐसे न बन पाए हैं कि उनकी अलग शाखा मानी जाय । राम-काव्य के लिए श्री

रामचंद्र की लीला भूमि की अवधी भाषा का अधिकतर प्रयोग है, जिस में रामचरितमानस निर्मित हुआ है और कृष्ण-काव्य के लिए उनकी लीला भूमि व्रज की भाषा ली गई है । ये भक्त कवि विद्वान थे तथा विद्वन्भक्त मंडली के बीच रहने वाले थे इस कारण भाषा की शुद्धता पर विशेष ध्यान रखते थे । भाषा पर उनका पूरा अधिकार रहता था । यही कारण है कि इनकी रचनाओं में अन्य भाषा का मेल प्रायः नहीं सा है । तब भी कहीं कहीं ऐसी भाषा मिल जाती है, जिससे ऐसा ज्ञात होता है कि वह किसी अन्य भाषा का इतना ज्ञाता है कि अनजान में उसकी झलक आ गई है । जैसे सूर के कुछ पदों में निम्नलिखित टुकड़े मिलते हैं जो किसी व्रज-भाषा-भाषी की खड़ी बोली हिंदी बोलने के समान है ।

१. मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै ।
२. मैया मैं नाहीं दधि खायो ।
३. नैना भए अनाथ हमारे ।
४. मेरे लाल को आउ निदरिया काहे न आनि सुआवै ।

गोस्वामी जी ने मानस में बराबर हमारी, तुम्हारा, मैं, जब, कहाँ आदि शब्दों का प्रयोग किया है, जो खड़ी बोली के शब्द हैं, अवधी के नहीं हैं । संस्कृत के तत्सम शब्द भी खूब प्रयुक्त हुए हैं तथा फारसी अरबी के शब्दों का भी यत्र तत्र प्रयोग हुआ है, जैसे— गर्व-गरब, प्रभाव-प्रभाऊ, भक्त-भगत, अर्द्ध-अरध, सनेह-स्नेह, पिय-प्रिय, सच्चिदानंद, ईश्वर, आदि संस्कृत के और गरीबनेवाजू,

अँदेसा, जहाना, साहब, जीन, निशान, फौज आदि फारसी अरबी के।

मीरा की कविता की भाषा ब्रजभाषा, मारवाड़ी तथा गुजराती तीनों है और वह जितना अपने भावों के व्यक्त करने में तल्लीन रही उतना काव्य-कौशल, भाषाधिकार या विद्वत्ता प्रदर्शन करने में व्यस्त नहीं रही। यदि ऐसा हुआ भी है तो वह उनकी सहज प्रतिभा तथा इष्ट-प्रति तल्लीनता मात्र है। इनकी कविता में बहुत से ऐसे अंश हैं, जिन में खड़ी बोली का मेल स्पष्ट रूप से मिलता है। जैसे:—

१. कोई कहो कुलटा कुलीन अकुलीन कहो ।
कोई कहो रंकिनी कलंकिनी कुमारी हों ॥
२. मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई ।
३. जहर का प्याला राणा भेज्या ।
भजन भाव में मस्त ढोलती
४. घायल ज्यूँ घूमूँ खड़ी
बावल वैद बुलाइआरे पकड़ दिखाई म्हारी बाँह ।
जाओ बैद घर आपने रे म्हाँरो नाँव न लेय ॥
५. गिणते गिणते घिस गई उँगली घिस गई उँगली की रेख ।
तेरी सुरत के कारणे धर लिया भगवा भेस ॥

इस प्रकार के बहुत से अंश मीरा की कविता में बराबर मिलते हैं। अब भक्ति काल के उन कवियों के विषय में विचार किया जायगा जिनकी कविता में खड़ी बोली का विशेष मेल है, या उसमें अलग उनकी कविता प्राप्त है।

श्री रामानुजाचार्य की शिष्य-परंपरा में पंद्रहवीं शताब्दि में श्री रामानंद जी हुए, जिन्होंने विष्णु के अवतार श्री रामचंद्र की उपासना का प्रचार किया और इनका एक भारी रामानंद संप्रदाय चल निकला। इन्होंने भारत-भ्रमण कर काशी, अयोध्या आदि अनेक तीर्थों में मठ स्थापित

किए। इनकी उपासना दास्य भाव की थी। इन्होंने कई ग्रंथों पर भाष्य किए हैं और कई संस्कृत ग्रंथ तैयार भी किए हैं। हनुमान जी की भी इस संप्रदाय में उपासना की जाती है। इन्होंने कुछ भजन भी बनाए हैं पर दो चार पदों के सिवा और अभी तक नहीं मिले हैं। एक पद खड़ी बोली का भी है, जो उदाहरणार्थ नीचे दिया जाता है :—

कत जाइए, घर लागे रंगु, मेरा चित न चलै मन भयउ पंगु ।

एक दिवस मन भई उमंग, घसि चन्दन चोवा बहु सुगन्ध ।

पूजन चाली ब्रह्म-ठाई, सो ब्रह्म बतायौ गुरु मनहि माहि ।

जहाँ जाइए तहँ जल-पखान, तू पुरि रह्यौ है सब समान ।

वेद-पुरान सब देखे जोई, वहाँ जाइए जहँ तू न होई ।

सत गुरु, मैं बलिहारी तोर, जिनि सकल विकट भ्रम काटे मोर ।

रामानन्द स्वामी रमत ब्रह्म, गुरूका शब्द काटै कोटि करम ।

यह दक्षिणात्य ब्राह्मण थे और उत्तरी भारत में आ बसे थे ।

यह परम वैष्णव थे और इन्होंने बहुत से स्फुट पद हिंदी में बनाए हैं। इनका समय विक्रमीय सोलहवीं शताब्दि का

गोपाल भट्ट उत्तरार्द्ध तथा सत्रहवीं शताब्दि का पूर्वार्द्ध है ।

यह भक्त कवि थे । यदि यह श्रीकृष्ण चैतन्य

महाप्रभु जी के शिष्य थे, जिसकी विशेष संभावना है, तब इनका जन्म सं० १५५७ में और देहावसान सं० १६४२ में हुआ था । खड़ी बोली का इनका एक पद नीचे दिया जाता है :—

देख री सखी कंज नयन कुंज में विराजे हैं,

बाग में किशोरी गोरी, आलस अँग अति विभोरी,

हेरि श्याम नयन चंद मंद-मंद होंसे हैं ।

सारी शुक करत गान, भ्रमरा भ्रमरी धरत सान,

मुनि मुनि धुनि उठि बैठत चोर चपल गात हैं ।

‘श्रीगोपालभट्ट’ आस, बृंदावन कुंज बास,
सयन स्वपन नयन हेरि भूलो मन आप हैं ।

यह एक वैष्णव भक्त सोलहवीं विक्रमीय शताब्दि में हो गए
हैं, जिनके स्फुट पद मिलते हैं । इनके विषय में
अमरदास विशेष कुछ ज्ञात नहीं हो सका । एक पद नीचे

दिया जाता है :—

अब तो मन लागी रख्यो चरन में तिहारे ।
गोकुल अब छोड़ि दीन्हीं पुरी को सिधारे ॥
बौद्ध रूप धारि लियो मोर मुकुट वारे ।
दूर देस वास लियो चलत न पग हारे ॥
गाँठी में दाम नहीं तुमही रखवारे ।
जात्री सब जाने न पावें रोक रहे नारे ॥
दोष पाप दूर भए पाँच बेंत मारे ।
उदित जोत जगमगात ऊँच नीच तारे ॥
..... गरुड खंभ द्वारे ।

हेरिए कृपानिधान जगन्नाथ प्यारे ।

‘अमरदास’ सरन आए ठाकुर सिर धारे ॥

यह एक वैष्णव भक्त कवि थे और इनके बहुत से स्फुट पद
भजन-संग्रहों में मिलते हैं । यह ब्राह्मण थे और

माधोदास

स्यात् जगन्नाथ पुरी में वस गए थे । इनका समय

भी सोलहवीं शताब्दि विक्रमीय है । इनके विषय में विशेष कुछ
ज्ञात नहीं हो सका है । इनका एक पद दिया जाता है :—

जगन्नाथ जगत में प्यारा है ।

सुंदर मंदिर रतन सिंघासन जगमग जोति लैंजियारा है ॥

देस देस के जात्री आए खोलो रतन किवारा है ।

साँवली सूरत माधुरी मूरत बड़ी बड़ी श्रैखियनवारा है ॥

लील चक्र पर ध्वजा बिराजे मस्तक सोहे हीरा है ।

मधु मेवा पक्वान मिठाई लक्ष्मी आप सँवारा है ॥

‘माधो दास’ आस चरनन का चरन कमल बलिहारा है ॥

बीकानेर राज्य के अंतर्गत पिनपासर ग्राम-निवासी लाट नामक पँवार राजपूत की स्त्री हंसा को सं० १५०८ में एक सद्यःप्रसूत बालक उसी के घर में मिला, जिसे निस्संतान होने के कारण उन्होंने पाला था । यह सत्ताईस वर्ष तक मौन रहे और इसके अनंतर इक्यावन वर्ष तक यह तपस्या तथा अपना विष्णोई मत प्रवर्तन करने में दत्तचित्त रहे । सं० १५९२ में यह परलोक सिधारे । इनके विषय में अनेक चमत्कार सुने जाते हैं । इनका मत प्रह्लाद पंथ भी कहलाता है जो वैष्णव मत की शाखा मात्र है । इन्होंने बहुत से शब्द या बानी कही हैं । उदाहरणः—

पानी, बानी, ईधनी इतना लीजो छान ।

दया धर्म हिरदय धरो गुरु बताए जान ॥

चोरी, निंदा, झूठ बर्ज्य बादि न करियो कोइ ।

अमल तमाखू भाँग लिल दूरहि त्यागो सोइ ॥

यह निरंजन-संप्रदाय के काशी निवासी एक महात्मा थे, जिन्होंने बहुत से पद कहे हैं । इनका समय सत्रहवीं शताब्दि का मध्य भाग है । इनकी रचनाएँ शांत सरसी, निरंजन निपट निरंजन संग्रह आदि हैं । इन्होंने बनारस पर भी कई पद कहे हैं, जिनमें एक का अंतिम चरण यों है—
‘निपट निरंजन सब दुख भंजन शहर बनारस परियों का’ । इन्होंने खड़ी बोली ही में अधिक पद कहे हैं । इनमें अक्खड़पन भी अधिक था । विशेष वृत्तांत ज्ञात नहीं हो सका । उदाहरणः—

तुमने ही दीनी मन इंद्रिय कूँ चंचलता,

तुमने ही कही इन्हें जीते सो बली है ।

तुमने ही कही पुत्र दारा बिन गति नाहिं,
 तुमने ही कही यही फंदेहू की गली है ॥
 तुमने ही कही माया त्याग कै विराग धरो,
 तुमने ही कही माया सबसे ही बली है ।
 निपट निरंजनी और कोई मालिक नहीं,
 जाके आगे नाथ न्याय हम तुम चली है ॥

ताज उपनाम के एक मुसल्मान कवि हो गए हैं, जो परम
 वैष्णव भक्त थे। इनका समय सत्रहवीं शताब्दि विक्रमीय का उत्तरार्द्ध
 है। यह काँकरोली के निवासी थे। इनकी भक्ति के
 ताज विषय में यह दंत-कथा है कि किसी मंदिर में दर्शन
 करने जाने की आज्ञा मिलने पर यह बाहर भूखे
 पड़े रहे और अंत में भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं बाल रूप धारण कर
 इन्हें अपना प्रसाद दिया था। 'ताज' कवि का या कवियित्री का
 उपनाम था, ऐसी भी शंका उठाई गई है। इनकी भाषा खड़ी बोली
 है, जिसमें कहीं कहीं पंजाबी या ब्रजभाषा का मेल है। उदाहरण:-

छैल जो छबौला सब रंग में रँगीला,
 बड़ा चित्त का अड़ीला कहूँ देवतों से म्यारा है ।
 माल गले सोहै नाक मोती सेत जोहै कान,
 कुण्डल मन मोहै लाल मुकुट सिर धारा है ॥
 दुष्ट जन मारे सब सन्त जो उबारे "ताज"
 चित्त में निहारे प्रन प्रीति करन वारा है ॥
 नन्दजू का प्यारा जिन कंस को पछारा ।
 वह वृन्दाबन वारा कृष्ण साहेब हमारा है ॥

पूना से आठ कोस पर वायव्यकोण में देहू नामक ग्राम में
 महात्मा तुकाराम जी का जन्म सं० १६६५ में हुआ था। पिता का
 नाम बोल्होबा और माता का कनकाबाई था। इनके दो भाई थे—

तुकाराम बड़े का नाम सावजी और छोटे का कान्हाबा ।
यह जाति के कुनबी थे और व्यवसाय करते थे ।

बराबर कष्ट पड़ने तथा व्यवसाय में हानि उठाने से यह विरक्त हो गए । स्वप्न में चैतन्य महाप्रभु से 'राम कृष्ण हरि' का गुरुमंत्र ग्रहण किया । इसके अनंतर तुकाराम जी कविता बना कर भगवान का गुणगायन करने लगे तथा इनकी प्रसिद्धि बढ़ने लगी । इन्होंने मराठी में बहुत कविता की है पर हिंदी में भी कुछ कविता मिलती है, जो खड़ी बोली में है । उदाहरण:—

१. कहे तुका मैं सबदा बेचूँ लेवे के तनहार ।

मिठा साधु संत जन रे मूरख के सिर भार ॥

कहे तुका भला भया हुआ संतन का दास ।

क्या जानूँ केते मरता न मिटती तनकी आस ॥

२. ख्याल मेरा साहब का बाबा हुआ करतार ।

हार्ते आधे चढ़े पीठ आपे हुआ असवार ॥

सोलहवीं शताब्दि के अंत तथा सत्रहवीं के आरंभ में एकनाथ जी महाराष्ट्र में एक प्रसिद्ध भक्त कवि हो गए हैं, जो समर्थ रामदास

तथा तुकाराम जी के समकालीन थे । यह पैठण के निवासी थे और कई ग्रंथों के सिवा बहुत सी

स्फुट कविता भी बनाई है । इनमें बहुत सी हिंदी कविता भी है । यह काशी में भी बहुत दिनों तक रहे थे जिससे हिंदी पर इनका अच्छा अधिकार हो गया था । दो उदाहरण यहाँ दिए जाते हैं:—

१. खेल खिलाड़ी बाँका

छंद बड़ा सुरवर को बाँटा

जाकर भरोखे में बैठा

एकनाथ का वाली, उसे कौन देवे गाली

२. मसजिद ही में जो अल्ला खुदा, तो और स्थान क्या खाली पड़ा ॥

चारों वक्त नमाजों के तो और वक्त क्या चोरों का ॥

‘एका’ जनार्दन का बंदा जमीन आसमान भरा खुदा ॥

सुप्रसिद्ध महाराष्ट्र भक्त महात्मा तुकाराम जी के छोटे भाई

का नाम कान्होबा था और इस कारण इनका

कान्होबा

समय वही सत्रहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है।

इन्होंने भी मराठी के सिवा हिंदी में कविता की है। कविता साधारण है। उदाहरण:—

चुरा चुराकर माखन खाया ग्वालिन का नंदकुमार कन्हैया ।

काहे बढ़ाई दिखावत मोही जानत हूँ प्रभु मन तेरो सबही ॥

और बात सुन ऊखल सो गला बाँध लिया तू ने अपना गोपाला ।

फिरता बन बन गाय चरावते कहे तुकबा बंधु लकरी लेले हाथ ॥

जनी जनार्दन, जनार्दन स्वामी के शिष्य तथा एकनाथ जी के गुरु भाई थे। यह पहिले बादशाही सेवा में करोड़ी थे और अकाल

पड़ने पर इन्होंने राजकोष लुटा दिया था। इन्हें

जनी जनार्दन हाथी से कुचलवा कर प्राण दंड दिए जाने की

आज्ञा हुई पर घातकों पर इनका ऐसा प्रभाव पड़ा

कि वे इन्हें छोड़कर भाग गए। इस कारण संसार से उदासीन

होकर यह विरक्त साधु हो गए। इनका उद्धवबोध नामक ग्रंथ

तथा बहुत सी स्फुट रचनाएँ मिलती हैं। हिंदी में भी कविता की

है। इनका देहावसान सं० १६५८ में हुआ था। उदाहरण:—

जब तू आया तब क्या लाया क्या ले जावेगा ।

किनने बुलाया, झूठा धंधा, पड़िया फंदा, देखत क्या हो अंधा ।

कहत जनार्दन सुन अरे मन, न छोड़ उस साई के चरन ॥

यह महाराज शिवाजी के गुरु थे। यह सूर्याजी पंत नामक देशस्थ ब्राह्मण के पुत्र थे और इनका जन्म सं० १६०८ में हुआ

था। इनका नाम नारायण था। कहा जाता है कि इन्हें स्वयं साक्षात् रामचंद्र ने मंत्रोपदेश किया था। विरक्त हो यह गृह त्यागी हो गए और बहुत समय तपस्या तथा तीर्थाटन में व्यतीत किया। सर्वत्र भ्रमण करने के अनंतर यह अपने प्रांत में चले आए और यहीं शिवाजी को देशव्रत में दीक्षित किया। इन्होंने मराठी में बीस से अधिक ग्रंथ लिखे हैं, जिनमें दासबोध विशेष प्रसिद्ध है। इसका हिंदी में भी अनुवाद प्राप्त है। हिंदी में भी इन्होंने कुछ पद कहे हैं, जिनमें से दो उदाहरण नीचे दिए गए हैं:—

१. चातुर चतुर को चटकारे।

रसिक वचन जन दरसन मन में अजब लगत चटकारे।

२. सुनाए गैब क्या बातों गैबी मर्द उसे कहो।

रंजीदा खुश होता है, रोता है झूठ लालची।

खुदा सो कौण सो कैसा बेग खातिर त्यावणा।

समर्थ रामदास जी तथा इनके समकालीन चार साधु पंचायतन नाम से प्रसिद्ध थे, जिनमें मागा नगरवाले केशव स्वामी तथा निगाड़ीवाले रंगनाथ स्वामी ने भी, जो टेहरी नरेश देवदास आदि के राजगुरु थे, हिंदी में कविता की है। समर्थ जी के शिष्य दिनकर, गिरिधर तथा देवदास और शिष्या बयाबाई ने भी हिंदी में कविता की है। प्रथम की स्फुट रचना तथा द्वितीय का 'सीता स्वयंवर' सुना जाता है। अन्य दो की भी कविता मिलती है। उदाहरण:—

देवदास—कही बात ये ही सही ब्राह्मणों की

अच्छी सी भली है राहनी उन्हींकी।

तुम्हारा हमारा खुदा एक भाई

कहें देवदास नहीं है जुदाई॥

बया बाई—बाग रैगीला महल बना है ।

महल के बीच में झूलना पड़ा है ॥

इस झूलने पर झूलो रे भाई ।

जनम मरन की याद न आई ॥

दासी बया कहे गुरु भैया ने

मुझको झुलाया सोही झुलावे ॥

यह शाहजी भोंसला तथा जीजाबाई के पुत्र थे और इनका जन्म सं० १६८४ में हुआ था। यह दस वर्ष की अवस्था में अपनी माता तथा दादाजी कोणदेव की अभिभावकता में शिवाजी पूना में जाकर रहने लगे। वहीं इन्होंने देश को मुसल्मानी अत्याचार से बचाने तथा उसकी स्वतंत्रता के लिए प्रयास आरंभ किया। यह यावज्जीवन इस व्रत की पूर्ति के लिए प्रयत्नशील रहे। इनकी मृत्यु सं० १७३७ में हुई। यह बड़े सच्चरित्र, साहित्य-प्रेमी तथा गुण-ग्राहक थे। संस्कृत, हिंदी आदि के अनेक प्रसिद्ध कवियों को आश्रय दिया था तथा स्वयं भी कुछ कविता करते थे। अपने गुरु रामदास जी के पंथ की प्रथा के अनुसार शिवाजी ने भी पंचपदी बनाकर ईश्वर का गुणगान किया था, जिसका एक पद हिंदी का भी है और जो नीचे दिया जाता है :—

जय हो महाराज गरीब नेवाज ।

बंदा कमीन कहलाता हूँ साहिब तेरी ही लाज ॥

मैं सेवक बहु सेवा माँगूँ इतना है सब काज ।

छत्रपती तुम, सेकदार * शिव इतना हमारा अर्ज ॥

छत्रपति शिवाजी के यह दरवारी भाट थे पर इनकी बहुत कम कविता उपलब्ध हुई है और भाषा भी मैत्री हुई नहीं है। इनकी कविता के दो उदाहरण :—

* सेकदार - सेवक, चौकीदार ।

१. गंगेश के पूत भव संग निर्धूत दिन राज संजूत गुरु नाथ सेवा ।

२. असिधार जुझार गज भार दिलदार

गज तोप के बार बंदूक हाटे ।

भाट असवार घन दुंदुभी के गजर

सुनत दुश्मनों का कान फाटे ॥

यह महाराज शिवाजी के आश्रित कवि थे । इनके विषय में विशेष कुछ ज्ञात न हो सका । इनका एक गोविंद कवित्त नीचे दिया जाता है :—

भूप शिबराज साहि प्रबल प्रचंड तेज,

तेरो दौरदंड झूम भारत भड़ाका है ।

कारे आसमान भासमान को गरब गाढ़े,

डारे मघवान हूँ के हिय में हड़ाका है ॥

कहे गोविंद सब शत्रुन के शीशन पै,

गाज ते गिरत गास गाज मे धड़ाका है ।

हौदा काट हाथी काट भूतल बराह काट,

काटी श्रीकमठ पीठ काटती कड़ाका है ॥

महाराज शिवाजी के गुरु समर्थ श्री रामदास जी के शिष्य बालकराम उपनाम रामठेंगा मराठी के सुकवि थे । जयवंत उक्त समर्थ जी के शिष्य अरणाप्या के शिष्य थे, जिन्होंने मराठी, कनाडी और हिंदी में कविता की है । ये दोनों सत्रहवीं शताब्दि के कवि हैं । इसी समय में चित्रगुप्त उपनाम के एक कवि ने 'शिवाजी बखर' गद्य में लिखा है और कहीं कहीं मराठी तथा खड़ी बोली हिंदी की कविता दी है । अठारहवीं शताब्दि के पूर्वार्द्ध में समर्थ जी के शिष्य उद्धव स्वामी की परंपरा में बालकराम चौथे पुरुष हुए हैं, जिनके शिष्य निरंजन ने हिंदी में कविता की है । इन सबके उदाहरण :—
बालकराम—रामठेंगा गुरु ज्ञान में मस्त हैं राम लेना यही राम देना ।

जयवंत— हम तो बैरागी बाबा राम जू के दरबारी ।

सब जन कूँ हमारी राम राम सीताराम ॥

चित्रगुप्त— सब दुनिया के आफताब शहाजी सुत छत्रपति शिवराज ।

श्री शंकर विष्णु अवतार विराजत हैं राजन मों सिरताज ॥

बीजापुर हैदराबाद बाँकी अच्छी दौलताबाद ।

जोर बरजोर से काफिर कूँ मार डालकर किया अपना काज ॥

निरंजन— बालकराम गुरु गाधो भव जल तारक ।

कंथा टोपी कोपिन डाली रामदास का बाना ।

रात दिना बैठाकर गावे हरी भगति का गाना ॥

मुगल सम्राट् अकबर का राज्यकाल फारसी तथा हिंदी साहित्य के विकास के लिए बहुत अच्छा युग था और इसीके समय में

हिंदी-साहित्य के क्षेत्र को उसके सूर्य तथा शशि के सम्मिलित आलोक ने प्रकाशमान किया था ।

अकबर

अकबर का जन्म सं० १५९९ में, राजगढ़ी सं० १६१३ में और मृत्यु सं० १६६२ में हुई थी । अकबर गुणियों का आश्रयदाता तथा गुणग्राहक था और स्वयं गुणों का अच्छा पारखी था । अकबर ने हिंदी में कुछ कविता की है या यों कहें कि कुछ कविता उसके नाम की छाप से मिलती है । यह स्वयं इसकी बनाई हो सकती है या दूसरों ने इसके नाम से बना दी होगी । जो कुछ भी हो, यह भी एक बादशाही मौज थी और इससे हिंदी कविता को अवश्य प्रोत्साहन मिला । इसके दरबार के कई सदाँर स्वयं साहित्य-सेवी हो उठे और अन्य साहित्य-सेवियों को उन्होंने आश्रय भी दिया । नवाब अब्दुरहीम खाँ खानखानाँ, महाराज मानसिंह, राजा बीरबल आदि ऐसे ही थे । गंग भाट, नरहरि महापात्र, करनेस, मनोहर, तानसेन आदि को इसी दरबार का आश्रय था । अकबर की कविता का एक उदाहरण दिया जाता है:—

जाको जस है जगत में जगत सराहै जाहि ।

ताको जीवन सफल है कहत अकब्बर साह ॥

सबै भूमि गोपाल की यामें अटक कहा ।

जाके मन में अटक है सोई अटक रहा ॥

नवाब अब्दुरहीम खाँ खानखानाँ का जन्म सं० १६१० वि० में हुआ था और यह सम्राट् अकबर के दरबार के नवरत्न में से थे ।

यह अपने समय के प्रसिद्ध सेनापति, विद्वान् तथा सुकवि थे । यह प्रांतीय सूबेदारी से लेकर

रहीम

साम्राज्य के वकील-मुतलक (प्रधान अमात्य) पद तक हुए थे । यह संस्कृत, फारसी, तुर्की, हिंदी आदि अनेक भाषाओं के पूर्ण ज्ञाता थे । संस्कृत में रहीम काव्य तथा खेट कौतुकम् लिखा है और तुर्की से फारसी में तुजुके बाबरी का अनुवाद किया है । हिंदी में रहीम सतसई, शृंगार सोरठ, बरवै नायिका भेद, नगर शोभा वर्णन तथा मदनाष्टक के सिवा स्फुट बरवै, कवित्त, सबैये, पद आदि लिखे हैं । इनके नीति के दोहों में जिस प्रकार सांसारिक अनुभव भरे हुए हैं उसी प्रकार शृंगारिक पदों में भी अनूठापन भरा हुआ है । भाषा पर इनका अच्छा अधिकार था और ब्रजभाषा तथा अवधी में जैसी अच्छी रचना की है वैसी ही खड़ी बोली में भी । इनकी मृत्यु सं० १६८२ वि० में हुई थी ।

उदाहरण :—

१. कलित ललित माला बा जवाहिर जड़ा था ।

चपल चखनवाला चाँदनी में खड़ा था ॥

२. पकरि परम प्यारे साँवरे को मिलाओ ।

असल श्रमृत प्याला क्यों न मुझको पिलाओ ॥

३. दृष्टात्तत्र विचित्रता तरुलता में था गया बाग में ।

काचित्तत्र कुरङ्गशावनयना गुल तोड़ती थी खड़ी ॥

उन्मदभ्रूधनुषा कटाक्षविशिखैः घायल किया था मुझे।

तत्सीदामि सदैव मोहजलधौ हे दिल गुजारो शुकर ॥

राजा टोडरमल टन्नन गोत्र के खत्री थे। इनका जन्मस्थान सीतापुर या लाहौर जिले का कोई स्थान है। यह पहिले शेरशाह सूरी तथा बाद को अकबर की सेवा में रहे। यह टोडरमल अकबरी नवरत्न में से एक थे। यह एक प्रसिद्ध सेनापति थे और इन्होंने गुजरात तथा बंगाल में बड़ी योग्यता से विद्रोह-दमन किए थे। यह माल-विभाग तथा कोष के कार्य में बड़े दक्ष थे और अब तक इनके चलाए भूमि-कर विभाग के बहुत से नियम प्रचलित हैं। मुगल साम्राज्य-काल में भी सेना तथा कोष के कार्यालयों में इन्हींके बनाए नियम चलते रहे। यह हिंदी के सुकवि थे और टोडर उपनाम से ब्रजभाषा में अच्छी कविता करते थे। इनकी एक रचना है, जिसमें इन्होंने कविता ही में हिसाब किताब हुंडी-व्यवहार आदि का विवरण दिया है। इसकी भाषा शुद्ध खड़ी बोली है और इसमें इन्होंने तद्विषयक अपने सब अनुभवों का उपयोग कर इसे उपयोगी बना दिया है। उदाहरण:—

ऊपर लिखे निवास सब रक्खे मुद्दत होय ।

चलत निशाँ अंदाज धन हुंडी कहिए सोय ॥

जग सराफ ताको कहै जमा समय पर देय ।

ब्यापारी सो जानिये समय पै मुद्दत लेय ॥

यह इटावा जिला के अंतर्गत इकनौर ग्राम के ब्रह्म भट्ट थे।

यह अकबर तथा अच्युतर्हीम खाँ खानखानाँ के समकालीन थे। इनके स्फुट पद ही प्रायः मिलते हैं, कोई रचना प्राप्त नहीं हुई है। इनके जीवन के

विषय में विशेष ज्ञात नहीं हुआ। इन्होंने आयुष्य अधिक पाई थी पर कहा जाता है कि किसी नवाब या सुल्तान ने इनके व्यंग्य

पर इन्हें हाथी से चिरवा दिया था। अत्यंत ओजपूर्ण वीर रस की कविता के साथ शृंगार तथा हास्य की भी इन्होंने अच्छी कविता की है। भाषा पर इनका पूर्ण अधिकार था। उदाहरण :—

१. बाल से ख्याल बड़े से विरोध अगोचर नार से ना हँसिये ।
अन्न से लाज अंगन से जोर अजानत नीर में ना धसिये ॥
बैल कूँ नाथ घोड़े कूँ लगाम मतंग को अंकुस से कसिये ।
‘गंग’ कहे सुन साह अकब्वर कूर सों दूर सदा बसिए ॥

२. धरनी धमक कसमसक कसक गई ।

सूखे बसुधा के खंड खंड खुरसाना के ॥

सेस फन फूटि तूटि फूटि चकचूर भए ।

चले पेसखाना जू नवाब खानखाना के ॥

तानसेन मकरंद पांडेय नामक गौड़ ब्राह्मण के पुत्र थे। संगीत कला में इनके प्रथम गुरु स्वामी हरिदास जी थे और बाद को ग्वालियर के सूफी फकीर शेख मुहम्मद गौस से भी कुछ सीखा था। अंतिम के प्रभाव से यह मुसल्मान हो गए। इसका नाम पहिले त्रिलोचन था। इसके आश्रयदाता क्रमशः दौलत खाँ सूरी, रीवाँ नरेश रामचंद्र बधेलाल तथा सम्राट् अकबर थे। यह सन् १५६३ में अकबर के दरबार में पहुँचा, जहाँ इसका बहुत सम्मान हुआ। इसकी मृत्यु सन् १५८९ में हुई थी। यह संगीत का प्रसिद्ध आचार्य तथा सुकवि भी था। इसके पद विशेष कर ब्रज भाषा तथा खड़ी बोली ही में हैं और बहुत हैं। दो उदाहरण :—

१. इस सीस मध विराजते त्रैलोक पावन किए

जीव जंतु खग मृग सुर नर मुनि मानी ।

‘तानसेन’ प्रभु तेरी अस्तुति करता

दाता भक्त जनन की मुक्ति की बरदानी ॥

२. रैन बिहाय गई भोर भयो होरी कहाँ खेले प्यारे ?
 कौन नवीन तिय पिय बिलमाए गिनते बीती मोहँ सब निसि तारे ॥
 कहूँ काजर कहूँ पीक-लीक अधरन रंजन भाल महावर धारे ।
 'तानसेन' के प्रभु तुम बहु नायक साँझ के गए हो भोर पधारे ॥

बाजबहादुर सं० १६१२ में मालवा की राज गद्दी पर बैठा और सात वर्ष बाद सं० १६१८-१९ में अकबर की सेना द्वारा दो बार परास्त होकर कैद हो गया। इसी की प्रेमिका

रूपमती रूपमती थी, जो सारंगपुर की एक वेश्या थी।

इन दोनों में पारस्परिक प्रेम था। यह सं० १६१८ के वैशाख में बाजबहादुर से बिछुड़ने तथा मुगल सेनानी अदहम खाँ के कुप्रस्ताव से विष खाकर मर गई। ये दोनों हिंदी में कविता करते थे और सभी में दोनों के नाम रहते थे। उदाहरण:—

१. श्याम बिना उमगे री दोऊ बदरा ।

'रूपमती' के बाजबहादुर तज दियो गोकुल मिट गयो भगरा ॥

(राग बिहाग, जलद तिताला)

२. तू जो अब तो मुख देखत कहत एतो गुमान गुस्सो करे रीभे ललना भावै ।
 बाद ही बकबो करत पूँछत ते उत्तर न देत कंचन की सम काँच क्यों भावै ॥
 साही कसौटी के माँह मेरे जान ताही की महिमा जिसे मन में रहे आवै ।
 रूपमती कहे ताही को लहनो बाजबहादुर कों रिभावै ॥

(राग गांधार, ताल चौताला)

३. श्याम मोरे तई सेज समाए लोग जानें कजरा ।

रूपमती के बाजबहादुर प्रेम प्रीत का भगरा ॥

४. बिना पिया पापी जिया चाहत है सुख साज ।

रूपमती दुखिया भई बिना बहादुरबाज ॥

यह फतहपुर के अंतर्गत असनी के निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका जन्म सं० १५६२ के लगभग हुआ था और

मृत्यु सं० १६६६ के आसपास सौ वर्ष से अधिक नरहरि महापात्र अवस्था पाकर हुई थी। यह अकबर के दरबार में रहते थे और वहीं इन्हें महापात्र की पदवी मिली थी। उक्त दरबार में इनका अच्छा सम्मान था और इन्हें धन प्राप्ति भी बहुत हुई। इन्हींके पुत्र प्रसिद्ध हरिनाथ हुए। नरहरि जी की रुक्मिणी-मंगल तथा छप्पयनीति दो रचनाएँ कही जाती हैं। इनकी फुटकर कविता बहुत हैं तथा सरस भी हैं। आपकी भाषा विशेषतः ब्रजभाषा ही है पर फारसी मिश्रित खड़ी बोली की कविता भी प्राप्त है। एक छप्पय यहाँ दिया जाता है:—

नेक बख्त, दिल पाक, सखी, ज्वामर्द, शेर नर ।

औवल वली खोदाय दिया बिसियार मुल्क जर ॥

तुम खालिक बहु वेश रुक्न शालियन अमालिम ।

दौलत बख्त बुलंद जंग दुश्मन पर जालिम ॥

इंसाफ तुरा गोयद खलक 'कवि नरहरि' गुफ्तन चुनीं ।

बब्बर न बरोबर बादशाह दिल दिगर न दीदम दर दुनी ॥

इन्हीं नरहरि महापात्र के समसामयिक तथा अकबरी दरबार में जानेवाले करनेस कवि थे, जिन्होंने कर्णाभरण, श्रुतिभूषण तथा भूपभूषण तीन ग्रंथ लिखे हैं। इनका जन्म सं० १६११ में कहा जाता है। यद्यपि यह रीति ग्रंथकार की प्रधानतः हैं पर उस काल से पहिले ही वर्तमान थे अतः इनका परिचय तथा उदाहरण यहीं दे दिया जाता है। इन्होंने खड़ीबोली में भी कविता की है। किसी घूसखोर राजकर्मचारी पर क्रुद्ध हो कहते हैं:

खात हैं हराम दाम करत हशम काम

धाम धाम तिनहीं के अपजस छावेंगे ।

दोजख में जैहैं तब काटि काटि कीबे खैहैं

खोपड़ी को गूद काक टोंटन उड़ावेंगे ॥

कहै 'करनेस' अबैं घूस खात लाजैं नाहिं
 रोजा औ नेवाज अंत काम नहि आवेंगे ।
 कविन के मामले में करें जौन खामी तौन
 निमकहरामी मरे कफन न पावेंगे ॥

मोलाराम का जन्म सन् १७५० ई० में गढ़वाल में हुआ था, जिनके वंशज अब भी वहाँ विद्यमान हैं। यह कांगड़ा स्कूल के राजपूत चित्रकला के सुविख्यात चित्रकार हो मोलाराम गए हैं। इनकी मृत्यु सन् १८३३ ई० में हुई थी। इन्होंने बहुत से चित्र बनाए हैं, जिन पर अंग्रेजी में कई पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं। मोलाराम अच्छे कवि भी हुए हैं। स्फुट कविता के सिवा गढ़ राज्य वृत्तांत नामक एक काव्य लिखा है, जो ऐतिहासिक है। यह गढ़वाल प्रांत के किसी साधना पंथ के अनुयायी थे, जिसे अपनी कविता में मनमथ पंथ नाम से याद किया है। यह शाक्त मत के अंतर्गत ज्ञात होता है। इनकी भाषा में खड़ी बोली का पुट अधिक है। उदाहरणः—

१. काहू सो बकवाद नहीं हम करें करावैं ।
 मनमथ पंथी होय आपनो मन समझावैं ॥
 कहा वाद में स्वाद जो हम काहूँ सों वादैं ।
 जो सज्जन कुलवंत संत सो मन कों साधैं ॥
 'मोलाराम' विचार कही सुनो पंथ प्रवीन तुम ।
 भए भक्त जग माँह जे सब दासन के दास हम ॥
२. कहाँ हजार कहाँ लक्ष है अर्ब खर्ब धन ग्राम ।
 समझै मोलाराम तो सरद सुदेह इनाम ॥

जमाल के दोहे प्रसिद्ध हैं। यह मुसल्मान था पर कौन था, कहाँ का निवासी था, इसका ठीक ठीक पता नहीं है। इसका समय विक्रमीय सोलहवीं शताब्दि का पूर्वार्द्ध है क्योंकि इसने एक

जमाल दोहे में अकबर बादशाह का उल्लेख करते हुए कहा है कि यद्यपि वह सोना बरसता है पर इसके मस्तक पर दारिद्र्य का छत्र लगा रहने से इसे कुछ लाभ नहीं होता। इसके दोहों में नीति, शृंगार तथा कूट ही प्रधान हैं जो स्फुट मिलते हैं। इसकी भाषा में राजस्थानी, ब्रज तथा खड़ी बोली का मेल है। उदाहरण:—

जमला प्रीति न कीजिए, काहूँ सों चित लाय ।
 अलप मिलन, बिछुड़न बहुत, तड़प तड़प जिय जाय ॥
 जमला जोगिन में भई डाल गले मृगछाल ।
 बन बन डोलत हूँ फिरँ करत जमाल जमाल ॥
 तन सरबर, मन माछली पड़ी विरह के जाल ।
 तड़प तड़प जिय जात है बेगाँ मिलो जमाल ॥
 मन दारू तन तुपक है, बिरह पत्नीता लाल ।
 आह अवाज न निकसती जाती फूट जमाल ॥

इन्का जन्म सं० १६४३ में हुआ था और यह आगरे के रहने वाले थे। इन्होंने भाग्य के फेर में पड़कर देशाटन बहुत किया था और 'अर्द्धकथा' में अपना आत्मचरित लिखा है।

बनारसीदास यह जैन कवि तथा ज्ञानी पुरुष थे। नाटक समय-सार, सूक्ति-मुक्तावली आदि अनेक इनकी रचनाएँ हैं। इनकी छोटी छोटी कविताओं का एक संग्रह बनारसी-विलास के नाम से प्रकाशित भी हो चुका है। खड़ी बोली में काफी कविता की है और अच्छी की है। यह सुकवि तथा भावुक थे। इनके पचास वर्ष तक का जीवनवृत्त अर्द्धकथा में आया है पर इनका देहांत कब हुआ, पता नहीं। उदाहरण:—

काया चित्रसारी में परम परजंक भारी

माया की सँवारी सेज चादर कलपना ।

सैन करें चेतन अचेतनता नींद लिए
 मोह की मरोर यह लोचन को ढपना ॥
 उदै बल जोर यहै स्वाँस को शब्द घोर
 विषय सुख काज की है दौर यहै सपना ।
 ऐसी मूढ़ दशा में मगन रहे तिहूँ काल
 धावै भ्रमजाल में न पावै रूप अपना ॥

यह बनारसीदास के समकालीन आगरे के निवासी थे और इनका उल्लेख भी बनारसीदास ने अपनी रचनाओं में किया है । यह जैन धर्म के अच्छे विद्वान थे और अध्यात्म के रूपचंद पंडित थे । परमार्थी दोहा शतक अच्छा बन पड़ा है । इनके अन्य ग्रंथ गीत परमार्थी और मंगल गीत प्रबंध हैं । इनकी भाषा में खड़ी बोली ही अधिक है । उदाहरण :—

१. घट भीतर सो आपु है तुमहि नहि कछु याद ।
 वस्तु मुठि मैं भूलि कै इत उत देखत वादि ॥
२. विषयन की चतुराई कहिए को सरि करे तुम्हारी ।
 बिन गुरु फुरत कुविया कैसे चेतन अचरज भारी ॥

कादिर बख्श का जन्म सं० १६३५ वि० में हुआ था और यह हरदोई जिला के अंतर्गत पिहानी का रहनेवाला था । सैय्यद इब्राहीम का यह शिष्य था और कादिर अच्छी कविता करता था । कुछ स्फुट छंद मिलते हैं । उदाहरण :—

गरज नगारे भारे वृंद हटकारे आगे,
 जब्जा धारे धुखा गज तीना बदन के ।
 पवन तरंग चढ़े धाये भट रंग रंग ।
 घेरि आये चारों ओर सूने ही सदन के ॥
 केकी कूक काती फल कोकिला से घाती,
 अरि छाती हहराती देखे चपला रदन के ।

‘कादर’ विरह सुधि लीजै श्याम सादर जू,

आये वीर बादर बहादुर मदन के ॥

शहरयार के उपनाम से एक कवित्त मिला है पर यह कौन है, इसका ठीक पता नहीं है। जहाँगीर के तृतीय

शहरयार

पुत्र से इसका सम्बन्ध माना गया है, जिसका जन्म सं० १६६२ में और मृत्यु सं० १६८५ में हुई थी। इस विषय में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। उक्त कवित्त इस प्रकार है :-

चाँद से चकोरे टले मेघ से भी मोर टले,

चोरी से चोर टले दिल से दिलदार जो ।

रोगी हूँ ते रोग टले, भोगी हूँ ते भोग टले,

जोगी हूँ ते जोग टले कामी हूँ ते नार जो ॥

पर्वत से मेरू टले धन से कुबेर टले,

दिन का भी फेर टले हो बुरा हजार जो ।

लेकिन ‘शहरयार’ मानो यह एतवार,

टले नहि होनहार, होवे होनहार जो ॥

सप्तम प्रकरण

उत्तर मध्यकाल या रीतिकाल

(सं० १७००—१९०० वि०)

यद्यपि हिंदी-साहित्य के इस काल की विशिष्टता अर्थात् रीति-ग्रंथ-प्रणयन की अधिकता विशेष रूप से विक्रमीय अठारहवीं तथा

उन्नासवीं शताब्दियों ही में रही पर इसका आरंभ

विषय-प्रवेश

इसके पहिले ही से हो चुका था । भक्तिकाल ही के एक प्रमुख कवि नंददास जी रसमंजरी तथा

विरहमंजरी लिख चुके थे और कृपाराम ने भी हिततरंगिणी में कुछ रस निरूपण किया था। मोहनलाल मिश्र तथा करनेस ने भी कई ग्रंथ लिखे पर आचार्य केशवदास ही प्रथम कवि हैं, जिन्होंने कई ग्रंथ लिखकर सम्यक् रूप से काव्य के सभी अंगों का विवेचन किया है। जिस प्रकार व्याकरण भाषा को नियंत्रित करने के लिए उसका अनुगमन करता है उसी प्रकार रीति ग्रंथ काव्यादि की रचना हो जाने पर बनते हैं। आदि तथा पूर्व मध्य-काल में हिंदी-पद्य साहित्य काफी तैयार हो चुका था और लक्षण ग्रंथों की आवश्यकता ज्ञात हो चुकी थी तथा इस ओर साहित्यकारों ने कार्य आरंभ कर भी दिया था; पर दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि इन हिंदी-साहित्य-सेवियों ने स्वभाषा-जननी संस्कृत के अमूल्य साहित्य-भांडार का सहज सुलभ होते भी उपयोग पूर्ण रूपेण नहीं किया, नहीं तो वे हिंदी-साहित्य के कोष को रस-अलंकारादि के सम्यक् प्रतिपादित ग्रंथों से पूर्ण कर जाते। वे हिंदी में ऐसे ग्रंथों का अभाव होते भी संस्कृत ग्रंथों के कारण इस विषय के शास्त्रज्ञ विद्वान् थे पर उस विद्वत्ता तथा योग्यता का सुफल यथोचित हिंदी साहित्य को न दे सके। इन प्राप्त रीति-ग्रंथों से जितना उनकी कवित्व-शक्ति का परिचय मिलता है, उतना आचार्यत्व का नहीं मिलता। अपर्याप्त तथा कहीं कहीं भ्रामक परिभाषा मात्र एकाध दोहे में देकर उनके उदाहरणों की रचना में इन कवियों ने अपनी सारी प्रतिभा, काव्य-कौशल आदि खर्च कर दिया है और यही कारण है कि वे तथ्य की विवेचना एक प्रकार कर ही न पाए। यहाँ तक कि किसी किसी ने केवल उदाहरण मात्र ही देकर संतोष कर लिया है। वास्तव में इस काल का यह नामकरण ऐसे ग्रंथों के ढेर लग जाने ही से हुआ है, वास्तविक विवेचनात्मक ग्रंथों के प्रणयन से नहीं।

इसका एक मुख्य कारण यह रहा है कि इस काल के कवियों की धन तथा यश के अर्जन की ओर विशेष रुचि रही है तथा इसके लिए धनकुबेरों और राजसम्मान-दाताओं को प्रसन्न करना उनका ध्येय रहा है। वे अपनी स्तुति तथा अतिशयोक्ति-पूर्ण प्रशंसा ही से उन सब को प्रसन्न कर सकते थे, जिसके लिए शास्त्रीय विवेचन की कोई आवश्यकता ही न थी। अतः नाम मात्र को कुछ परिभाषा आदि देकर उसके उदाहरण में आश्रय दाताओं की बढ़ बढ़ कर प्रशंसा की कविता बना डालते थे जिससे 'इतै कवि मुख जस-आखर खुलत उतै पाखर समेत पील खुलै पीलखाने ते'। तिस पर भी कितने 'आजु कालिह के दानि' के नाम कोसते ही रह गए। हाँ, इसका यह फल अवश्य हुआ कि इस काल में अन्य विषयों की ओर साहित्य प्रसरित होने नहीं पाया। सभी साहित्यकार उक्त प्रकार के रीति-ग्रंथ रचकर अपनी प्रतिभा तथा अध्यवसाय की इतिश्री कर देते थे। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि रीति-ग्रंथों के सिवा इस काल में और कुछ बना ही नहीं; पर विशेषता इसी की रही।

इस काल के आरंभ तक हिंदी-साहित्य का वह स्वर्ण-युग जिसमें सूरदास तथा तुलसीदास से भक्त महात्मा श्रेष्ठ सुकवियों ने अपनी अमर रचनाएँ रची थीं, बीत चुका था और उसमें उत्कृष्ट सैकड़ों काव्य-ग्रंथ तैयार हो चुके थे। इनके कारण भाषा बहुत कुछ परिमार्जित होकर प्रौढ़ता को पहुँच गई थी तथा यह आवश्यक हो गया था कि काव्य भाषा के नियंत्रण के लिए व्याकरण आदि की व्यवस्था की जाय पर वैसा न हुआ। 'भाव अनूठो चाहिए भाषा कैसिहु होय' का सिद्धांत लेकर कविगण संतोष करते रहे। एक ही शब्द को अनेक रूप में तोड़ मरोड़ कर प्रयोग करने की केवल सुविधा को वे ध्यान में रखते थे, शब्द के रूप की शुद्धता पर दृष्टि भी न

भाषा

डालते थे। ब्रजभाषा के कवि उसकी शुद्धता को भूलकर अवधी, खड़ी बोली, पंजाबी आदि का सुविधानुसार मिश्रण कर डालते थे और यही दूसरी भाषाओं के कवियों का भी हाल था। फारसी अरबी के शब्द भी आदि काल से इसी सुविधा के विचार से प्रयुक्त होते चले आ रहे थे। काव्यनिर्णयकार 'दास' जी ने काव्य भाषा के विषय में लिखते हुए उसके छ भाषा मिश्रित होने का उल्लेख किया है:—

ब्रज मागधी मिलै अमर नाग यवन भाखानि ।

सहज पारसी हू मिलै षट विधि कहत बखानि ॥

साथ ही आप की यह राय भी थी कि ब्रजभाषा-ज्ञान के लिए ब्रज मंडल में बोली जाने वाली भाषा जानना आवश्यक नहीं है, उक्त प्रकार की मिश्रित भाषा में रचे हुए सुकवियों के ग्रंथों का पारायण ही काफी है, सुनिः—

ब्रज भाषा हेत ब्रजवास ही न अनुमानौ

ऐसे ऐसे कविन की बानी हूँ सो जानिए ॥

वाक्य-योजनाओं में भी इसी प्रकार का मनमाना था और भाषा-विषयक निरंकुशता ही इसका मुख्य कारण था।

फारसी अरबी शब्दों का प्रयोग करना जैसा लिखा जा चुका है, आदि काल ही से आरंभ हो गया है और अब उनका एक दम बहिष्कार कर देना कष्टसाध्य हो गया है; ऐसी अवस्था में कम से कम उनके स्वरूप को ऐसा बिगाड़ना न चाहिए कि वे अर्थ का अनर्थ करें। अपने सगे कितना भी रूप बदल कर आवें तब भी उन्हें पहिचान लेना कष्टकर नहीं होता पर दूसरे परिचित होते भी साधारण रूप बदलते ही अपरिचित से हो जाते हैं। फारसी अरबी शब्दों के अक्षरों के नीचे आवश्यकतानुसार बिंदी देने की प्रथा थी पर उस बिंदी की चिंदी निकाल दी गई; पर कहीं कहीं इससे

अनर्थ हो जाता है। जलील जलील,^१ मुकदर मुकदर^२ कानून-कानून^३ आदि के अर्थों में कितना अंतर है और नीचे विंदी न देने से अनर्थ हो जाता है। मिश्रबंधुविनोद में एक शैर यों उद्धृत है:—

जितने शायर हैं फना के बाद है उनका नमूद ।

खलक से मादूम जब उनका हुआ, शोहरत हुई ॥

दोनों पंक्तियों में उनका आया है पर एक ही अर्थ लेने से शैर का भाव नष्ट हो जाता है। दूसरा उनका 'उनका' है जो एक कल्पित पक्षी है। दूसरी ओर कुछ साहित्यिक अकारण ही चंद्र-विंदु कुछ शब्दों पर अपनी ओर से बढ़ा देते हैं, जैसे दुनिया का दुनियाँ, जहाँआरा का जहाँनारा। एक प्रसिद्ध आलोचक यकता का यकताँ लिख गए हैं।

भक्तिकाल के सुकविगण विशेषतः स्वांतः सुखाय तथा अपने इष्ट देवकी भक्ति में मग्न होकर सांसारिक विषयादि को ध्यान से भी भुलाकर उसी इष्ट देव की लीला के वर्णन से विचार-परिवर्तन अपनी वाणी पवित्र करते रहे और उन्होंने उस अमृत-वर्षिणी मधुर वाणी से पददलित भारत की सूखती आशावल्ली को पुनः लहलहा दिया था। आशा संचरित होने पर तथा देश में कुछ सुख शांति स्थापित हो जाने पर स्वभावतः उस आशा के आधार की ओर दृष्टि कम होने लगी और सांसारिक विभव की ओर मन चलायमान होने लगा। अतः आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने के लिए लाखों मनुष्यों के हृदयाधार राधाकृष्ण को साधारण नायक-नायिका के रूप में लेकर वे उनके केलि-वर्णन कर अपने कल्पित हृदय का परिचय देने लगे।

१. जलील-वझा. प्रतिष्ठित। ज़लील-अप्रतिष्ठा, बुरा।

२. मुकदर-मलिन। मुकदर-सौभाग्य।

३. कानून-भट्टी, चूल्हा। कानून-राजनियम।

इस काल के कवियों की यह धनलिप्सा उनकी एक खास विशेषता है, जिसके कारण आज भी कुछ आलोचक गए इन पर आक्षेप करते हुए भक्त-कवियों की अमर रचनाओं तक को इसी में घसीट लाते हैं। इस काल का प्रधान रस शृंगार ही रहा है तथा अन्य सभी इसके आगे दब से गये हैं।

यद्यपि आचार्य केशवदास जी हिंदी के मुख्य रीति ग्रंथकार हो गए हैं पर वह भक्तिकाल ही में आ गए हैं। इनकी रचनाओं के प्रायः पचास वर्ष बाद तक कोई अच्छा रीति ग्रंथ नहीं लिखा गया और उसके बाद अठारहवीं शताब्दि विक्रमीय के आरंभ में त्रिपाठी-ब्रंधुओं का आविर्भाव हुआ, जिनमें सभी प्रसिद्ध कवि हो गए हैं। ये चार भाई थे—चिंतामणि, भूषण, मतिराम तथा जटाशंकर। रीतिकारों में सभी ने परंपरा की काव्य-भाषा को ही अपनाया है और कहीं कहीं किसी ने खड़ी बोली का प्रयोग किया है। इस इतिहास में केवल खड़ी बोली ही के कवियों के संक्षिप्त परिचय तथा उदाहरण देने के लिए स्थान है अतः वैसा ही किया गया है। इस काल के अत्यधिक प्रसिद्ध कवियों में देव तथा बिहारी का नाम आता है और ये शुद्ध साहित्यिक ब्रजभाषा ही के कवि हैं। देव ने खड़ी बोली के शब्द तथा वाक्यांश भी प्रयुक्त किए हैं और एक पूरा कवित्त भी प्रायः खड़ी बोली में है, जो नीचे दिया जाता है:—

१. पाइए प्रगट परमेसर प्रतीति में ।

२. एरे मन मेरे हाथ पाँव तेरे तोरतो ॥

३. संपति में णँठि बैठे चाँतरा अदालति के

बिपति में पैन्हि बैठे पायँ झुनझुनियाँ ।

जे तो मुख संपति तितोई दुख बिपति में

संपति में मिरजा बिपति परैं धुनियाँ ॥

संपति ते बिपति बिपति हूँ तैं संपति है
 संपति और बिपति बराबरि कै गुनियाँ ।
 संपति में कायँ कायँ बिपति में भायँ भायँ
 कायँ कायँ भायँ भायँ देखी सब दुनियाँ ॥

बिहारी में भी खड़ी बोली का ऐसा प्रयोग कहीं कहीं मिलता है, देखिए:—

१. ललन चलन सुन चुप रही बोली आप न ईठ ।
२. चैत-चाँद की चाँदनी डारति किए अचेत ।
३. जिन दिन देखे वे कुमुम गई सुवीत बहार ।
 अब अलि रही गुलाब में अपत कटीली डार ॥
४. इक भीजे, चहले परे वूड़े बहे हजार ।

यह रत्नाकर त्रिपाठी के पुत्र तथा चिंतामणि, मतिराम आदि के भाई थे। इनका नाम पतिराम कहा जाता है और चित्रकूटपति

सोलंकी राजा 'हृदयराम सुत रुद्र' ने 'भूषण'
 भूषण उपनाम दिया था, जिस नाम से यह प्रसिद्ध हैं।

इन्होंने शिवाजी, साहू तथा पन्ना-नरेश छत्रसाल की प्रशंसा में कविता की है। शिवराज भूषण, शिवा बावनी आदि इनकी रचनाएँ प्रसिद्ध हैं। इनकी वीर रस की कविता बड़ी ओज पूर्ण है। शिवराज भूषण रीतिग्रंथ है पर अलंकार के विवेचन पर अधिक दृष्टि न देकर कवित्व दिखलाने का विशेष इसमें प्रयास है। कहीं कहीं खड़ी बोली की कविता भी दी है। यह कथन कि केवल मुसलमानों ही के मुख से खड़ी बोली कहलाई गई है ठीक नहीं है, जैसा कि नीचे दिए हुए उदाहरणों से ज्ञात होगा:—

१. एक समै सजिकै सब सैन सिकार को आलमगीर सिधाए ।
२. भूषन भनत ताकी बात मैं बिचारी तेरे परताप रविकी उज्यारी गढ़ लेत हैं ।
३. बोल वास ते (से) जानिए हंस चमेली फूल ।

४. 'भूषण' भनत शिवराज तेरी धाक सुन हयादारी चीर फारि मन भुँकलाती हैं ।

५. पंज हजारिन बीच खड़ा किया मैं उसका कुछ भेद न पाया ।

मारवाड़ नरेश महाराज यशवंतसिंह प्रतापी राजा हो गए हैं और इनका अधिकतर जीवन युद्ध-क्षेत्र ही में व्यतीत हुआ था ।

सम्राट् औरंगजेब भी इनका सम्मान करता था ।

यशवंतसिंह इनको सं० १६९४ वि० में राज्य मिला था और

इनकी मृत्यु सं० १७३५ में हुई थी । यह संस्कृत

तथा भाषा के अच्छे ज्ञाता थे । इनका 'भाषा भूषण' प्रसिद्ध अलंकार ग्रंथ है । वेदांत पंचक नाम से इनकी पाँच रचनाएँ अनुभव प्रकाश आदि छप चुकी हैं । प्रबोध चंद्रोदय नाटक का भी अनुवाद इन्होंने किया है । इनकी रचना में खड़ी बोली के वाक्य यत्र तत्र मिलते हैं । उदाहरण :—

१. नैन-कमल ये ऐन हैं और कमल किहि काम ।

२. जाचक तेरे दान ते भए कल्पतरु भूप ॥

कुलपति मिश्र विहारीलाल के भाँजे तथा माथुर चौबे परशुराम के शिष्य थे । यह जयपुर के राजकुमार रामसिंह के आश्रित थे

और वहीं सं० १७२७ में रसरहस्य रचा था । इसके

कुलपति सिवा संग्रामसार, युक्तिरंगिणी आदि चार ग्रंथ

इनके और हैं । रसरहस्य में गद्य-टिप्पणी भी है ।

नम्मट के काव्यप्रकाश के आधार पर इसकी रचना हुई है; पर जैसा चाहिए वैसा गंभीर शास्त्रीय निरूपण नहीं हो पाया । इनकी रचनाएँ ब्रजभाषा ही में हैं पर कुछ पद खड़ी बोली में मिले हैं । एक नीचे दिया जाता है :—

हूँ मैं मुश्ताक तेरी सूरत का नूर देख

दिल भरपूर रहे कहने जवाब से ।

मेह का तालिब फकीर है मेहवान

चातक जो जीवता है स्वातिवारे आब से ॥

तू तो है अयानी यह खूबी का खजाना तिसे

खोलि क्यों न दीजे सेर कीजिए सबाब से ।

देर की न ताब जान होत है कबाब बोल

हयाती का आब बोलो मुख महताब से ॥

इनका नाम पृथ्वीसिंह था और दतिया राज्य के निवासी थे ।

यह विक्रमीय अठारहवीं शताब्दि के आरंभ में वर्तमान थे । इन्होंने

सतसई से बड़ी संख्या में रतन हजारा लिखा है,

रसनिधि जो सब दोहों में है । इसके अतिरिक्त भी इनके

दोहे तथा 'अरिल्ल और माँझों' रचे हुए कहे जाते

हैं । यह सुकवि थे और इन्होंने फारसी के इश्किया (प्रेम) भावों तथा

शब्दों का बहुत प्रयोग किया है, जिससे इनकी भाषा में खड़ी बोली

का पुट अच्छा आ गया है । उदाहरण :—

यही मतो ठहराइए अली हमारे जान ।

जान न दीजे कान्ह कों जान दीजिए जान ॥

क्यों बिसराई भाव ते जिय तैं मेरी याद ।

घुँघरुन मिस बज करत है मन मेरो फरियाद ॥

एक कटे, एके पड़े, एक कटन कों तयार ।

अड़े रहे वेते सुमन मीता तेरे द्वार ॥

यह मेड़ता (मारवाड़) के निवासी थे और कृष्णगढ़ के राजा

गर्मासिंह के गुरु थे । इनके वंशज अब तक कृष्णगढ़ में हैं । भाव

पंचाशिका सं० १७३४ में औरंगाबाद में पूर्ण हुई

वृंद थी, जिससे निम्नलिखित उदाहरण लिए गए हैं ।

इनकी वृंद सतसई प्रसिद्ध है, जो सं० १७६१ में

पूर्ण हुई थी । इनके कई अन्य ग्रंथ इनके वंशजों के पास हैं । यह

सम्राट् औरंगजेब की सेवा में रहते थे; इससे बहुत देशाटन भी

किया था । यह सुकवि थे और इनकी सूक्तियाँ विशेष प्रचलित हैं ।
कुछ उदाहरण :—

१. हैं कजरारे सहजही लोचन बड़े बिसाल ।
आँजत होत बिलंब तिहिं अंजन दियो न बाल ॥
२. क्यों न उताल सुचाल चलो वह ? भीँजत भीँजत गेह लौं आई ॥
३. प्रानपती परदेस चले सु भले जु भले कहि बोल निबाहे ।
आये न, औधि बितीत भये मदनागि वियोगिनि के तन दाहे ॥
४. बात अहिल्या की सुनी यातें छुए न पाय ।
कंकन के मनगन परसि जिन योषित है जाय ॥

शेख रँगरेजिन के फेर में ब्राह्मण होते भी उससे निकाह कर
मुसल्मान हो गया । यह औरंगजेब के पुत्र मुअज्जम बहादुरशाह
का आश्रित था, जो सं० १७६९ में प्रायः सत्तर
आलम वर्ष की अवस्था में मरा था । अतः आलम का
रचना-काल इसी समय के लगभग होगा । इसकी
रचनाओं का संग्रह आलमकेलि नाम से प्रकाशित हुआ है । प्रेम
तथा शृंगार रस ही पर इसने कविता की है । शेख भी कविता
करती थी । भाषा दोनों ही की सुव्यवस्थित है । खड़ी बोली में भी
कविता मिलती है । उदाहरण :—

दाने की न पानी की, न आवें सुध खाने की
याँ गली महबूब की अराम खसखाना है ।
रोज से है राजी जो यार की रजाय बीच
नाज की नजर तेज तीर का निशाना है ॥
सूरत चिराग रोशनाई आशनाई बीच
बार बार बरै बलि जैसे परवाना है ।
दिल से दिलासा दीजे हाल के न ख्याल हूँजै
बेखुद फकीर यह आशिक दिवाना है ॥

यह बंदीजन थे और इनका जन्मकाल सं० १७३४ माना जाता है, इनके किसी ग्रंथ का नाम नहीं सुना जाता पर स्फुट पद अनेक विषयों पर पाए जाते हैं। इनकी भाषा में ब्रज तथा अवधी का मिश्रण है और उसमें खड़ी बोली का काफी पुट है। इन्होंने नीति पर भी कविता की है तथा अन्योक्तियाँ भी लिखी हैं। सहज समझने योग्य भाषा में अपने भाव यह सफलता से व्यक्त करते रहे। कुछ उदाहरण :—

१. निज जीभि ओंठ एकत्र करि बाँट सहारे तोलिए ।

बैताल कहे विक्रम सुनो जीभि सँभारे बोलिए ॥

२. अब एक टके विन टकटका लगो रहत नित रात दिन ।

बैताल कहे विक्रम सुनो धिक जीवन जग टके विन ॥

३. हैं ये चारो चंचल भले राजा, पंडित, गज, तुरी ।

बैताल कहे विक्रम सुनो तिरिया चंचल अति बुरी ॥

यह भाँसी निवासी एक मुसल्मान थे पर धामी संप्रदाय के वैष्णव हो गए। इनका समय विक्रमीय अठारहवीं शताब्दि का उत्तरार्द्ध है। इनकी कोई रचना नहीं प्राप्त हुई, केवल कुछ स्फुट पद मिले हैं। इनकी भाषा विशेषतः खड़ी बोली है पर ब्रजभाषा में भी कुछ लिखा है। कविता इनकी साधारण कोटि की है। उदाहरण :—

तेरे महबूब बाँके ने चसम की चोट मारी है ।

खड़ा है सामने ही में जरा नहिं पलक टारी है ॥

जिलाया उन्हींने मुझको जिन्हों यह गाँस मारी है ।

तड़पता कधी न जीता बिछोहा दर्द भारी है ॥

अहमदाबाद-निवासी केशवराम नागर के पुत्र केवलराम

जूनागढ़ के बाबी नवाब के आश्रित थे और उसी की प्रशंसा में बाबी-विलास नामक पुस्तक कविता

में रची थी। इनका जन्म सं० १७५६ में और मृत्यु सं० १८३६ में हुई थी। यह रचना सं० १७८६ की है और इसकी भाषा मिश्रित है। उदाहरण :—

गजबी गरूर गाज दिल्ली ते दलन साज
लूटिबे के काज पंथ गुजर को लीन्हो है ।

बूँदी को बिडारी मारी हाड़ा गाढ़ा जोरन के
और राव राजा ताके बाँह बल छीनो है ॥

प्रबल पठानन सों भिन्यो रन जीतिबे को
भारत सो कीन्हो जुद्ध बीर रस भीनो है ।

नवल नवाब ज्वाँमर्दखाँ बहादुर ने
फकरू नवाब को फकीर करि दीन्हो है ॥

यह गुजराती गौड़ ब्राह्मण मुरलीधर के पुत्र थे। यह मुहम्मद शाह बादशाह के प्रधान मंत्री एतमादुद्दौला कमरुद्दीन खाँ के आश्रित थे, जिससे इन्हें बहुत धन मिला था।

गंजन 'कमरुद्दीन खाँ-हुलास' ग्रंथ इसीके नाम पर बनाया है। भाव, रस तथा पटञ्चतु का अच्छा वर्णन किया है। यह सुकवि थे और राज-वैभव का इन्होंने अच्छा दिग्दर्शन कराया है। भाषा इनकी स्वच्छ होती थी और भाव को व्यक्त करने में भी यह कुशल थे। इनकी भाषा मिश्रित है और खड़ी बोली में भी कविता की है। उदाहरण :—

मोना के महल जरबाफ दर परदा है
हलबी फनूसन में रोसनी चिराग की ।

गुलगुली गिलम गरकआब पग होत
जहाँ बिछी मसनद लालन के दाग की ॥

केती महताब सुखी खचित जवाहिरन
गंजन सुकवि कहै बोरी अनुराग की ।

एतमाददौला कमरुद्दीखाँ की मजलिस

सिसिर में ग्रीष्म बनाई बड़ भाग की ॥

यह आगरा-निवासी खंडेलवाल जैन थे। इनके जैन शतक तथा पार्व पुराण का जैनों में पूजा व पाठ होता है। भूधर विलास

इनकी स्फुट कविताओं का संग्रह है। व्रजभाषा

भूधरदास ही में इनकी कविता अधिक है पर खड़ी बोली में भी कुछ कविता की है। यह महाराज सवाई

जयसिंह के आश्रित भी कुछ दिन तक रहे थे। इनका रचनाकाल अठारहवीं शताब्दि विक्रमीय का अंतिम भाग है। इन्होंने ज्ञान पर लिखा है तथा उपदेश भी दिया है और कविता अच्छी की है। उदाहरण :—

१. जोगी तो जंगम से बड़ा वह लाल कपड़े पहिरता ।

उस रंग से महरम नहीं कपड़े रंगे से क्या हुआ ॥

पोथी के पत्रे बाँचता घर घर कथा कहता फिरा ।

निज ब्रह्म को चीन्हा नहीं ब्राह्मण हुआ तो क्या हुआ ॥

२. आगे जैन ग्रंथन के कर्ता कवींद्र भए

करी देव भाषा महा बुद्धि फल लीनो है ।

अच्छर मितार्ई तथा अरथ गँभीरताई

पद ललितार्ई जहाँ आई रीति तीनो है ॥

काल के प्रभाव तिन ग्रंथन के पाठी अब

दीसत अलप ऐसो आयो दिन हीनो है ।

तातैं यहि समै जोग पढ़ै बाल बुद्धि लोग

पारस पुरान पाठ भाषा बद्ध कीनो है ॥

असनी के प्रसिद्ध ठाकुर ऋषिनाथ के पुत्र और सेवक कवि के पितामह थे। इनका समय विक्रमीय अठारहवीं शताब्दि का अंत है। यह ब्रह्म भट्ट थे और बड़े प्रेमी जीव थे। सजीवता इनमें कूट

कूट कर भरी थी। अपनी नायिकाओं से प्रेमो-
 ठाकुर न्माद भरी हुई ऐसी स्पष्ट बातें कहलाई हैं, कि
 जिनका प्रत्युत्तर देना कठिन हो गया है। ब्रजभाषा
 पर इनका अच्छा अधिकार था और उसी में कविता की भी है।
 एक पद में खड़ी बोली का काफी पुट है जिसे इन्होंने हिम्मत बहा-
 दुर के सामने पड़ा था, जब वह इनसे रुष्ट हो गया था। उदाहरण :-

सेवक सिपाही हम उन राजपूतन के
 दान युद्ध जुरिबे में नेक जे न मुरके।
 नीति देनवार हैं मही के महिपालन को
 कवि उन ही के जे सनेही साँचे उर के ॥
 'ठाकुर' कहत हम बैरी बेवकूफन के
 जालिम दमाद हैं अदानिया ससुर के।
 चोजन के चोर रस मौजन के पातसाह
 ठाकुर कहावत पै चाकर चतुर के ॥

पद्माकर तैलंग ब्राह्मण मोहनलाल भट्ट के पुत्र थे और सं०
 १८१० में बाँदा में इनका जन्म हुआ। कानपुर में सं० १८९० में
 इनकी मृत्यु हुई। यह कई स्थानों में कई आश्रय-
 पद्माकर दाताओं के यहाँ रहे। यह अच्छे विद्वान् तथा
 कवि थे। पद्माभरण, जगद्विनोद, हिम्मत बहादुर
 बिरुदावली आदि कई ग्रंथ लिखे हैं। इनकी भाषा में ओज तथा
 प्रसादगुण विशेष है। कल्पना शक्ति, भाषाधिकार तथा भावुकता
 सभी थी। अनुप्रासादि पर भी इनका प्रेम था। यह मुख्यतः ब्रज-
 भाषा के कवि हैं। फारसी अरबी के शब्दों का भी प्रयोग किया
 है और यत्र तत्र खड़ी बोली का। एक कवित्त देखिए :-

- गुलगुली गिलमें गलीचा है गुणीजन हैं
 चाँदनी है चिक है चिरागन की माला है।

कहे 'पद्माकर' त्यों गजक गिजा है सजी
 सेज है सुराही है सुरा है और प्याला है ॥
 सिसिर के पाला को न व्यापत कसाला तिन्हें
 जिनके अधीन एते उदित मसाला है ।

तान तुकताला है विनोद के रसाला है
 सुबाला है, दुशाला है बिसाला चित्रसाला है ॥

२. हिम्मत बहादुर भूप है । सुभ संभु रूप अनूप है ॥

दिल दान बीर दयाल है । अरिवर निकर का काल है ॥

यह मथुरा-निवासी बंदीजन थे । इनका रचनाकाल प्रायः सं०
 १८७५ से सं० १९२० तक है और इनकी रचनाएँ आठ दस के
 लगभग हैं, जिनमें यमुना लहरी, रसिकानंद,
 ग्वाल रसरंग, दूषणदर्पण आदि प्राप्त हैं । काव्यभाषा
 के सिवा पूर्वी हिंदी, खड़ी बोली आदि में भी
 इनकी कुछ रचनाएँ मिलती हैं । भाषा पर इनका अधिकार था और
 अपने भावों को खूब व्यक्त भी कर सके हैं । उदाहरण :—

दिया है खुदा ने खूब खुशी करो ग्वाल कवि
 खाओ पियो देओ लेओ यही रह जाना है ।

राजा राव उमराव केते बादशाह भए
 कहाँ ते कहाँ को गए लग्यो न ठिकाना है ॥

ऐसी जिदगी के भरोसे पै गुमान ऐसा
 देस देस घूम घूम मन बहलाना है ।

आए परवाना पर चले न बहाना यहाँ
 नेकी कर जाना फेर आना है न जाना है ॥

यह काशीराज बलवंतसिंह के आश्रित सुकवि थे । यह बंदी-
 जन थे और इनके दो पुत्र गोपीनाथ और गोकुलनाथ भी सुकवि
 थे । गोपीनाथ के शिष्य मणिदेव थे । अंतिम तीनों ने समय

महाभारत का अनेक छंदों में पद्यानुवाद किया है।
 रघुनाथ जो चार भागों में प्रकाशित हुआ है। रघुनाथ के
 चार ग्रंथ—रसिक मोहन, काव्य कलाधर आदि हैं,
 जो सं० १७९०-१८१० के बीच लिखे गए हैं। इस्क महोत्सव
 ग्रंथ में खड़ी बोली रचना है और अन्य में साहित्यिक व्रजभाषा
 की। उदाहरण:—

आप दरियाव पास नदियों के जाना नहीं
 दरियाव पास नदी होयगी सो धावेगी।
 दरखत बेलि-आसरे को कभी राखत ना
 दरखत ही के आसरे को बेलि पावेगी ॥
 लायक हमारे जो था कहना सो कहा मैंने
 'रघुनाथ' मेरी मति न्याव ही को गावेगी।
 वह मुहताज आपकी है आप उसके न
 आप कैसे चलो वह आप पास आवेगी ॥

यह फतेहपुर जिला के अंतर्गत मुअज्जमाबाद में सं० १८५५ में
 उत्पन्न हुए थे। इनके पिता का नाम मनीराम था और गुरु का
 करनेश महापात्र। यह छ वर्ष तक जोधपुर नरेश
 चंद्रशेखर मानसिंह के यहाँ रहे और इसके बाद अंत तक
 पटियाला नरेश के आश्रित रहे। इन्होंने हम्मीर
 हठ, रसिक विनोद, नखशिख आदि नौ ग्रंथों की रचना की है।
 इनकी मृत्यु सं० १९३२ में हुई थी। यह सुकवि थे और शृंगार तथा
 वीर रस दोनों की ही अच्छी कविता की है। वर्णनात्मक काव्य रचने
 में भी यह कुशल थे और युद्ध आदि का ओज पूर्ण वर्णन किया है।
 इनकी काव्य भाषा में कहीं कहीं खड़ी बोली का पुट है। उदाहरण:—

१. भागे मीरजादे पीरजादे और अमीरजादे

भागे खानजादे प्राण मरत बचाय के ॥

२. कोह भरे काटे रनरंग भूमि अंग परे
 काहू की न मानी कही बैर बीज बोए तब ।
 राज राजधानी साज संपति समाज लाज
 सेखर मुहाग भाग राग आज खोए सब ॥
 कंपित शरीर कहे रानी लंकनायक की
 नैनन के नीर ते शरीर देति धोए जब ।
 दैकै दुख दूनो कैके लंकगढ़ सूनो
 हाय मेरो सुख लँके महानींद बस सोए अब ॥

यह ढाकोर जी (गुजरात) के एक संत थे । इनका कविता-
 कल्याण काल सं० १८४५ कहा जाता है । इन्होंने छंद
 भास्कर और रसचंद्र दो ग्रंथ बनाए हैं । उदाहरण:—

पाजी बाजी झूठ तज लोलुप लोल स्वभाव ।
 हिंदूपति सो मर गए नाना माधवराव ॥
 नाना माधवराव मुए जयसिंह सवाई ।
 मिरजा मुनिव नवाब मौत तिनकूँ भी आई ॥
 कहत दास कल्याण भयो काया में राजी ।
 भज भज श्रीभगवान झूठ तज पाजी बाजी ॥
 यह बाराबंकी-निवासी ब्राह्मण थे । इन्होंने आठ नौ काव्य-
 चेमकर्ण ग्रंथ रचे हैं । यह सुकवि हो गये हैं और इनका समय
 उन्नीसवीं शताब्दि का उत्तरार्द्ध है । उदाहरण :—

आई है बरात कोसलेश की विदेहपुर
 बस्ती के बालक तुरत उठि धाए हैं ।
 देख आए राज के समाज की विभूति भूति
 सेना चतुरंग रंग रंग के सुहाए हैं ॥
 पूछे पितु मातु आए भूप-सुत काहे पर
 छेमकरन सोई बात वंदि कै बताए हैं ।

दंत उजियारे भारे अरिन के फंद फारे

तापै दसरत्थ के दुलारे चढ़ आए हैं ॥

इनका जन्म सं० १८४८ में शाहाबाद में धर्मचंद जैन के यहाँ

हुआ था। यह सं० १८६० में काशी में आ बसे

बृंदावन

और सं० १९१५ के लगभग इनकी मृत्यु हुई।

इन्होंने छ सात ग्रंथ रचे हैं। यह सुकवि थे और विशेषतः ब्रजभाषा ही में इन्होंने लिखा है। कुछ पद खड़ी बोली में मिलते हैं। उदाहरण:—

बेजान में गुनाह मुझसे बन गया सही।

ककरी के चोर को कटार मारिए नहीं ॥

आनंदकंद श्री जिनंद देव है तुही।

जस बेद औ पुरान में परमान है यही ॥

अष्टम प्रकरण

रीतिकाल के अन्य कवि

गारेलाल पुरोहित उपनाम लाल कवि बृंदेलखंड के रहनेवाले थे। इन्होंने पन्ना राज्य के संस्थापक छत्रसाल का चरित्र छत्रप्रकाश

में दोहे चौपाइयों में व्योरेवार लिखा है। काव्य की

लाल

दृष्टि से भी ग्रंथ बहुत अच्छा बन पड़ा है। वर्णन-

शैली, स्वाभाविकता सभी उच्च कोटि की है तथा

देशभक्त वीर की जीवनी होने से देशदशा का भी वर्णन है। एक

और ग्रंथ विष्णुविलास भी इनका कहा जाता है। इनकी भाषा में

खड़ी बोली का काफी मिश्रण है और फारसी अरबी शब्द भी खूब

प्रयुक्त हुए हैं, जैसे—मुहिम, फरमान, ताबीन मनसब, मदत आदि।

उदाहरण:—

पंचम यदपि पुत्र बहु पाए । पै कुल तिलक बुँदेला गाये ॥
बीर समर भारी करवालै । जीती कारी पीरी ढालै ॥
पुत्र प्रतापरुद्र उपजाए । प्रथम भारतीचंद्र कहाए ॥

रुद्रप्रताप नरिद के बिदित बारहो नंद ।

थपे ओढछे नगर में बड़े भारती चंद ॥

अहमद का जन्म सं० १६६० वि० में होना कहा जाता है,
जिससे इसका रचनाकाल सं० १७०० के आसपास आता है ।

इसकी स्फुट रचनाएँ मिलती हैं पर इधर इसका
अहमद एक कामशास्त्र विषयक ग्रंथ 'हिंदी कोकसार'
नामक मिला है, जिसका लिपिकाल सं० १८६२
है । इसके विषय में विशेष ज्ञात नहीं हो सका है । उदाहरण :—

१. 'अहमद' अपने चोर को सब कोइ डारत मार ।

चोर मिले मो चित्त को तन मन ढाहूँ वार ॥

२. 'अहमद' या मन सदन में हरि आवे केहि बाट ।

बिकट जुरे जौ लौं निपट खुले न कपट-कपाट ॥

३. ' ' बाल रूप लज्जा की खान ।

खेलैं खेल खिलौना आन ॥

बेनी बंदीजन रायबरेली के निवासी थे और अवध के नवाब
के वजीर टिकैतराय के आश्रय में रहते थे । 'टिकैतराय प्रकाश' में

अलंकारों का वर्णन है, जो सं० १८४९ की रचना
बेनी है । रसविलास सं० १८७४ वि० में बना है ।

भँडौओं का संग्रह तीसरा ग्रंथ है, जो प्रायः खड़ी
बोली में है । यह अच्छे कवि थे और इनकी हास्यपूर्ण कविता
अनूठी है । किसी कंजूस धनाढ्य के यहाँ विवाह हुआ और वह
बहुत कम व्यय करके भी किस प्रकार व्यथित हो रहा है, उसका
वर्णन इन्हीं से सुनिए :—

आध पाव तेल में तयारी भई रोशनी की,
 आध पाव रूई में पोशाक भई बर की ।
 आध पाव छाले के गिनौरा दियो भाइन को,
 माँगि-माँगि लायो है पराई चीज घर की ॥
 आधी-आधी जोरि 'बेनी' कवि की बिदाई कीनी,
 ब्याहि आयो जब तें न बोले बात थिर की ।
 देखि-देखि कागद तबीयत सुमाँदी भई,
 सादी काह भई बरवादी भई घर की ॥
 मीर अब्दुल वाहिद 'जौकी' बिलग्राम का निवासी था । इसके
 'शकरिस्ताने ख्याल' में इसकी हिंदी कविता भी संगृहीत है । इसमें
 उर्दू की जिंदादिली अर्थात् सजीवता काफी है
 जौकी और हास्यरस का अच्छा पुट है । इसकी मृत्यु
 सन् ११३४ हिजरी (सं० १७७८) में हुई थी । काल्पी के वंश
 ओले पर इसका एक कवित्त नीचे दिया जाता है :—
 मीठे हैं निपट ही सोहाय भावें नैनन को
 जाके रस चाखन को सवैं ललचात हैं ।
 फीके न जरा भी सब खाय के कहाँ लों कहाँ
 हीरा की सी जोति देख फूले न समात हैं ॥
 खाँब के कबीले मधु अति ही पीवत हैंसि
 रसना के प्यारे बीच ओठन बिलात हैं ।
 ऐसे सुकुमार हैं ये ओले यारो कालपी के
 दीठि के लगे ते देखो दूटे ही तो जात हैं ॥
 इनका जन्म कायस्थ वंश में हुआ था और यह दिल्ली के मुह-
 म्मदशाह के मीर मुंशी थे । सं० १७९६ में पचास
 वर्ष की अवस्था में नादिरशाही के समय बृंदावन
 में मारे गए, जहाँ यह अपनी सुजान नामक

वेश्या की बेवफाई से विरक्त हो जाकर रहने लगे थे। वियोग शृंगार इनकी कविता में विशेष है और विरहोक्तियाँ गंभीर तथा अत्यंत मर्मस्पर्शी हैं। ब्रजभाषा में इनके कई संग्रह-ग्रंथ प्राप्त हैं। 'विरह-लीला' फारसी के बहरो में हैं, जिसमें शुद्ध हिंदी का भी काफी अंश है। उदाहरण:—

सलोने श्याम प्यारे क्यों न आओ ।
 दरस प्यारी मरें तिनको जिआओ ॥
 कहाँ हो जू कहाँ हो जू कहाँ हो ।
 लगे ये प्राण तुमसों हैं जहाँ हो ॥

यह प्रतापगढ़ के राजा पृथ्वीपतिसिंह के भाई हिंदूपतिसिंह के आश्रित कवि थे, जिनकी प्रशंसा में इन्होंने कुछ कविता की है। राजा के स्थान पर बादशाह की पदवी से संबोधित किया है। इनका समय सं० १८०० के लगभग है। इनकी एक रचना नखशिख सुनी जाती है और किसी अन्य रचना का अब तक पता नहीं है। उदाहरण:—

महताब दिया है खुदा ने खुसी करो महताब खूब
 खाओ पीओ देओ लेओ यही रह जाना है ।
 पातसाह आदिल अमीर उमराव भए
 कूच कर गए कुछ लगा न ठिकाना है ॥
 देओ लेओ सबसे निरदंगी की राह चलो
 जिदगी जरा सी तामें दिल बहलाना है ।
 आवैं परवाना फिर बनै न बहाना जग
 नेकी कर जाना फेर आना है न जाना है ॥

यह माथुर चौबे तथा भरतपुर नरेश सूरजमल के आश्रित थे। सूरजमल के दूसरे नाम सुजानसिंह पर सुजान चरित सं० १८१० के लगभग तैयार किया, जो अपूर्ण रह गया है। इसमें

उक्त नरेश के युद्धों का आँखों देखा वर्णन है अतः
 सूदन इसका ऐतिहासिक महत्व भी कम नहीं है। इसकी
 भाषा अत्यंत ओजपूर्ण है तथा काव्यकला की
 दृष्टि से भी यह ग्रंथ महत्वपूर्ण है। भाषा में मेल भी है और शब्दों
 का तोड़ मरोड़ भी है। अनेक प्रकार के छंदों के प्रयोग से यह
 ग्रंथ मनोरंजक भी हो गया है। उदाहरण के लिए यहाँ खड़ी बोली
 मिश्रित कविता ही दी जाती है:—

१. इस डाढ़ी की लाज कुँवर बहादुर है तुमैं ।

है यह काज दराज होवेगा तुझ हाथ सैं ॥

२. भाई सूरजमल्ल सैं कहना यह, भाई ।

हम तुम बंदे साह के बुज्जे न लराई ॥

जो तुम संग वजीर के तौ भी नहिं बुज्जे ।

जमींदार सों आइकै जमींदार न जुज्जे ॥

३. मुझै आया जाने जाया माने तो ठिकाने रहि

फजर की गजर बजाऊँ तेरे पास में ।

४. जूझत हकीम खाँ अमीरन के धकसी

आँ बकसी के जिय में परी है धकपकसी ॥

कृष्णगढ़-नरेश सावंतसिंह का उपनाम नागरीदास था, जिनका
 जन्म सं० १७५६ में हुआ था। यह राठौड़ क्षत्रिय थे और वल्लभ-
 संप्रदाय के वैष्णव थे। यह शूर-वीर तथा साहसी
 नागरीदाम पुरुष थे और वैसे ही श्रीकृष्ण के परम भक्त भी
 हुए। घरेलू झगड़ों से विरक्त हो तथा राज्य
 सं० १८१४ में पुत्र को दे यह ब्रजवासी बन बैठे। इन्होंने बहुत
 सी रचनाओं का प्रणयन किया है, जो नागर-समुच्चय नाम से
 प्रकाशित भी हो चुकी हैं। इनका रचनाकाल सं० १७७५-१८२०
 तक है। इनकी कविता भक्तिपूर्ण, सरस तथा हृदयस्पर्शी होती

था। इनकी भाषा ब्रज ही की थी पर कहीं कहीं खड़ी बोली में भी कविता की है। उदाहरण:—

इश्क चमन महबूब का वहाँ न जावै कोय ।
जावे सो जीवे नहीं जिये सो बौरा होय ॥
आया इश्क लपेट में लागी चश्म लपेट ।
सोई आया खलक में और भरें सब पेट ॥
रस उरभी निसि श्याम सों आरस उरभे बैन ।
तेरी उरभी अलक में मेरे उरभे नैन ॥
नींद भरे तन लटपटे छके दगन को डेर ।
नागरिया के उर बसो कुंज भुरहरी बेर ॥

यह स्वामी हरिदास जी के संप्रदाय के अनुयायी थे। यह विक्रम की उन्नीसवीं शताब्दि के आरंभ में हुए थे और कहा जाता है कि शाहाबाद (हरदोई) के निवासी थे। इनकी रचना 'गुलजार चमन' चार भागों में है और अब पूरी प्राप्त है। आज तथा काव्य-चमत्कार के साथ भाषा का निर्वाह अच्छा हुआ है। फारसी तथा संस्कृत के ज्ञाता थे, जिससे इनकी भाषा में दोनों का मेल है और ब्रजभाषा का भी पुट है। खड़ी बोली हिंदी ही इनकी कविता की भाषा है और हिंदी ही के छंद मुख्यतः सबैयों का प्रयोग किया है। इनके कुछ उदाहरण:—

१. मुख शरद-चंद्र पर श्रम सीकर जगमगें नखत गन जोती से ।
कै दल गुलाब पर शबनम के हैं कनिका रूप उदोती से ॥
हीरे कनियाँ मंद लगे है सुधा-किरण के गोती से ।
आया है मदन आरती को धर हेम थार पर मोती से ॥
२. हम खूब तरह से जाने हैं जैसा आनंद का कंद किया ।
सब रूप सील गुन तेजपुंज तेरे ही तन में बंद किया ॥

तुझ हुस्न प्रभा की बाकी ले फिर बिधि ने यही प्रबंध किया ।

चंपक दल सोनजुही नरगीस चामीकर चपला चंद किया ॥

यह हरिदास जी के टट्टी संप्रदाय के एक भक्त कवि हो गए हैं, जिनका रचनाकाल उन्नीसवीं शताब्दि का पूर्वार्द्ध है। इनकी

रचनाएँ ललित प्रकाश, सरस मंजावली और सहचरिशरण गुरु-प्रणालिका मिली हैं। यह श्री राधाकृष्ण के

परम भक्त थे और उन्हींके लीलावर्णन में सदा मग्न रहते थे। काव्यकला के यह मर्मज्ञ थे और कवित्वशक्ति भी इनमें पूर्ण थी। इनकी भाषा पर पंजाबी का बराबर पुट है और इन्होंने ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली दोनों में कविता की है। खड़ी बोली की इनकी कविता में सरसता कम नहीं हो पाई है और साथ ही ओज की मात्रा बहुत बढ़ गई है। दो उदाहरण यहाँ दिए जाते हैं :—

१. हरदम याद किया कर हरि को दरद निदान करेगा ।

मेरा कहा न खाली ऐ, दिल आनंदकंद करेगा ॥

ऐसा नहीं जहाँ बिच कोई लंगर लोह लरेगा ।

‘सहचरिसरन’ सेर दा बच्चा क्या गजराज करेगा ॥

२. खाली है न खुसाली रैं मन उर अनुराग अली का ।

बिमल महल दा रंग लालची भावुक भक्ति भली का ॥

‘सहचरिसरन’ रसिक रसमाला कुंजर कुंजगली का ।

आया नहीं न आवै छल बिच आसिक छैल छली का ॥

यह ग्वालियर के राणाजी राव के पुत्र थे और जनका जी के मारे जाने पर सं० १८१८ में राजा हुए। इन्होंने सं० १८२१ में

मालवा विजय किया, सं० १८२६ में दिल्ली की

महादजी शिंदे सेना को परास्त किया और दो वर्ष बाद शाह-आलम को गद्दी पर बैठाया। इनसे और अंग्रेजों

से दो बार युद्ध हुआ पर अंत में संधि हो गई। सं० १८३९ में इन्होंने गोहद विजय किया और दिल्ली पर अपना पूर्ण प्रभाव स्थापित किया। छ वर्ष बाद इन्होंने गुलामकादिर रुहेला को मारा, जिसने शाह-आलम को अंधा कर दिया था। इनकी सं० १८५१ में मृत्यु हुई। यह परम वैष्णव थे। इन्होंने विनय आदि के बहुत से पद मराठी तथा हिंदी में बनाए हैं, जो माधव विलास के नाम से छपे हैं। इन्होंने ब्रज भाषा में भी दोहे चौपाई लिखे हैं। उदाहरण :—

१. यह नूर यों खिला है, जहूर सों भरा है ।
देखो अजब तमासा 'माधो' ये सुख लिया है ॥
२. हृदय-कमल में आत्मा 'माधव' सहज ही आवे हाथ मेरे ॥
३. लाल मैं गारी देऊंगी ।

× × × ×

मन्यासी सँग गई सुभद्रा तेरी सलाह सों कहत न रहौंगी ॥

तेरे सामुहै तूही 'माधो' गुनवन नेक खूब लरौंगी ॥

यह दक्षिण के नामसंप्रदाय के प्रसिद्ध महाराष्ट्र साधु थे। इनका जन्म सं० १७७१ में हुआ था। यह यात्रा करते-करते गौहरोबानाथ हुए उत्तरी भारत में भी आए थे और मथुरा जी में महादजी सिंधिया से इनका साक्षात्कार हुआ था। महादजी ने गीता पर अपनी टीका 'माधवदासी' दिखलाई, जिसे ज्ञानेश्वरी की चाल पर मराठी में लिखा था। निस्पृह साधु ने इनकी साधारण टीका को देखकर स्पष्ट कह दिया कि 'ज्ञानदेवी सी माता को छोड़ इस दासी के कौन मुँह लगे।' महादजी के क्षुब्ध होने पर इन्होंने निम्नलिखित हिंदी पद पढ़कर उन्हें फटकारा था :—

अवधूत नहीं गरज तेरी हम बेपरवाह फकीरी ।

तू है राजा हम हैं जोगी प्रथक पंथ का न्यारा ॥

छत्रपती सब तेरे सरीखे पाँवन परें हमारा ।
 फौज बंद तुम भोलि बंद हम चार खूँट जागीरी ॥
 तीन काल में दुवाय फिरती घर घर अलख पुकारी ॥
 सोना चाँदी हमें न चहिए अलख भुवन के बासी ।
 महल मुलुक सब.....बराबर हम गुरु नाम उपासी ॥
 तैं वी डूबा हमें डुबावै तेरा हम क्या लीया ।
 कहैं 'सोहिरो' सुनो महादजी प्रकाश जोग कमाया ॥

इंदौर नरेश महाराज जसवंतराव होल्कर के गुरु महीपतिनाथ
 महीपतिनाथ थे और इन्होंने मध्य भारत तथा राजपुताने में
 धर्मोपदेश करते हुए भ्रमण भी किया था । ग्वाल-
 अर में इनका मठ अब तक वर्तमान है । इनकी मृत्यु सं० १८८० में
 हुई थी । इनकी हिंदी रचना का नमूना नीचे दिया जाता है :—

धीरे धीरे झलो जी नंदलाल ।

वर्षा ऋतु सावन का महीना गावो राग मल्हार ।

तुम सुकुमार कुमार कन्हैया ऊँची कदम की डार ॥

पवन छूटे बिजली चमके उड़त काँधे रुमाल ।

नरहरि महीपति गावें नाचें सब सँग ग्वाल गोपाल ॥

यह महादजी सींधिया के भाई के पौत्र थे और उनके निस्सं-
 दोजतराव सींधिया तान होने से सं० १८५१ में तेरह वर्ष की अवस्था
 में यह गद्दी पर बैठे । सं० १८६० में अंग्रेजों से
 कई युद्धों में परास्त होकर इन्होंने संधि कर ली । सं० १८८४ में
 इनकी मृत्यु हुई । पद्माकर, शिव आदि कवियों का इन्होंने बहुत
 सत्कार किया था । इन्होंने भी कुछ कविता की है । उदाहरण :—

चरण गहे की लाज दुलारो ।

तुम तो दीनानाथ कृपा करो भक्तकाज उधारो ।

दौलत प्रभु के चरण गहे हो दीनबंधु तुम्हारो ॥

श्री ज्ञानसार जी जैन यति का जन्म सं० १८०१ में बीकानेर के जैगलवास स्थान में हुआ था और वहीं सं० १८८९ में इनकी मृत्यु हुई थी। इन्होंने बहुत यात्रा की थी और इनके बहुत शानसार से शिष्य थे। इन्होंने अपना संक्षिप्त आत्म परिचय भी एक पद में दिया है। इनका आत्म-साधन तथा तत्त्व ज्ञान के सिवा वैद्यक और शिल्प कला में भी अच्छा गम था तथा लेखन-कला में भी दक्ष थे। इन्होंने कई पूर्ववर्ती कवियों की निर्भीक सत्समालोचना भी की है। इन्होंने हिंदी में कई ग्रंथ गद्य तथा पद्य दोनों में लिखे हैं, जिनमें पूरब देश वर्णन, कामोद्दीपन मालापिंगल, चंद चौपाई समालोचना आदि प्राप्त हैं। इनके सिवा राजस्थानी में भी बहुत सी रचनाएँ की हैं। इनकी भाषा में परंपरा की काव्य भाषा तथा खड़ी बोली दोनों ही हैं।

उदाहरण :—

१. साधो भाई निहचै खेल अलेखा । सोहं निहचे खेला ।
ना हमरे कुल जात न पाँता, एह मेरा आचारा ।
मदिरा मांस विवर्जित जो कुल उन घर में पैसारा ॥
२. ना कवि की निंदा करी ना कछु राखी कान ।
कवि कृत कविता शास्त्र की सम्मति लिखी सयान ॥

पंडित अयोध्याप्रसाद वाजपेयी 'औध' रायबरैली, अवध के निवासी ने सं० १८१४ में अवध-सिकार नामक काव्य ग्रंथ लिखा है। इनके गुरुओं के नाम गदाधर जी द्विवेदी तथा जवाहिर मिश्र थे। यह अयोध्या के इतने प्रेमी थे कि मृत्यु के समय गंगा जी के किनारे ले जाने से क्रुद्ध हो गए और अयोध्या चले गए, जहाँ इनका देहान्त हुआ। उक्त ग्रंथ में फारसी मिश्रित खड़ी बोली कविता भी काफी है, जो कई छंदों में है। कविता अच्छी हुई है। उदाहरण :—

१. नीलमणि अंग में बसन पीत रंग में
सुबंधु सखा संग में उमंग चौगान की ।
२. मकसद यह मेरा कहनेका एकदम हिए में रहने का ।
इकरार यह निरबहने का रघुनंद खुद कद्रदान हैं ॥
३. औध प्रकाश सुपास मिलाय दिलाय की मौज जो दाता दिला दे ।
शेष के भैया, महेश अजीज, अजी अवधेश के साहबजादे ॥

दयाराम कवि का जन्म बड़ौदा के अंतर्गत उभोई में भाद्रपद शुक्ल ११ सं० १८३३ को हुआ था । पिता का नाम प्रभुराम भट्ट और माता का महालक्ष्मी उर्फ राजकुंवर बाई था । ये दयाराम साठोदरा नागर तथा वैष्णव भक्त थे । इस कारण दयाराम भी भक्त हुए और सत्संग से भक्ति-भावना बढ़ती ही गई । यह भजन गाने में भी पटु थे और कवि-हृदय इनका था ही । ये कहते हैं कि 'कहिये को काव्य पै कवि को कलेजा है' । इन्होंने सारे भारत में तीर्थयात्रा किया था और उन पर कविताएँ भी लिखी हैं । काशी पर 'काशी की लावणी' वर्णनात्मक काव्य हिंदी में है, जिसमें ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली दोनों का मिश्रण है । यह गुजराती के कवि थे पर भारत-भ्रमण से इनकी दृष्टि सार्वदेशिक हो गई और इनके उद्गार राष्ट्रभाषा हिंदी में काफी निकले, जो इन्हें भारत-व्यापी भाषा ज्ञात हुई । इन्होंने दोहों, छंदों के सिवा गेय पद भी लिखे, चित्रकाव्य रचे तथा रसशास्त्र पर भी कविता की । यह अत्यंत भावुक भक्त कवि थे और गुजराती के कवियों में तो इनका स्थान बहुत ऊँचा है । इनकी हिंदी की मुख्य रचना सतसैया, वस्तुवृंद दीपिका तथा श्रीमद्भागवतानुक्रमणिका हैं । इनकी मृत्यु माघ कृ० ५ सं० १९०९ को हुई । इनकी कविता के कुछ उदाहरण दिए जाते हैं :—

१. काशीपुरी की अति सुंदर सोभा कौन सके गाई ।

मोक्षदेनि भवभयहरणी शिव निज कर बनाई ॥

बनारसी सप्तपुरी नायक भूतल तैं न्यारी ।

घोष सीस पर नहिं शंकर ने त्रिसूल पर धारी ॥

२. स्वारथ बिन हू श्रम करे और बिगारे काम ।

ऐसे जग में दोय हैं मूसा और गुलाम ॥

लखनऊ के ऐश्वर्य संपन्न वैश्य शाह घराने के कुंदनलाल तथा
कुंदनलाल वयः प्राप्त होने पर विरक्ति के कारण वृंदावन में रहने

लगे और वहीं अपने पिता के नाम पर बिहारी-
ललित किशोरी और ललित माधुरी लाल जी का बड़ा मंदिर संगमरमर का बनवाया

जो सं० १८७९ में तैयार हुआ । इन दोनों भाइयों
ने क्रमशः ललित किशोरी और ललित माधुरी उपनाम रखे और
ब्रजभाषा तथा शुद्ध हिंदी में भक्ति और प्रेम-संबंधी बहुत से पद
बनाए, जिनका संग्रह लघुरस कलिका नाम से दो बड़े बड़े भागों
में प्रकाशित हुआ है । उदाहरण :—

१. इस रस के पावे चसके जेहि लोक लाज खोई ।

मैं बेंचती हूँ मन के माखन को लेवे कोई ॥

२. देखो री यह नंद को लाला बरछी मारे जाता है ।

३. जंगल में हम रहते हैं दिल बस्ती से घबराता है ।

मानुष गंध न भाती है मृग मरकट संग सुहाता है ॥

चाकगरेबाँ करके दमदम आहें भरना आता है ।

‘ललित किशोरी’ इश्क रैन दिन ये सब खेल खिलाता है ॥

यह बिलग्राम निवासी थे और अपना उपनाम रसनायक रखा

था । इनका समय विक्रमीय उन्नीसवीं शताब्दि

त।लिब अली

का आरंभ है । इनके स्फुट छंद मिलते हैं । एक

उदाहरण यहाँ दिया जाता है :—

जल को न घट भरे मग को न पग धरे,

घर को न कछु करे बैठी भरे साँसु री ।
 एक सुनि लोट गई एक लोट पोट भई,
 एकन के दृग ते निकस आये आँसु री ॥
 कहै 'रसनायक' सो ब्रज बनितान बधि,
 बधिक कहाय हाय होय कुल हाँसु री ।
 करिये उपाय वास अरिये कटाय नाहीं,
 उपजैगो बास नाहीं बाजी फेर बाँसुरी ॥

जयपुर नरेश प्रतापसिंह का जन्म सं० १८२१ में और देहा-
 वसान सं० १८६० वि० में हुआ था । इन्होंने 'ब्रजनिधि' उपनाम से
 कई काव्य ग्रंथ रचे हैं, जिनका एक संग्रह प्रका-
 शित भी हो चुका है । प्रीतिलता, सनेह संग्राम,
 फाग रंग, प्रेमपंथ आदि इनकी सत्रह रचनाएँ हैं
 और स्फुट पदों के भी कई संग्रह हैं, जिनमें प्रायः तीस कवियों
 के गेय पद भी उद्धृत किए हैं । इनकी रचनाओं में ब्रजभाषा,
 राजस्थानी तथा खड़ी बोली हिंदी का प्राधान्य है और कहीं कहीं
 पंजाबी का भी पुट है । रेखता संग्रह में प्रायः दो सौ पद हैं । यह
 भक्त तथा भावुक कवि थे और राधाकृष्ण की लीला ही पर विशेष
 लिखा है । उदाहरण :—

१. बाल बिथुरे सुथरे पैरों पै जा पड़े हैं ।
 मानों अगर सों लपटे झपटे भुजंग अड़े हैं ॥
 अंबर अतर सों तर हैं जिनसे सुमन झड़े हैं ।
 मखतूल के छमे हैं जिय में रहे अड़े हैं ॥
२. सरद की रैन जब आई, मधुर बंसी की धुनि छाई ।
 रसीली तान जब गाई, सुनत ब्रजबाल अकुलाई ॥
 बिथा मन मैन की जागी, सबै सुधि देह की भागी ।
 दिये में अजक सी लागी, पिया के प्रेम में पागी ॥

यह जोधपुर के निवासी फतहसिंह के पुत्र थे। यह महाराज मानसिंह के आश्रित कवि थे और इनका उस दरबार में बहुत मान था। यह संस्कृत, डिंगल, पिंगल तथा फारसी भाषाओं के ज्ञाता थे। इनकी कविता में डिंगल ही प्रधान भाषा है पर कहीं कहीं खड़ी बोली का भी पुट दिया है। इनका समय विक्रमीय उन्नीसवीं शताब्दि का उत्तरार्द्ध है। इन्होंने बहुत सी छोटी छोटी रचनाएँ की हैं। उदाहरण :—

बौकीदास

१. मन में फेर धणीरी माला पकड़ै नँह जमदूत पलो ।

मिलै नहीं बकणा सँ माया भाया कम बोलणो भलो ॥

२. जग में नर हलका जिकै बोलै हलका बोल ॥

३. पता जगा रो बिरद पत, बीरम रो जैमाल ।

केलपुरी कमधज दुहँ, हुआ चीतगढ़ ढाल ॥

यह अहमदाबाद के नागर ब्राह्मण थे पर इनके पूर्वज काशी में आ बसे थे। त्रिपाठी विश्वामित्र जी के पुत्र वत्सराज जी ही का उपनाम प्रेमरंग था। इनके दो पुत्र गोविंदराम

प्रेमरंग

तथा मंसाराम थे। इनके एक शिष्य सुरदेव पंड्या के पुत्र इंद्रदेव उपनाम बाबूजी भी अहमदा

बाद के नागर ब्राह्मण थे। इन सुरदेव तथा मंसाराम ने अपने गुरु प्रेमरंग जी के नाम पर श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण के अनुसार सात रचनाएँ तैयार कीं। इनमें आभास रामायण, श्लोकावली, गरबावली, पदावली, कवितावली, एक पदी आदि हैं। स्फुट पदों के एक संग्रह की गुटका नाम से हस्तलिखित प्रति देखने में आई थी। रागकल्पद्रुम में इनके सैकड़ों पद छपे हैं। इन रचनाओं में गुजराती, पंजाबी के सिवा 'इंद्रप्रस्थ के बोल' खड़ी बोली हिंदी ही का प्राधान्य है। इनका रचनाकाल प्रायः सं० १८५०-८० है। ये सभी रचनाएँ भोय हैं।

उक्त दोनों ही सज्जन संस्कृत के विद्वान् तथा सुकवि थे।

कवित्व शक्ति भी अच्छी थी, जिससे वे इतनी अधिक रचना कर सके थे। उदाहरण :—

१. कहाँ कैसे जावें कहति हँस बृद्धा कपिन सों ।

मुँदाओ आँखों को सबन हम काढ़ें बिपिन सों ॥

ढँपी आँखें काठे मलयगिरि देखा उदधि पैं ।

बड़ी चिता व्यापी सब मकर बीता जलधि पैं ॥

यह सागर जिले के अंतर्गत रहली ग्राम में पैदा हुए थे। यह रँगरेज थे और इनकी मित्रता एक ब्राह्मण से थी। कहते हैं कि इन्होंने अपने मित्र को चिता पर से जिलाकर कारे खाँ उठा दिया था। यह फकीर थे और मित्र को जिलाने के लिए १०८ पदों में कृष्णस्तवन किया था, जिसके सभी पदों का अंत 'क्यों मेरी बार बार की' है। इनके स्फुट पद मिलते हैं। उदाहरण :—

माफ किया मुलुक पनाह दी विभीषन को,

कही थी जुबान कुरबान ये करार की ।

बैठिबे को ताइफ तखत दै तखत दिया,

दौलत बढ़ाई थी जुनारदार यार की ॥

तब क्या कहा था अब सरफराज आप हुए,

जब कि अरज सुनी चिरामार खार की ।

'कारे' के करार माहिं क्यों न दिलदार हुए,

एरे नन्दलाल क्यों हमारे बार बार की ॥

यह लखनऊ के अंतर्गत काकोरी के निवासी शाह काजिम के पुत्र थे तथा उसकी गद्दी के उत्तराधिकारी भी हुए। इनका नाम

तुराब अली शाह तथा उपनाम तुराब था। यह

तुराब

सूफी फकीर थे। इनकी मृत्यु सन् १२७५ हिजरी में हुई। इन्होंने एक दीवान उर्दू में लिखा है और

इनके स्फुट गेय पद भी मिलते हैं। इस उपनाम का एक और उर्दू कवि हो गया है, जो लखनऊ के मिर्जा अबूतालिब खाँ का पुत्र मिर्जा अबूतुराब खाँ बहादुर था। उदाहरण:—

१. मैं तुझको बद नहीं कहता हूँ प्यारे ।

जो कुछ तूने किया अच्छा किया है ॥

२. सोते से जगाया मुझे फिर आके किसूने ।

दिखलाई भली आन मसीहा कि किसूने ॥

३. हों तो चली अब देश बिदेश बाबुल तेरी नगरी छूटी ।

बीरन फेर कठिन है आवन आस मिलन की दूटी ॥

ससुरे जान हौ संग पिया के मात पिता सों रुठी ।

सइआँ हँसत मैं अस रोवत हूँ जैसे मारी लूटी ॥

साँचा मित्र कोई नहीं जग में प्रीति जगत की झूठी ।

ससुर के लीक 'तुराब' से पूछो नैहर सों जो फूटी ॥

तालिबशाह का जन्म सं० १७६८ में हुआ था। इनके स्फुट

छंद मिलते हैं पर कोई रचना नहीं सुनी जाती।

तालिब

उर्दू-साहित्य के तालिब कोई अन्य हैं, क्योंकि

उनका समय बहुत बाद आता है। इनकी कविता का एक उदाहरण नीचे दिया जाता है:—

महबूब बागे सुहाने बने हैं सुमोहन गरे माल फूलों दिये है ।

महारंग माते अमाते मदन के बिलोक्त बदन खौर चंदन दिये है ॥

यही भेष हरिदेव भृकुटी तुम्हारी सुलकुटी भँवर खेल या लख लिये है ।

दिवाना हुआ है निवाना दरश का सु 'तालिब' उठी श्याम गिरिवर लिये है ॥

यह गुजरात प्रांत के पालनपुर राज्य का एक ग्राम-निवासी लोहार था। यह ईस्ट इंडिया कंपनी की सेना में मिस्त्री का काम

दीनदरवेश

करता था। युद्ध में गोले से एक हाथ के कट जाने पर सेना से निकाले जाने पर यह फकीर हो

गया तथा दीनदरवेश नाम रक्खा। बड़नगर में अतीत बाबा बालानाथ का शिष्य हुआ और उनके उपदेश से यह संत तथा हिंदी का सुकवि हो गया। यह अब घूम घूमकर धर्मोपदेश करने लगा। इसकी स्फुट रचनाएँ मिलती हैं। इसकी मृत्यु वृद्धावस्था में कार्शा में हुई, जहाँ यह चला आया था। यह उन्नीसवीं विक्रमीय शताब्दि के उत्तरार्द्ध में था। उदाहरण :—

माया माया करत है खरच्या खाया नाहि ।

सो नर ऐसे जाहिगे ज्यों बादल की छाहि ॥

ज्यों बादल की छाहि जायगा आया जैसा ।

जाना नहि जगदीश प्रीति कर जोड़ा पैसा ॥

कहे 'दीन दरवेश' नाहि कोइ अम्मर काया ।

खरच्या खाया नाहि करत नर माया माया ॥

भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र जी के पिता गोपालचंद का यह उपनाम था। इनका जन्म सं० १८९० में हुआ था और मृत्यु सं० १९१७ में हुई थी। इसी थोड़ी अवस्था में इन्होंने चालीस ग्रंथ लिखे थे। इनकी भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा थी पर इन्होंने कुछ पद तथा गजल खड़ी बोली में लिखी हैं। एक उदाहरण दिया जाता है:—

जाग गया तब सोना क्या रे ।

जो नर तन देवन को दुर्लभ सो पाया अब रोना क्या रे ॥

ठाकुर से कर नेह श्रापना इंद्रिज के सुख होना क्या रे ।

जब बैराग्य ज्ञान उर आया तब चाँदी औ सोना क्या रे ॥

दारा सुवन सदन में पड़ के भार सबों का ढोना क्या रे ।

हीरा हाथ अमोलक पाया काँच भाव में खोना क्या रे ॥

दाता जो मुख माँगा देने तब कीड़ी भर दोना क्या रे ।

गिरिधरदास उदर पूरे पर मीठा और सलोना क्या रे ॥

इनका जन्म सं० १८३२ में हुआ था, सं० १८९४ में यह दिल्ली की गद्दी पर बैठे और बलवे के बाद इनकी सं० १९१९ में मृत्यु हुई। यह स्वभाव से अत्यंत सरल थे और स्वयं बहादुरशाह कवि होते हुए कवियों को आश्रय भी देते थे। यह कविता में 'जफर' उपनाम रखते थे। इन्होंने एक बड़ा दीवान लिखा है तथा गाने के शौकीन होने से ठुमरी आदि भी बनाई हैं। उदाहरण :—

प्यारी तेरो प्यारो आयो प्यारी

प्यारी बातें कर प्यारे को मनाइए ।

अनेक भाँतिन कर प्यारे को रिझाइए,

आली ऐसो प्यारो कहा घर बैठे पाइए ॥

लाइए, समुझाइए कौनो भाँतिन

सुख दे बुलाइए ।

‘शाह बहादुर’ तेरे रस बस भए

अनरस कर कर सीत न हँसाइए ॥

लखनऊ के नवाबगण उर्दू के शायरों के कल्पतरु थे पर संगीत के प्रेम के कारण हिंदी के राग-रागिनियों के रचेताओं का भी वहाँ कम मान नहीं था। इन सब में अंतिम नवाब वाजिदअलीशाह सब से बढ़कर संगीत-प्रेमी थे। यह सं० १९०४ में लखनऊ की गद्दी पर आसीन हुए। बड़ी बड़ी बहुमूल्य इमारतें तैयार हुईं, खूब रासलीला, इंदर सभा, मेले आदि हुए और अंत में प्रबंधन देखने के कारण अशांति फैलने पर सं० १९१३ में यह गद्दी से उतार दिए गए। कलकत्ते के मटियाबुर्ज को, जहाँ यह भेज दिए गए थे, छोटा लखनऊ बनाकर खूब रंगरलियाँ मचाई और यही करते हुए सं० १९४४ में वहीं मर गए। इनका ‘अख्तर’ उपनाम था और ठुमरी आदि में ‘जानआलम

वाजिदअलीशाह
तथा ठुमरी

पिया' उपनाम रखते थे। इनकी वजन पर कदर पिया, सनद पिया, नासिर पिया आदि कई ठुमरी-रचेता प्रसिद्ध हुए। इन सब की भाषा खड़ी बोली हिंदी थी। वाजिदअलीशाह की एक बेगम ने भी कुछ ठुमरियाँ बनाई हैं। इन सब की रचनाओं से कुछ उदाहरण दिए जाते हैं :—

१. सैयाँ जाव जाव मैं नहीं बोलती ।
‘अख्तर पिया’ सों यों जाय कहियो
२. लैगर तोरा चतुर सुजान ।
मैं अपनी दधि बेचन निकसी सास ननद की चोरी ।
‘सुलतान आलम’ घर जान न दूँगी मुत्तियन की लर तोरी ॥
३. सखी अब क्या कहूँ न माने री ।
‘सनद पिया’ मोरा नेक न माने.....
४. ‘कदर’ को कैसे भेजूँ मैं पाती ।
५. ‘नासिर पिया’ से मिल आई सजनी दूट गई दुलरी ।

उन्नीसवीं शताब्दि के उत्तरार्द्ध में मिर्जापुर में तुकनगिरि हो गए हैं, जिन्होंने पचड़े को लावनी का रूप दिया। जन साधारण में इस पचड़े का प्रचलन पुराना है, जो गाया जाता है। इन लावनियों में माया का प्रपंच उद्धाटित कर तथा उसकी ओर से मन हटाकर ईश्वर की ओर लगाने का प्रयास किया गया है। तुकनगिरि की शिष्य परंपरा में रिसालगिरि और देवीसिंह विशेष प्रसिद्ध हुए और आपस के मनोमालिन्य से दोनों ने अलग अलग अपनी शाखाएँ चलाई। रिसालगिरि ने तुरे का तराना तथा भगवा बाना अपनाया और ब्रह्मज्ञान, माया का प्रपंच आदि का वर्णन किया। देवीसिंह ने कलगी तराना और सखी का बाना अपनाया तथा भक्ति की अपनी लावनियों में विशेषता रखी। इन्हींका शिष्य काशीगिरि उपनाम बनारसी सफल लावनी-रचेता हुआ। उक्त

दा के सिवा कुंडा, छत्र, मुकुट आदि नाम की कई शाखाएँ चलीं। लावनियों में उर्दू के बहरों का प्रयोग हुआ, जो छोटी रंगत, बड़ी रंगत, लँगड़ी रंगत, बहरे तवील आदि में बँटीं। ख्याल लावनी ही का एक भेद है। बनारसी का बनाया लावनी-ब्रह्मज्ञान बड़ा ग्रंथ है। हरिनारायण ने भरतपुर-युद्ध तथा रुक्मिणी-मंगल नाम की रचनाएँ तैयार कीं। रामनारायण का राधिका मंगल और हनुमंत की लीला पचीसी लावनी ही हैं।

‘संगीत’ एक प्रकार का कथानक काव्य है, जो गाकर पढ़ा जाता है और इसी कारण इसका ऐसा नाम पड़ गया है। इसमें प्रत्येक दोहे के बाद एक एक चौबोला रहता है। लछमनदास कृत ‘गोपीचंद भरतरी’, हरदेव कृत ‘संगीत रूप बसंत’ आदि बीसवीं शताब्दि के आरंभ की रचनाएँ हैं। ऐसे संगीत बहुत सं पाए जाते हैं, जो बहुत साधारण रचनाएँ हैं। हीरराँभा आदि साधारण कथा-काव्य भी इसी समय लिखे गए और कुछ इनमें गद्य-पद्य मिश्रित भी हैं। इन सब की भाषा अति शिथिल है और खड़ी बोली ‘ही’ में हैं। इन सबका उदाहरण देना अनावश्यक है।

नवम प्रकरण

वर्तमान-काल का विकास-उसका आरंभ

यद्यपि रीति-काल सी रचनाएँ बराबर अब तक होती आ रही हैं, या यों कहा जाय कि वास्तविक शास्त्रीय विवेचनायुक्त रीतिग्रंथों की इधर ही रचना होने लगी है, पर रीतिकाल का अंत उन्नीसवीं विक्रमीय शताब्दि के साथ हो गया। इस वर्तमान-काल की विशेषता गद्य का प्राधान्य है और पद्य में भी कोई ऐसी स्पष्ट विशिष्टता नहीं है,

विषय-प्रवेश

जिससे इस काल का कोई अन्य नामकरण किया जा सके। पहिले मानवसमाज पद्य-साहित्य ही से अपना सब कार्य निपटा लेता था, क्योंकि उसके दृष्टिकोण का क्षेत्र अधिक विस्तृत न था। युद्धोत्साह, धार्मिक विचार, अर्थ-अर्जन के लिए दाताओं का आतिशयोक्तिपूर्ण कीर्तन, साधारण मनोरंजन आदि ही पर्याप्त विषय थे और कविगण उन्हींको लेकर अपनी प्रतिभा तथा अध्यवसाय की इति-श्री कर लेते थे। पर इस काल में यह क्षेत्र बहुत विस्तीर्ण हो गया और होता जा रहा है तथा इन सब के लिए गद्य ही मुख्य साधन है। पद्य भावावेश मूलक है और उसकी भाषा भी शब्द-सौष्ठव, अलंकरण आदि की मुखापेक्षी है; पर अनेक गंभीर गहन विषयों का, जो आधुनिक काल में जीवन के आवश्यक अंग हो गए हैं, विवेचना पूर्ण तथ्य समझाते हुए विवरण उपस्थित करने का गद्य ही एक मात्र साधन है, पद्य किसी प्रकार नहीं हो सकता। यही कारण है कि इस काल में आवश्यकतावश गद्य का प्रचार बढ़ा और बढ़ता जा रहा है।

मुगल-सम्राट् औरंगजेब के राज्यकाल का अंत होते होते भारत में अशान्ति की मात्रा बढ़ने लगी। मुगल-साम्राज्य जड़ से हिल उठा और बाद को उसे ध्वंस करते पेंतिनामिक स्थिति हुए तथा उसी के ध्वंसावशेष पर अनेक छोटे छोटे राज्य स्थापित होने लगे। मुसल्मानी अत्याचार से उबे हुए हिंदुओं ने सर्वत्र उठने का प्रयास आरंभ किया और उन्हें दबाने को दूसरे पक्ष ने प्रबल प्रयत्न किया तथा अन्य देशों के स्वधर्मियों का भी आह्वान किया। राजस्थान, दक्षिण, पंजाब आदि में अनेक वीर जातियों ने भारत के उत्थान के लिए बहुत परिश्रम किया तथा इनके विरुद्ध नादिरशाह, अहमदशाह, हैदरअली आदि ने भी कम जोर नहीं मारा और इन कारणों से

अठारहवीं विक्रमीय शताब्दि में वह भयंकर स्थिति उत्पन्न हो गई जो 'न भूतो न भविष्यति' थी। भारत में ऐसे समय धनाकांक्षा से सात समुद्र पार से आई हुई कई यूरोपीय जातियों ने, अवसर पा दो मूर्खों को भिड़ाकर अपना पासा सीधा करने का प्रयत्न किया जिससे स्थिति बिगड़ती ही गई। वीरों के शवों पर पिंडारा तथा ठग रूपी पिशाचों ने भी कुछ दिनों तक ऐसा अंधेर मचाया था कि यात्रियों के दिलों तथा छोटे छोटे ग्रामों के निवासियों के धन तथा प्राण संकट में पड़े रहते थे। ऐसी अवस्था में इस शताब्दि का साहित्य के इतिहास में विशिष्ट स्थान न पाना विशेष आश्चर्य का विषय नहीं है।

२० मई सन् १४९८ (सं० १५५५) को प्रथम यूरोपियन 'वैस्को ड गामा' भारत पहुँचा और कुछ व्यापार कर लौट गया। दो वर्ष बाद कालीकट में पुर्तगीजों की कोठी स्थापित हुई। इस जाति के अनंतर डच तथा अंग्रेज प्रायः साथ ही आए और इनके बाद डेन। सबसे अंत में फ्रेंच आए और इसी जाति ने पहिले पहिल भारतीयों की सेना तैयार कर भारत को विजय करने का प्रयत्न किया था। अंग्रेजों को भारत पर अधिकार करने में इन्हीं फ्रेंच से विशेष युद्ध करना पड़ा था। क्रमशः अंग्रेज जाति का अधिकार बढ़ता गया और व्यापार का कार्य छोड़ते हुए ईस्ट इंडिया कंपनी साम्राज्य-प्रबंध में लग गई। व्यापार-काल में उसे केवल धन अर्जन की चिंता थी पर राज्य-प्राप्ति के अनंतर उसका राजधर्म की ओर भी ध्यान गया। भारत की भाषाओं में संस्कृत तथा फारसी पर पहिले कृपादृष्टि पड़ी और इनकी पाठशालाओं को कुछ सहायता मिलती रही। प्रथम बड़े लाट वारन हेस्टिंग्स ने इन भाषाओं की उन्नति पर विशेष ध्यान दिया तथा बंगाल एशाटिक सोसाइटी भी इसी समय स्थापित हुई।

व्यापार-काल के दुभाषियों का समय व्यतीत हो चुका था और उन अंग्रेज अफसरों के लिए, जो भारत में राजप्रबंध करने के लिए नियत होते थे, यहाँ की भाषाओं का ज्ञान आवश्यक हो गया था। लॉर्ड वेलेजली ने इंडियन सिविल सर्विस की शिक्षा पर सम्मति देते लिखा था कि 'भारतीय जनता के इतिहास, भाषाओं, रीति तथा रिवाजों का ज्ञान' अत्यंत आवश्यक है और इन्होंने साथ ही सं० १८५७ में फोर्ट विलियम कॉलेज भी स्थापित किया। इस विचार को कार्यरूप में परिणत करने के लिए पाठ्यग्रंथों का अभाव था, इसलिए वह कार्य उक्त कॉलेज के प्रिंसिपल डाक्टर गिलक्राइस्ट को सौंपा गया। पर भारतीय प्रजा की शिक्षा की ओर पहिले पहिले सं० १८७० के 'चार्टर' में ध्यान दिया गया और लॉर्ड कैसेलरी तथा चार्ल्स ग्रांट के प्रस्ताव तथा समर्थन पर एक लाख रुपया वार्षिक इस कार्य के लिए अलग किए गए। सं० १८९० में पुनः 'चार्टर' बदला। अब तक अनेक स्थानों में संस्कृत कॉलेज खुल गए थे पर कुल भारत के लिए कैसी शिक्षा प्रणाली होनी चाहिए यह निश्चित नहीं हो पाया था। इस चार्टर के साथ एक शिक्षा-कमीशन नियत हुआ, जिसके प्रधान लॉर्ड मेकोले थे और इन्होंने एक लंबी रिपोर्ट लिख कर केवल अंग्रेजी भाषा ही को शिक्षा का माध्यम निश्चित करा दिया। संस्कृत, फारसी आदि की शिक्षा में जो व्यय होता था वह कम कर दिया गया और अंग्रेजी शिक्षा में व्यय होने लगा। इसके बाद सं० १९११ में अंतिम चार्टर के साथ शिक्षा के प्रसार के लिए तत्कालीन भारत सचिव सर चार्ल्स वुड (लॉर्ड हैलिफैक्स) ने एक बृहत् स्कीम भेजी, जिसमें वर्नाक्युलर स्कूल, सहायता-प्राप्त स्कूल, कॉलेज तथा विश्वविद्यालय स्थापित करने का पूर्ण आयोजन था। तत्कालीन बड़े लाट लॉर्ड डलहाउजी ने इस आयोजन को कार्यरूप में परिणत किया।

सं० १९१४ में कलकत्ता, बंबई तथा मंदराज में प्रथम तीन विश्व-विद्यालय स्थापित हो गए ।

यूरोपीय जातियों के व्यापार के लिए भारत में आने के साथ साथ ईसाई-धर्मप्रचारक भी यहाँ आ पहुँचे और अपने उपदेशों का

भारतीय जनता में प्रचार करने के लिए इन्हें यहाँ

ईसाई-प्रयास

की भाषाओं को काम में लाना पड़ा तथा उनके समझाने के लिए अपने धर्म-ग्रंथों का यहीं की

भाषा में अनुवाद करना पड़ा । डा० विलिअम कैरे सं० १८५१ में

भारत आया और मालदा में गिरिजाघर खोलकर ग्रामों में उपदेश देने लगा; पर ईस्ट इंडिया कंपनी ने इस कार्य में बाधा दी, जिससे यह

कुछ साथियों के साथ श्रीरामपुर चला गया । यहीं मिशन स्थापित

कर बाइबिल का अनुवाद भारत की सत्ताइस भाषाओं में कराया ।

हिंदी का अनुवाद सं० १८७५ तक छप चुका था । कैरे ने रामायण

का संपादन किया और कोष तथा व्याकरण भी लिखे । सं० १८७०

के चार्टर से ईसाई-धर्म प्रचार करने की स्वतंत्रता मिल गई और

इससे खड़ी बोली हिंदी के प्रचार में भी सहायता मिली । इन

ईसाई-धर्म-ग्रंथों के अनुवाद की भाषा शुद्ध हिंदी थी, उर्दू-मिश्रित नहीं ।

शिक्षा प्रचार में भी इन पादड़ियों ने योग दिया और बहुत से मिशन

स्कूल भी स्थान स्थान पर खुले तथा शिक्षा-संबंधी पाठ्यग्रंथ भी हिंदी

में तैयार किए गए । इस प्रकार की शिक्षा संबंधी तथा धार्मिक

विषय की बहुत सी तत्कालीन गद्य पद्य मय रचनाएँ प्राप्त हैं पर

उन सबका विवरण उदाहरण सहित उपस्थित करना इस छोटी

सी पुस्तक में आवश्यक नहीं जान पड़ता । केवल कुछ प्रधान

प्रधान पुस्तकों तथा रचैताओं का संक्षिप्त उल्लेख आगे किया जाता है ।

डा० कैरे का ऊपर उल्लेख किया जा चुका है । श्रीरामपुर के

सिवा आगरा, काशी, लुधियाना आदि कई स्थानों में मिशन तथा

सोसाइटियाँ खुलीं और ईसाई धर्म की अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुईं। शिक्षा के पाठ्यक्रम के लिए इतिहास आदि भी प्रकाशित किए गए, जिनके लेखकों में पं० रतनलाल, ओंकार भट्ट, बद्रीलाल शर्मा आदि के नाम मिलते हैं। दो चार पुस्तकों से उदाहरण यहाँ दे दिए जाते हैं:—

१. फिर कुलीनों में उपद्रव मचा और इसलिए प्रजा की सहायता से पिसिसट्रेटस नामक पुरुष सबों पर पराक्रमी हुआ। इसने सब उपाधियों को दबाकर ऐसा निष्कण्टक राज्य किया कि जिसके कारण वह अनाचारी कहाया।

(‘कथासार’, रतनलाल)

२. उनकी दृष्टि बरामदे की ओर जा पड़ी तो क्या देखते हैं वह अनाथ बालक चटाई पर बैठा हुआ इंजील पढ़ रहा है और उसका अर्थ अपने कहार को समझाता जाता है। साहिब की ओर पीठ थी इसलिए उसने उनको नहीं देखा। पहिले तो स्मिथ साहिब को निश्चय न हुआ जाना, मैं स्वप्न देखता हूँ।

(‘हेनरी और उसका महारा’, प्रियानाथ सं० १६१३)

३. इसके पीछे दूसरी बहिन मरिअम ने भी इसी रीति पर यिसू से भेंट किई और यिसू ने उसको और यहूदियों को रोते देख के मन में हाथ किया फिर समाधि के पास जाके वह रोया। कदाचित् उसने अपने मन में ध्यान किया होगा कि यदि पाप के इसी एक फल से इतना शोक होता है तो सर्वत्र संसार में पाप के कारण से कितना अगणित दुःख और शोक होगा।

(मत परीक्षा, सं० १६२५)

४. फिर कहते हैं कि संसार में नाना प्रकार के विपर्यय होंगे कि लोग अपने धर्म को छोड़ के अधर्मरत होंगे और बड़ा बड़ा दुःख और क्लेश उठावेंगे इसके पीछे कलंकी अवतार होगा तब सतयुग व्यापेगा सो इस भांति के आगम ज्ञान से क्या ठहर सकता है जो अब लौं पूरे न हुए।

(सत मत निरूपण, सं० १६१६)

मुगल-साम्राज्य के स्थापित होन के पहिले के मुसल्मानी

राज्यों में दफ्तर का सारा कार्य हिंदी ही में होता था और सिक्कों पर भी हिंदी ही में सुल्तानों के नाम रहते थे।

कचहरी की भाषा बाद को फारसी भाषा का प्रचार हुआ और अकबर बादशाह के समय राजा टोडरमल ने दफ्तर का कार्य फारसी ही में रहने दिया, जिससे हिंदू कर्मचारियों को भी फारसी का अध्ययन करना आवश्यक हो पड़ा, पर माल विभाग का कार्य हिंदी ही में होता रहा। पुराने कागज कई सौ वर्ष पहिले के जो प्राप्त हैं, वे फारसी में लिखे मिलते हैं और साथ साथ उसके नीचे के आधे भाग में हिंदी में उसी का अनुवाद भी मिलता है; पर उर्दू कही जाने वाली भाषा को किसी पर स्थान नहीं मिला है। वही प्रथा बाद को भी चलती रही पर फारसी भाषा न जानने के कारण और सर्व साधारण में कभी उसके प्रचलित न होने से जो कष्ट सब को हो रहा था उसका प्रतीकार सं० १८९४ में भारत-सरकार ने एक एक्ट प्रचलित कर इस प्रकार किया कि फारसी को हटाकर उसके स्थान पर प्रांतिक बोलियाँ जारी करने की आज्ञा दे दी। बंगाल में बँगला, गुजरात में गुजराती आदि चलाई गईं पर संयुक्त प्रांत आगरा और अवध में हिंदुस्तानी नाम से उर्दू चला दी गई, जिससे इसका महत्व बढ़ गया। सं० १९२५ में नागरी लिपि को स्थान दिया गया पर उसका प्रचार बढ़ न पाया। सं० १९३८ में मध्य प्रदेश तथा बिहार में उर्दू हटा दी गई और वहाँ हिंदी का प्रचलन हो गया। संयुक्तप्रांत में भी सं० १९५७ में नागरी लिपि का जानना आवश्यक कर दिया गया और फारसी तथा नागरी दोनों लिपि कचहरी के कार्य के लिए निश्चित की गईं तथा बाद को हिंदी भी अदालती भाषा मान ली गई।

पौने दो सौ तथा सवा दो सौ वर्ष पहिले के लिखे दो कबूलि-यतों से एक एक उद्धरण नीचे दिए जाते हैं, जो उस पत्र के

ऊपर फारसी में लिखे हुए अंशों के हिंदी अनुवाद रूप में उसी कागज के नीचे दिए गए हैं और उसके बाद लिखनेवालों के हस्ताक्षर हैं।

‘संवत् १८३० मिति अगहन सुदी ११ वार शुभ दीन मुशमाती कीशुना नरहरी की बेटी शिवनाथ चौबे की जोरु पनु चौबे की पतोहु शांगु चौबे की पर पतोहु व मुशमाती भवानी पनु चौबे मजकूर की बेटी दर दारुल कलाइ बुलदै बनारसी मो हाजीर आइ कै बयान किया कि एक मंजील हवेली शमेती जमीन इमारती महला नाला बुला मुतशील काशीपुरा अंदरुन बुलदै मजकूर तीशका हद-बमौजीब कवाला काजी लुतुफुलाह वा अबदुल वाहीद वा महमद अहशान कानुगो की मोहर शो जर खरीद शीवनाथ मजकूर का था वा शीवनाथ मजकूर मुआ तरका उशका मै की कीशुना मजकूर जोरु उसकी हय वा मै की भवानी मजकूर खोरु* उशकी हय बहीनी उशकी व माना वेटी उसकी को मीरासी पहुँची।’

‘सं० १७७४ समै नाम जेठ सुदी चतुरदसी वार शुभ दीने पत्र करै बिकरै करता भूमी बीशुनाथ वा रामा नराएन के बेटे तुमो के पोते करै करता बीकिरी हेमराज वा घासीराम लाला के बेटे रावल के पोते गोविंद के परं पोते दर दारुल कला बुलदै महमदाबाद उरुफ बनारस मो हाजीर आय के बयान किया।’

उक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि विदेशियों के संपर्क तथा प्रभाव से और भारत सरकार की कृपा से खड़ी बोली हिंदी को बीसवीं शताब्दि विक्रमीय के आरंभ से बहुत प्रोत्साहन मिला और वह तबसे बराबर उन्नति करती चली आ रही है। पर इसका तात्पर्य यह नहीं है कि इसके पहिले गद्य का हिंदी साहित्य में अभाव था। ब्रज-भाषा में तो बीसों गद्य-ग्रंथ पहिले के मिल गए हैं और खड़ी बोली

* फारसी शब्द ख़ाहिर जिसका अर्थ बहिन है।

में भी कुछ रचनाएँ प्राप्त हैं। गोरखनाथ जी की कुछ रचनाएँ मिलती हैं पर वे उन्हींकी हैं या बाद को उनके शिष्यों द्वारा लिखी गई हैं, यह संदिग्ध है। यदि इनमें कुछ भी उन्हींकी बनाई हैं, तो यह चौदहवीं शताब्दि विक्रमीय की होगी। उदाहरण:—

१. श्री गुरु परमानंद तिनको दंडवत है। हैं कैसे परमानंद, आनंद स्वरूप हैं शरीर जिन्ह को। जिन्ह के नित्य गाए तें शरीर चेतानि अरु आनंदमय होत है। मैं जु हों गोरख सो मछंदरनाथ को दंडवत करत हों।

२. पराधीन उपरांति बंधन नाही, सुआधीन उपरांति मुक्ति नाही, चाहि उपरांति पाप नाही, अचाहि उपरांति पुज नाही। सुसबद उपरांति पोस नाही। नारायण उपरांति ईसर नाही।

सं० १६२७ में अकबर के समय में गंग भाट ने 'चंद छंद वरनन की महिमा' नामक पुस्तक लिखी, जिसमें केवल सोलह पृष्ठ हैं। दो वर्ष बाद विष्णुदास द्वारा लिखी प्रतिलिपि से नीचे कुछ उदाहरण दिया जाता है:—

‘इतना सुनके पातशाहा जी श्री अकबर शाहाजी आध सेर सोना नरहरदास चारण को दिया। इनके डेढ़ सेर सोना हो गया। रास बंचना पूरा भया। आम खास बरखास हुआ’।

सं० १६७५-८४ तक ओड़छा के राजा जसवंतसिंह के आश्रित वैकुण्ठमणि शुक्ल ने दो रचनाएँ गद्य में लिखीं, जिनके नाम वैशाख माहात्म्य तथा अगहन माहात्म्य हैं। इनमें ब्रजभाषा मिश्रित खड़ी बोली है। उदाहरण:—

‘एक समय नारद जू ब्रह्मा की सभा तें उठि कै सुमेरु पर्वत को गए। पुनि गंगा जू को प्रवाह देखि पृथी बिषै आए। तहाँ सब तीरथन को दरसन करत भए तब श्री राजा अंबरीष के यहाँ आए। अब राजा अंबरीष नारद की नजीक आए की खबर सुनी तब ही उताइल कै सभा तै उठि आगे होइ लिए।’

सुरति मिश्र का रचनाकाल सं० १७६० से १८०० तक मान्य

है। इन्होंने अन्य रचनाओं के सिवा गद्य भी लिखा है। वैताल पंचविंशति के ब्रजभाषा गद्यानुवाद के सिवा गद्य में टीकाएँ भी लिखी हैं। उदाहरण :—

‘कमलनयन कमल से हैं नैन जिनके, कमलद वरन कमलद कहिए मेघ को वरण है, श्याम स्वरूप है। कमलनाभि श्रीकृष्ण को नाम ही है कमल जिनकी नाभि से उपज्यो है, कमलाय कमला लक्ष्मी ताके पति हैं तिनके चरण कमल समेत गुन को जायको मेरे मन में रहो।’

सन् १९२९-३१ ई० की खोज की त्रैवार्षिक रिपोर्ट में रामप्रसाद निरंजनी कृत योगवासिष्ठ पूर्वार्द्ध की चार प्रतियों का उल्लेख है, जो सं० १९१२, १८८०, १८७५ तथा रामप्रसाद निरंजनी १८५६ वि० की लिखी हुई हैं। कहा जाता है कि

यह निरंजनी संप्रदाय के एक विरक्त साधु थे, जो पटियाला की महारानी को कथा सुनाया करते थे और इन्होंने इस अपनी रचना को सं० १७९८ की कार्तिकी पूर्णिमा को समाप्त किया था। जितना उद्धरण इसका प्राप्त है, उससे ज्ञात होता है कि इनकी भाषा दो शताब्दि पुरानी होने पर भी परिमार्जित तथा सुव्यवस्थित है। यह खड़ी बोली हिंदी के अब तक माने गये गद्य प्रवर्तकों से प्राचीनतर है। उदाहरण :—

प्रथम परब्रह्म परमात्मा को नमस्कार है, जिससे सब भासते हैं और जिसमें सब लीन और स्थित होते हैं, जिससे ज्ञाता ज्ञान-ज्ञेय, द्रष्टा दर्शन और कर्ता कारण और क्रिया सिद्धि होते हैं। जिस आनंद के समुद्र के कण से संपूर्ण विश्व आनंदमयी है, जिस आनंद से सब जीव जीते हैं। अगस्त जी के शिष्य सुतीक्ष्ण के मन में एक संदेह पैदा हुआ तब वह उसके दूर करने के कारण अगस्त मुनि के आश्रम को जा विधि सहित प्रणाम करके बैठे और विनती कर प्रश्न किया कि हे भगवन आप सब तत्वों और शास्त्रों के जानन-हारे हो, मेरे एक संदेह को दूर करौ।

सं० १६८० में जटमल कवीश्वर लिखित पद्य में गोराबादल का वार्ता का गद्यानुवाद सं० १८२० में किसी ने किया था, जिसका नाम ज्ञात नहीं हुआ। इसमें खड़ी बोली का प्राधान्य है और व्रज-भाषा मिश्रित है। उदाहरण :—

गोरे की आवरत आवे सो बचन सुनकर अपने षावंद की पगड़ी हाथ में लेकर वाहा सती हुई सो सिवपुर में जाके वाहा दोनों मेले हुए। गोरा बादल की कथा गुरु के बस सरस्वती के महरवानगी से पूरन भई तिम वास्ते गुरु कूँ व सरस्वती कूँ नमस्कार करता हूँ। ये कथा सोल से आसी के साल में फागुन सुदी पुनम के रोज बनाई। ये कथा में दोर सेह बीरा रस बसी नगार रस हे सो क्या। भोर छड़ो नाव गाँव का रहनेवाला क वेमर जगहा। उस उस गाँव के लोग भोहोत सुकी है, घर घर में आनंद होता है, कोई घर में फकीर दीखता नहीं।

इसके अनंतर उन्नीसवीं विक्रमीय शताब्दि के उत्तरार्द्ध में हिंदी गद्य के चार प्रतिष्ठापकों का नाम आता है, जिनमें समयानुक्रम से प्रथम मुंशी सदासुखलाल 'नियाज' हैं, जो दिल्ली के निवासी थे। इनका जन्म सं० १८०३ में और मृत्यु सं० १८८१ में हुई थी। यह ईस्ट इंडिया कंपनी की सेवा में चुनार में रहे और बाद को प्रयाग में जा बसे। यह फारसी, उर्दू तथा हिंदी के ज्ञाता थे तथा तीनों में इन्होंने रचनाएँ की हैं। कविता भी काफी की है। इन्होंने श्रीमद्भागवत का भी अनुवाद किया है जो पूरा अभी तक अप्राप्त है। उदाहरण :—

यद्यपि ऐसे विचार से हमें लोग नास्तिक कहेंगे, हमें इस बात का डर नहीं, जो बात सत्य होय उसे कहा चाहिये, कोई बुरा माने कि भला माने। विद्या इस हेतु पढ़ते हैं कि तात्पर्य इसका सतोवृत्ति है वह प्राप्त हो और उससे निज स्वरूप में लय दृजिए। इस हेतु नहीं पढ़ते हैं कि चतुराई की बातें कदके लोगों को बहकाइये और फुसलाइये और असत्य छिपाइये।

इंशाअल्लाह खाँ का जन्म मुर्शिदाबाद में हुआ था पर यह आजीविका की खोज में पहिले दिल्ली आए और फिर लखनऊ में जा बसे। इसकी मृत्यु सं० १८७३ में हुई। फारसी और उर्दू के प्रसिद्ध कवि होते हुए भी ठेठ हिंदी में इसने 'रानी केतकी की कहानी' लिखी, जो सं० १८६० के आसपास की रचना है। इसकी भाषा शुद्ध खड़ी बोली है। उदाहरण:—

किसी देस में किसी राजा के घर एक बेटा था उसे उसके मा बाप और सब घर के लोग कुँअर उदयभान कहके पुकारते थे। सबमुच उसके जीवन की जोत में सूरज की एक सूत आ मिली थी। उसका अच्छापन और भला लगना कुछ ऐसा न था जो किसीके लिखने और कहने में आ सके। पंदरह बरस भर के सोलहवें में पाँव रखा था, कुछ यों ही सी उसकी मसँ भींगती चली आती थीं अकड़ मकड़ उसमें बहुत सी समा रही थी।

उक्त दोनों सज्जनों ने स्वांतः सुखाय ही लिखा था पर अन्य दो लल्लूलाल तथा सदल मिश्र ने अपनी रचनाएँ उक्त फोर्ट विलिअम कॉलेज के प्रिंसिपल डा० गिलक्राइस्ट की प्रेरणा से लिखी थीं। लल्लूलाल जी आगरा के निवासी थे और इनका जन्म सं० १८२० में और मृत्यु सं० १८८२ में हुई। संस्कृत के विशेष ज्ञाता न होते और ब्रजभाषी होते भी इन्होंने प्रेमसागर खड़ी बोली में लिखा है तथा सिंहासन बत्तीसी, बैताल पचीसी आदि अन्य रचनाएँ भी इन्हींकी हैं। उर्दू के भी ज्ञाता न थे इसलिए फारसी अरबी के शब्दों का प्रयोग स्वतः न हो पाया है पर ब्रजभाषा का मेल स्वभावतः हो गया है। उदाहरण:—

नौ स्कंध कथा मुनि ने सुनाई तब राजा ने कहा दीनदयाल अब दयाकर श्री कृष्णावतार की कथा कहिये, क्योंकि हमारे सहायक औ कुल पूज वे ही हैं। शुकदेवजी बोले—राजा, तुम ने मुझे बड़ा सुख दिया जो यह प्रसंग पूछा सुनो मैं प्रसन्न हो कहता हूँ। यदुकुल में पहले भजमान नाम राजा

ये तिनके पुत्र पृथिकु, पृथिकु के विदूरथ विनके सूरसेन जिन्होंने नौ खंड पृथ्वी जीत के जस पाया। उनकी स्त्री का नाम मरिष्या, विसके दस लक्षके और पाँच लड़कियाँ तिनमें बड़े पुत्र वसुदेव, जिनकी स्त्री के आठवें गर्भ में श्री कृष्णचंदजी ने जन्म लिया। (प्रेम सागर)

फिर बैताल बोला ए राजा धर्मपुर नाम एक नगर है वहाँ का राजा धर्म-शील और उसके मंत्री का नाम अन्धक उसने एक दिन राजा से कहा महा-राज एक मन्दिर बना उसमें देवी को बिठा नित पूजा कीजिये कि इसका शास्त्र में वड़ा पुण्य लिखना है। तब राजा एक मंदिर बनाया देवी के पदारथ शास्त्र की विधि से पूजा करने लगा और विन पूजा किये जल भी न पीता था इस तरह से जब कितनी एक मुदत गुजरी तो एक रोज दीवान ने कहा महाराज मसल मसहूर है कि 'निपुते का घर सूना मूरख का हृदय सूना और दरिद्री का सब कुछ सूना है'।

(बैताल पचीसी, सं० १६१३ का संस्करण)

सदल मिश्र का जन्म सं० १८३० के लगभग हुआ था और मृत्यु सं० १९०५ में हुई थी। यह सं० १८५५ में कलकत्ते गए और सं० १८८८ में स्वदेश लौट आए। इन्होंने इसी बीच नासिकेतो-पाख्यान का चंद्रावती नाम से हिंदी में अनुवाद किया, इसका एक उद्धरण यहाँ दिया जाता है। इसकी भाषा प्रेमसागर से अधिक परिमार्जित है।

धर्मराज के लोक में भाँति भाँति के लोग और वृक्षों से भरी चार सौ कोस लंबी चौड़ी चार द्वार की यमराज की पुरी है कि जिसमें सदा आय के अनेक गण, गंधर्व, ऋषि वो योगियों के मध्य में धर्म का विचार किया करते हैं। तिस पुरी में जिस द्वार से प्राणी जाता है सो मैं तुम से कहता हूँ।

इसके अनंतर बीसवीं शताब्दि विक्रमीय के आरंभ की भी कुछ रचनाएँ मिलती हैं। काशी निवासी राय मक्खनलाल ने सं० १९०३ में श्रीमद्भागवत का भावानुवाद विस्तार के साथ लिखा और उसका

सुखसागर नाम रखा। इन्होंने स्वयं लिखा है कि फैज़ी के फारसी अनुवाद के आधार पर यह लिखा गया है। यह नवलकिशोर प्रेस लखनऊ से कई बार प्रकाशित हो चुका है। इनके अनुवाद में फारसी अरबी के शब्द कहीं कहीं ऐसे आ गए थे कि कम शिक्षित लोगों को कठिनाई पड़ती थी; इससे बाद को वैसे शब्द उन्हींके समय में निकाल दिए गए थे। उसी सुखसागर का उर्दू लिपि में संस्करण सं० १९३१ में प्रकाशित हुआ था। उदाहरण:—

यह पुराण सब वेदों का सार वास्ते पार उतारने सब जीवों के संसार रूपी समुद्र से श्री शुकदेवजी ने मृत्यु लोक में जहाज़ बनाया है। बगैर पढ़े और सुने उसके जन्म लेना और जीना आदमी का कि यह चैतन्य चोला है संसार में अकारथ समझना चाहिए। कलजुग बासियों को संसारी माया मोह स्त्री और पुत्र द्रव्य और सुख में फँसे रहने से किसे समय जैसा चाहिए वैसा सावकास नहीं रहता जो मन अपना बीच भजन और स्मरण परमेश्वर के लगावें और कलजुग में उग्र आदमी की बहुत कम होकर मरने का ठिकाना नहीं रहता।

सं० १९०८ में छपी हुई हातिमताई नामक एक पुस्तक से नीचे कुछ उद्धरण दिया जाता है, जिसकी भाषा में फारसी अरबी शब्दों का अधिक मेल है, और इसी कारण इसके प्रकाशक ने इस भाषा को उर्दू लिखा है। इसके लेखक का नाम मीर मुंशी लक्ष्मीदास ज्ञात होता है जो नैपाल सरकार में स्यान नौकर था। उद्धरण:—

जब हातम शहर से निकला औ जंगल की राह ली थोड़े दिनों के बाद एक शहर के नज़दीक जा पहुँचा तो क्या देखता है कि एक कूँए के गिर्द बहुत से मर्द औरत इकट्ठे हैं पूछा उसने कि ऐसा हज़ूम और ऐसी धूम क्यों कर रक्खी है किसी ने कहा ऐ अजीज़ यहाँ के हाकिम का बेटा इस कूँए पर दिवाना होकर बैठ रहा था आज तीसरा दिन है कि उसने अपने तई इसी में गिरा दिया हर-चंद हम इस्में काँटे और रस्सियाँ डाल डाल कर हँदते हैं पर लाश उसकी

नहीं मिलती मालूम नहीं कि इसमें क्या बला थी, जो उसे पाताल में ले गई।

सं० १९१६ में प्रकाशित शुक्र वहत्तरी का एक उद्धरण यहाँ दिया जाता है जिसके लेखक का पता नहीं है :—

एक चंपावती नगरी रही वहाँ सत्य शर्मा ब्राह्मण रहता था भार्या धर्म शीला रही जिसके बेटे देव शर्मा विद्यावंत गुणवंत थे परंतु माता पिता की सेवा न करते देशांतरों को गए विद्या बहुत पढ़ा महा तपस्वी हुए तीर्थ यात्रा बहुत किया एक दिन तीर्थ को जाते थे राह में धूप लगी तब शिरस के नीचे खड़े हुये उस वृक्ष के ऊपर बगली बगला बैठे रहे सो वह बगली उस तपस्वी के माथे पर बीठी किया तब ब्राह्मण को क्रोध हुआ देखते ही दोनों भस्म हुए तब ब्राह्मण आगे चला मन में खुश भया कि तपस्या पूरी भई।

सं० १९१७ में प्रकाशित 'नल प्रसंग' नामक रचना दाऊ जी अग्निहोत्री कृत है और काशी से प्रकाशित है। इसका भी एक उद्धरण यहाँ दे दिया जाता है :—

राजा रितुपर्न ने यह सुनकर सकुचते २ राजा नल से मुलाकात कर कहा आप हमारा अपराध क्षमा करो तब राजा नल ने कहा हम आपके यहाँ बहुत प्रसन्न से रहे यह आप हमसे क्या कहते हैं तब रितुपर्न राजा प्रसन्न होके बोला आप भाग्यमान हो बड़े भाग्य से दमयन्ती आपको फिर मिली आप हमारे यहाँ अज्ञात रहे तिस पर भी हमसे आपका कुछ अच्छा न हुआ होगा तो अपराध भी न भया होगा हमने अपने जान में तो आपको प्रसन्न ही रक्खा है।

यद्यपि उक्त प्रकार की कुछ रचनाएँ प्राप्त हैं पर लल्लूलाल जी आदि के बाद प्रायः साठ वर्ष तक गद्य की वह परंपरा बराबर नहीं चली और इसका वास्तविक आरंभ भारतेंदुकाल ही में हुआ। इसी काल में हिंदी पत्र पत्रिकाओं का भी प्रचार बढ़ने लगा। इस काल के पहिले के जिन हिंदी पत्रों का पता चला है उनमें तीन कलकत्ते से प्रकाशित हुए थे। पहिला उदंत-मार्तंड था, जो ३० मई

सन् १८२६ को आरंभ हुआ और डेढ़ वर्ष चलकर बंद हो गया। दूसरा बंगदूत ९ मई सन् १८२९ ई० को निकला, जिसके राजा राम मोहनराय व्यवस्थापक थे। इन दोनों की भाषा में बंगला का प्रभाव स्पष्ट है। तीसरा समाचार सुधावर्षण था, जो बहुत दिनों तक चला। इसके अंश सन् १८५५ ई० से सन् १८६८ ई० तक मिलते हैं। इनमें से दो पत्रों से कुछ उद्धरण नीचे दिए जाते हैं:—

१. अंगरेजी १८२६ साल १६ मे को सरकार कंपनी अंगरेज बहादुर ओ ब्रह्मा के बीच में परस्पर संधि हो चुकने के प्रसंग से यह दरबार शोभनागार हो के श्री श्री मान लार्ड एमहर्स्ट गवर्नर जेनरल बहादुर के साक्षात से मौलवि महम्मद खलीलुद्दीन अवध विहारी बादशाह की ओर से वकालत के काम पावने के प्रसंग से सात पारचे की खिलअत ओ...कृत कृत्य हुए।

(उद्धृत मार्टेण्ड)

२. आपलोग अत्यंत आदर से पत्रिका देखकर और अच्छी अच्छी बातें और खबरें लिख के छापो कहि के हमलोगों को उत्साह देके अनेक पत्रिका छपवाकर अपने अपने देशों में भेज के पत्रिका बढ़ावने से हम लोगों को बड़ा संतोष होगा। आप लोगों की कीर्ति लक्ष्मी विद्या बढ़ती होने के लिए ईश्वर के निकट निसि दिन सोते जागते हम लोग प्रार्थना करते हैं।

(समाचार सुधावर्षण)

इसके बाद सं० १९०२ में राजा शिवप्रसाद ने 'बनारस अखबार' और सं० १९०७ में तारा मोहन मित्र ने सुधाकर पत्र काशी से निकाला, जिनमें प्रथम में उर्दू का पुट अधिक था और दूसरा शुद्ध हिंदी था। सं० १९०९ में आगरा से बुद्धिप्रकाश पत्र निकला, जो कई वर्ष चला। इसके संपादक कोई अन्य मुं० सदासुखलाल थे। इनके अनंतर भारतेन्दु बाबू हरिश्चंद ने कविवचन सुधा, हरिश्चंद्र मैगजीन, बाला-बोधिनी आदि निकालीं तथा अन्य कई सज्जनों ने कई पत्र पत्रिकाएँ प्रकाशित कीं, जिन सबका विवरण देना यहाँ ध्येय नहीं है।

उपसंहार

हमें यह ठीक स्मरण है कि स्व० लाला भगवानदीन जी के काशीस्थ साहित्य-विद्यालय के एक वार्षिक अधिवेशन में स्वर्गीय मुं० प्रेमचंद जी ने कहा था कि 'हिंदी में प्राचीन साहित्य ही कहाँ है, ब्रजभाषा-अवधी का साहित्य हिंदी का साहित्य नहीं है।' यह कथन एक दम नया नहीं है और इससे पचास वर्ष से अधिक पहिले बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री भी घूम घूम कर कहते फिरते थे कि अभी हिंदी में कविता हुई कहाँ ? 'सूर, तुलसी, बिहारी आदि ने जिसमें कविता की है वह तो भाषा है, हिंदी नहीं।' इस पर पं० रामचंद्र शुक्ल ने अपने हिंदी साहित्य का इतिहास में आक्षेप किया है कि 'संभव है इस सड़े गले ख्याल को लिए अब भी कुछ लोग पड़े हों।' पर वह कथन यद्यपि कर्णकटु है और खड़ी बोली से ब्रजभाषा-अवधी का अलगाव प्रकट करता है, जो उचित नहीं है, पर तब भी कुछ तथ्य लिए हुए हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि हमारे साहित्य-भांडार में क्या है और क्या नहीं है, कम है या अधिक है इसका कोई लेखा-जोखा पूर्णरूपेण अब तक नहीं रखा जाता रहा और इसीसे ऐसी भ्रमपूर्ण बातें मुख से निकल जाती हैं। कुछ ऐसी ही अन्य भ्रांतिमय बातों का उल्लेख इस पुस्तक के प्रथम प्रकरण में किया जा चुका है और यथाशक्ति उसका परिहार भी किया गया है।

यह तो निश्चय ही सर्वमान्य था और है कि भारतेन्दु-काल ही खड़ी बोली का उत्थानकाल था और वर्तमान-काल में उसीका

* अत्यंत शोक की बात है कि इस पुस्तक के छपते समय मित्रवर शुक्ल जी का माघ शुक्ल ६ संवत् १९९७, रविवार को रात्रि में काशीवास हो गया।

दौरादौर है जिसका विवरण प्रायः सभी साहित्येतिहासों में विस्तार से लिखा मिलता है, अतः उक्त कथन भारतेंदु-काल से पूर्व के खड़ी बोली हिंदी के साहित्य के अभाव को मानकर ही किया गया है। इस कारण इस इतिहास के लिखने का यही ध्येय रहा है कि भारतेंदु-काल के पहिले खड़ी बोली हिंदी में जो कुछ साहित्य, थोड़ा या बहुत, प्राप्त हो उसी पर प्रकाश डाला जाय और वही यथासाध्य किया गया है तथा भारतेंदु-काल और वर्तमानकाल छोड़ दिया गया है। ❀

भारतेंदु-काल में गद्य के लिए तो खड़ी बोली हिंदी ही पूर्ण-रूपेण स्वीकृत हो गई और इसका प्रचार बराबर होता चला गया। न इसके लिए कभी किसी प्रकार का विवाद उस समय उठा था और न अब है, परंतु काव्य-संबंधी भाषा के लिए बहुत दिनों तक यह विवाद चलता रहा। प्राचीन काव्य भाषा का माह बहुत दिनों तक बना रहा क्योंकि उसीमें हमारा बहुत बड़ा साहित्य प्रस्तुत है, जिसका अनुशीलन करना प्रत्येक हिंदी-साहित्य-सेवी के लिए आवश्यक तथा अनिवार्य है। साथ ही कविता करने में खड़ी बोली से ब्रजभाषा में शब्दों की अनेकरूपता के कारण सुविधा भी रहती है। गद्य के लिए ऐसी कोई रुकावट न थी, जिससे उसके लिए खड़ी बोली प्रायः सर्वसम्मत रूप में स्वीकृत कर ली गई। इसी खड़ी बोली में पत्र-पत्रिकाओं का प्रचार बढ़ने लगा, शिक्षा के लिए पाठ्य-ग्रंथों का प्रणयन होने लगा तथा इतिहास, जीवनी, वैद्यक, ज्योतिष आदि अनेक गहन विषयों पर ग्रंथ निर्मित होने लगे। इस प्रकार अब तक खड़ी बोली में बहुत कुछ गद्य-साहित्य तैयार हो गया है पर क्या वह संतोषजनक है और आजकल के

* इस पुस्तक के प्रकाशक के यहाँ से प्रकाशित 'आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास' इन दोनों कालों के साहित्य पर ही लिखा गया है, जो पठनीय है।

वर्तमान विचार-परिवर्तनों, एतद्देशीय तथा अंतर्राष्ट्रीय के अनुकूल साहित्य इसमें तैयार हो रहा है या नहीं इस पर भी विचार करना आवश्यक है।

हमारे सुशिक्षित मातृभाषा-भाषियों का हिंदी पर कितना प्रेम है तथा उनका अंग्रेजी पर कितना ममत्व है इस पर बाहरी लोगों की राय श्रवणीय है।

‘हिंदुस्तान में शिक्षा’ पर सन् १८३८ ई० में सर चार्ल्स ट्रेवेलियन ने जो लेख लिखा था, उसमें कहा है कि ‘हमारा मुख्य उद्देश्य मनुष्यों के एक ऐसे वर्ग को उत्पन्न करना है, जो योरोप की विद्या को एशिया की जनता को उन्हींकी भाषाओं द्वारा समझने योग्य बना सके।’ इसीके दूसरे वर्ष गवर्नर-जनरल लॉर्ड ऑकलैंड ने टिप्पणी की थी कि ‘मैं यह कहने के लिए रुका नहीं कि देशी रचनाओं में भाषा की स्वच्छता तथा सौष्ठव की ओर विशेष रूप से उच्चकोटि के विद्यालयों में ध्यान दिया जाना चाहिए।’ लॉर्ड हैलिफैक्स के बृहत् शिक्षा-संबंधी आयोजन के पचीस तीस वर्ष बाद सर चार्ल्स पील ने, जो बंबई प्रांत के सन् १८६९-७२ ई० तक शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर थे, आक्षेप किया था कि ‘विश्व-विद्यालय के विद्यार्थियों ने अपनी भाषा में लिखने की जो अनिच्छा प्रकट की है, वह केवल उनके उस पर अपूर्ण अधिकार के ज्ञान के कारण ही कहा जा सकता है। ऐसी विचित्र अनिच्छा, देशभक्ति का ऐसा निरुत्साहपूर्ण अभाव समझ के परे है यदि अंग्रेजी भाव को देशी भाषा में रूपांतरित करना, जैसा कि होना चाहिए, आनंददायक कार्य होता और न कि, जैसा कि मैं शंका करता हूँ कि है, श्रमसाध्य तथा घृणोत्पादक व्यापार।’ क्या सत्तर वर्ष पहिले किया हुआ यह आक्षेप आज असत्य हो चुका है ? नहीं, और न शीघ्र होने की ऐसी आशा है। योरोप की अन्य

भाषाओं को जाने दीजिए, केवल अंग्रेजी ही को लीजिए, जिससे हिंदी-भाषियों का संसर्ग हुए एक शताब्दि से कम नहीं हुआ तथा यहाँ अंग्रेजी भाषा के अच्छे अच्छे विद्वान् भी हुए पर उनके द्वारा उस भाषा की उच्चकोटि के कितने साहित्य-ग्रंथों का आस्वादन करने का अवसर केवल हिंदी जाननेवालों को मिल सका ? कुछ कहानी, उपन्यास तथा नाटकों को छोड़ और अंग्रेजी के किस ग्रंथ का हिंदी रूपांतर प्राप्त है, यह अपने हिंदी-साहित्य के किसी भी इतिहास को उठाकर देखने से ज्ञात हो जायगा । केवल हिंदी जाननेवाला यह भी नहीं जान सकता कि अंग्रेजी-साहित्य में जासूसी कहानियों के सिवा कुछ और है या नहीं क्योंकि अंग्रेजी साहित्य का एक साधारण-सा इतिहास भी हिंदी में अब तक न लिखा जा सका । प्रायः यही हाल अन्य भाषाओं के साहित्यों का है । विदेशीय भाषाओं को छोड़िए, भारतीय भाषाओं ही को लीजिए, तो उन्हींमें कितनों ही के साहित्य हिंदी-भाषियों के लिए अछूते पड़े हैं; जब कि हम देखते हैं कि अंग्रेजी में संसार की स्यात् ही ऐसी कोई भाषा बची हो, जिसके उच्चकोटि के साहित्य-ग्रंथों का रूपांतर, संचित संस्करण या आशयमात्र ही न तैयार कर लिया गया हो । भारत ही के संस्कृत, पाली आदि तथा बाहरी अरबी, फारसी आदि अन्य भाषाओं के अनेक विषयों के ग्रंथों के अंग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत हैं और हमों लोग मूल ग्रंथ न देख सकने पर उनके अंग्रेजी अनुवादों से काम चला लेते हैं, पर उनको हिंदी में रूपांतरित करने का विचार भी नहीं लाते । इस अभाव का कारण ढूँढ़ने चलते हैं तो अपना दोष, अपनी निर्बलता आदि छिपाकर दूसरों पर दोष मढ़कर संतोष कर लेते हैं; पर देखा जाता है कि अंग्रेजी-भाषा पर इतना ममत्व यहाँ के लोगों का बढ़ गया है कि बड़े-बड़े विद्वान् अपनी रचनाएँ अंग्रेजी ही में लिखते हैं और किसी ने बड़ी कृपा की तो कभी

बाद को दूसरों से उसका हिंदी अनुवाद कराकर प्रकाशित करा देते हैं। मातृभाषा के प्रति कितनी अवज्ञा इसमें भरी है, यह वं स्यात् समझ नहीं पाते। भारतीय विश्वविद्यालयों की जितनी मुख-पत्रिकाएँ निकलती हैं, उन सबकी भाषा अंग्रेजी ही है; केवल कहीं कहीं नाम को दो चार पृष्ठ भारतीय भाषाओं के भी सटा दिए जाते हैं। यदि ऐसी संस्थाओं से निकले हुए विद्यार्थीगण मातृभाषाओं के प्रति उपेक्षा दिखलावें तो आश्चर्य ही क्या है? इतना केवल उदाहरण स्वरूप में दे दिया गया है, नहीं तो इस विषय पर बहुत कुछ लिखा जा सकता है।

उक्त विचार से दो बातें तो बिल्कुल स्पष्ट हैं, पहिली यह कि अंग्रेजी के लब्धप्रतिष्ठ विद्वानों की रुचि अपनी मातृभाषा में कुछ लिखने की ओर प्रायः नहीं के समान है और दूसरी यह कि केवल हिंदी के ज्ञाता को साहित्यकार होते भी साधन नहीं मिलता, तब ऐसी अवस्था में हिंदी-साहित्य का समय के साथ प्रगतिशील बने रहना कहाँ तक संभव है? माता को पूत, सपूत या कपूत ये ही होते हैं। पैतृक सम्पत्ति की रक्षा करते हुए उसे बनाए रखनेवाला पूत, उसकी उन्नति करनेवाला सपूत और उसका नाश करनेवाला कपूत कहलाता है। मातृभाषा हिंदी को सौभाग्य या दुर्भाग्य से तीनों ही प्राप्त हैं पर सपूत दूसरी के हो रहे हैं और कपूत उसके नाम तक का नाश करने पर जुट गए हैं; वच रहे पूत वे उसकी रक्षा करने ही में व्यग्र रहते हैं। अब उन्नति हो कैसे, प्रगति आवे कहाँ से? किसी प्रकार उसकी रक्षा ही होती रहे, वही बहुत है। बहुत हुआ अपनी संचित निधि के समान ही कुछ और रचना तैयार कर संगृहीत कर लिया जाता है।

यह अवश्य ही खेद की बात है कि उच्चकोटि के गंभीर विषयों के ग्रंथों की माँग नहीं है और साहित्यकारों तथा प्रकाशकों

का ग्रंथों को लिख तथा छापकर अलमारियाँ भरने से काम नहीं चल सकता; पर तब भी राष्ट्र-भाषा हिंदी के साहित्य-सेवियों तथा साहित्यिक संस्थाओं और प्रकाशकों का उत्तरदायित्व बहुत बढ़ा हुआ है तथा उन्हें उसे पूरा करने में सतत प्रयत्नशील रहना चाहिए। एक बात इसीके साथ यह भी कहने योग्य है कि सुशिक्षित तथा उच्चकोटि के समाज में यह आशंका बनी हुई है कि हिंदी में उन लोगों के पढ़ने योग्य ग्रंथ प्राप्त हैं या नहीं। प्रायः ऐसे लोग पूछ बैठते हैं कि हिंदी में अमुक विषय पर पढ़ने योग्य कोई ग्रंथ है; या कदाचत् ही कर बैठते हैं कि हिंदी में अभी उन लोगों के पढ़ने योग्य पुस्तकें ही कहाँ हैं? ऐसी अवस्था में उन्हें उत्तर ही क्या दिया जा सकता है, जब अभाव वास्तविक हो। किसी भी वस्तु के होने तथा उसके प्रदर्शन किए जाने ही पर ग्राहक मिल सकते हैं, पहिले नहीं।

अभावों की ओर दृष्टि फेरते ही पहिले यह विचार उत्पन्न होता है कि अभावों का पता किस प्रकार लगाया जाय। साधारणतः जब किसीको किसी वस्तु की आवश्यकता पड़ती है और वह अप्राप्त होती है, तभी उसका अभाव खटकता है और उसकी पूर्ति करने का विचार होता है। या जब कोई अपनी वस्तु को दूसरे की वस्तु से घटकर पाता है तब वैसी या उससे बढ़कर उसे बनाने की चेष्टा करता है। हमारे साहित्य-भांडार में कुछ कमी है, इसे हम समझते हैं, इस पर वाद-विवाद भी होते हैं और उसे पूरा करने का विचार भी रखते हैं; पर किस-किस क्षेत्र में क्या क्या कमी है इसे पूर्ण-रूपेण समझने के लिए यह आवश्यक है कि औरों के भांडार का भी हमें कुछ पता हो। हमारे साहित्य से बढ़कर या अधिक किस अन्य साहित्य में क्या क्या प्राप्त है, इसका पता पाने पर हम अपनी कार्यावली को स्थिर कर सकते हैं

और यथाशीघ्र उसे पूर्ण भी कर सकते हैं; पर ऐसा साधन भी हमारे पास उपलब्ध नहीं है। हिंदी में, उसके राष्ट्रभाषा हो जाने पर, भारत की प्रायः सभी भाषाओं के साहित्यों के इतिहास, संक्षिप्त ही सही, होने अत्यावश्यक हैं; और इनके सिवा अंग्रेजी, फारसी आदि ऐसी भाषाओं के साहित्येतिहासों की भी आवश्यकता है, जिनसे हमारा बराबर संपर्क है। यदि इनके सिवा संसार की अन्य उन्नत भाषाओं के साहित्यों का इतिहास भी हम प्रस्तुत कर सकें तो 'अधिकस्य अधिकम् फलम्'। ऐसे इतिहासों के तुलनात्मक अध्ययन करने पर हमें अपनी सभी कमी का एक साथ परिचय प्राप्त हो सकेगा और तब उसकी पूर्ति का हम उपाय कर सकेंगे। इस कार्य के लिए विशेष परिश्रम की भी आवश्यकता न पड़ेगी, क्योंकि अंग्रेजी में ये सब साधन प्राप्त हैं। कोई भी संस्था या बड़ा प्रकाशक एक ऐसी पुस्तकमाला निकाल सकता है, जिससे यह कमी शीघ्र पूरी हो जाय।

दर्शन-शास्त्र, गणित, ज्योतिष, धर्मशास्त्र, कला आदि पर जब अंग्रेजी में तथा अन्य विदेशी भाषाओं में उत्तम से उत्तम ग्रंथ प्रस्तुत हैं तब हिंदी में, दैवकोप ही कहिए कि, उनका प्रायः अभाव सा है। जिन धर्म-ग्रंथों से हमारा नित्य नैमित्तिक धार्मिक तथा सामाजिक कार्य चल रहा है, उसके भी अच्छे संस्करण हिंदी में अप्राप्त हैं। 'हिंदुत्व' क्या है, किन बातों में वह सुरक्षित है, उसके क्या मुख्य तथा गौण धर्म हैं, अनेक जातियों तथा उपजातियों में विभक्त होते भी उनमें किस बात की एकता है, उसके उत्कर्ष के लिए कौन से उपाय सफल होंगे आदि इन सब बातों पर विचारपूर्ण लेखों या पुस्तकों का अभाव है। हिंदुत्व की रक्षा ही में हिंदी तथा हिंदुस्तान की रक्षा है, यह हमारा मूल मंत्र होना चाहिए।

इतिहास-विभाग की ओर देखा जाय तो वहाँ भी बहुत कमी है।

यह भारत ही के इतिहास के संबंध की पुस्तकों के लिए कहा जा रहा है, अन्य देशों के इतिहासों का तो यहाँ पता भी नहीं है। अंग्रेजी में इतिहास पर तो अनेक मालाएँ निकल गई हैं और उनकी खपत भारत ही में कम नहीं है, पर यहाँ माँग का अभाव बतलाकर इस ओर अप्रसर होने का विचार भी मन में नहीं आता। हो सकता है कि परदासता-प्रिय स्वभाव के कारण यहाँ वाले बाहरी वस्तु पर, अंग्रेजी में लिखे गए ग्रंथों पर, अधिक ममत्व दिखलाते हों पर जो लोग केवल हिंदी के ज्ञाता हैं, उन्हें तो रुचि होने पर ऐसे हिंदी ग्रंथों को लेना ही पड़ेगा। भारत एक बहुत बड़ा प्रदेश है और इसकी सभ्यता का इतिहास भी बहुत प्राचीन है। इस देश ने धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक आदि अनेक प्रकार के बहुत से हेर-फेर तथा विप्लव देखे हैं। इन सबके इतिहास को दस पाँच जिल्दों में सांगोपांग विस्तार के साथ लिखकर बंद करना कदापि संभव नहीं है। केवल संक्षिप्त रूप ही में साध्य है। अंग्रेजी में भारतीय इतिहास तथा उसके साधनों पर जितने ग्रंथ उपलब्ध हैं, उनसे एक अच्छा खासा पुस्तकालय तैयार हो सकता है, पर हिंदी में इधर ही कुछ अच्छे ग्रंथ निकल सके हैं और ऐसा वैयक्तिक रूप में हुआ है सामूहिक रूप में नहीं। ये प्रयास भी प्रधानतः राजस्थान ही की ओर हुए हैं और उसी प्रांत के इतिहास पर। हिंदी में अभी भारत के अनेक प्रांत, विभाग, राजवंश, जाति आदि पर नाम के लिए भी कोई पुस्तक नहीं लिखी जा सकी है। भारत सुप्रसिद्ध सम्राटों, महान् वीरों तथा महान् आत्माओं से खाली नहीं रहा है; पर हिंदी साहित्य-भांडार अवश्य ही इनके जीवन-चरित्रों से रिक्त है। किस किस को कहे। सुना है कि काशी का 'भारत-इतिहास परिषत्' एक विराट् आयोजन कर रहा है भारत के सांगोपांग इतिहास लिखने का। यह लिखा जायगा स्वदेशी विद्वानों द्वारा

पर विदेशीय भाषा में केवल सुविधा की दृष्टि से। खैर, नहीं से कुछ अच्छा ही है।

हिंदी-साहित्य क्षेत्र में अंग्रेजी के समान बड़े बड़े ग्रंथों के लिखे जाने का अभी अनवसर ही कहा जा सकता है, इस लिए ऐसी दो एक मालाएँ निकाली जा सकती हैं, जिनमें एक में भारत के प्राचीन, अर्वाचीन तथा वर्तमान काल के सम्राटों, वीरों तथा युग-प्रवर्तकों की जीवनियाँ प्रकाशित की जायँ। इस प्रकार की अंग्रेजी में 'रूलर्स ऑव इंडिया सीरीज' है। दूसरे में प्रांत विशेष, जाति विशेष आदि के इतिहास हों, जैसे बंगाल, गुजरात आदि तथा सिख, मराठा आदि। कुछ मूल साधनों का भी हिंदी में अनुवाद आवश्यक है और इस ओर नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की देवीप्रसाद ऐतिहासिक ग्रंथमाला कुछ कार्य कर रही है। ऐसे कुछ ग्रंथों के निकल जाने पर ही भारत के विशद सांगोपांग इतिहास लिखे जाने का समय आवेगा।

वास्तव में देखा जाय तो भारतेतिहास के लिए साधन की कमी नहीं है। वे सब अनेक भाषाओं में प्राप्त हैं और केवल उनके अंग्रेजी अनुवादों के हिंदी रूपांतर से काम नहीं चल सकेगा। मूल भाषा ही से अनुवाद होना आवश्यक है, इसलिए ऐसे कार्य के लिए मूल तथा अनुवाद की भाषाओं के ज्ञाताओं ही को इस ओर अग्रसर होना चाहिए।

हिंदी-साहित्य-भांडार के न्याय विभाग में प्रायः कुछ भी नहीं प्राप्त है। जिस मिताक्षरा पर सारा 'हिंदू ला' बना है, उसका भी कोई अच्छा हिंदी संस्करण प्राप्त नहीं है। साहित्यिकों को 'कापी राइट एक्ट' का बराबर ही काम पड़ता रहता है पर उसका भी कोई हिंदी संस्करण अब तक तैयार नहीं हो सका है। स्वराज्य मिलने पर न्यायालयों का कार्य क्या स्वदेशी भाषा में न होकर

विदेशी भाषाओं ही में हुआ करेगा ? या किसी मंत्र-तंत्र के जोर से एक ही दिन में सब तैयार हो जायगा । यह अवश्य है कि वर्तमान समय के न्यायालयों में हिंदी में लिखे गए ऐसे ग्रंथों का कोई सम्मान न होगा और ऐसा करने में हिंदी-भाषी सज्जनगण ही प्रधान होंगे पर तब भी जनसाधारण के ज्ञान के लिए ऐसे ग्रंथों की आवश्यकता है । वे अपने स्वत्व आदि को विशेष रूप से मनन कर समझ सकेंगे तथा काम पढ़ने पर अपने वकीलों को आवश्यक बातें समझा सकेंगे ।

आजकल का युग व्यापार का युग है और इसे हम नित्य अनुभव करते हैं पर ऐसे साहित्य के तैयार करने में कभी दत्तचित्त नहीं होते, जिनसे इनके विषय में कुछ ज्ञान भी प्राप्त कर सकें । विदेशों से सैकड़ों प्रकार की चीजें नित्य आती रहती हैं और उन्हें हम उपयोग में लाते रहते हैं; पर वे कैसे बनती हैं, हम भी उन्हें बना सकते हैं या नहीं इस पर ध्यान भी नहीं जाता । क्या ऐसे व्यापार-संबंधी साहित्य की कोई आवश्यकता नहीं है ? कैसा समय है और कैसा समय आ रहा है, यह हम लोग नित्य समाचार पत्रों में पढ़ते हैं और समझते हैं । जिस विपत्ति में इस समय योरोप पड़ा हुआ है वह किसी भी समय हम पर भी आ सकती है । यहाँ हिंदू-मुस्लिम संघर्ष किस रूप में यहाँ वहाँ बराबर चल रहा है और नित्य ही बढ़ता जा रहा है तथा इससे जानमाल की जो क्षति हो रही है, वह अनुभव सिद्ध है । इसका कारण खोजने के लिए प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि उसे समझते हुए भी हम समझना नहीं चाहते । हमें अपनी रक्षा करनी होगी यदि हम अपनी रक्षा करना चाहते हैं और इसके लिए रक्षा के साधनों का जानना आवश्यक है । दासता-काल से पहिले हम जिन साधनों से अपनी रक्षा करते थे, उसे तो भूल ही

गए और इस वैज्ञानिक युग के विनाशकारी साधनों के किस्से कहानी सुनकर या समाचारपत्रों में पढ़कर मनोविनोद कर लेते हैं; पर वे क्या हैं, उनसे कैसे रक्षा की जाती है इन सब बातों को जानने का न प्रयास करते हैं और न वैसे साधन ही अपने साहित्य में उपलब्ध हैं।

साहित्य का मनोरंजक विभाग भी विशेष महत्वपूर्ण है और इस विभाग में नाटक, उपन्यास, कहानी, गल्प आदि आते हैं। मानव जीवन में कथा कहानी कहने तथा सुनने का आरंभ बचपन ही से हो जाता है और अवस्था बढ़ने पर गल्प, उपन्यास आदि लोग बड़े शौक से पढ़ते हैं। ऐसे साहित्य का मनोरंजन के साथ-साथ पाठकों, श्रोताओं तथा दर्शकों के हृदय पर बहुत प्रभाव भी पड़ता है और विशेष स्थायी रूप से पड़ता है। ये कथा-कहानी, गल्प, उपन्यास आदि के कथावस्तु मानव-जीवन ही की भावनाओं को व्यक्त करते हैं, उन्हींके जीवन की नित्यप्रति की अनुभूतियों का स्पष्टीकरण करते हैं तथा उन्हींके चरित्र के चित्र खींचते हैं। पाठक आदि को ऐसा भान होने लगता है कि वे अपने ही इष्टमित्र सगे-संबंधियों के गृह में आ गए हैं और उन्हींके दुख-सुख, पाप-पुण्य आदि में सहयोग करते हुए अनुभव कर रहे हैं। पात्रों के चरित्र, कर्म, अनुभूति आदि का उन पर अनायास ही प्रभाव पड़ता रहता है। धर्म-ग्रन्थों की आज्ञाओं का पालन बलात् करना पड़ता है; पर ऐसे मनोरंजक साहित्य का प्रभाव क्रमशः इस प्रकार मनुष्यों पर पड़ जाता है कि वह उनकी प्रकृति में मिल जाता है तथा वे उसीके अनुसार प्रकृत्या करने लगते हैं। यही कारण है कि धार्मिक ग्रंथकारों से मनोरंजक साहित्य के निर्माताओं का उत्तर-दायित्व किसी प्रकार कम नहीं है।

प्रायः देखा जाता है कि न्याय, दर्शन आदि के गूढ़ सिद्धांत

भी कभी कभी ऐसे छोटे छोटे उपाख्यान, कथा तथा इस मनोरंजक साहित्य में आई हुई सूक्तियों से सहज ही समझा दिए जाते हैं। ऐसी सूक्तियाँ भाव-व्यक्त करने के सहज साधन रूप में प्रायः सुनने में भी आती हैं क्योंकि उनके अभाव में बहुत कुछ व्याख्या करने की असुविधा तथा कष्ट को मनुष्य नहीं उठाना चाहता। ऐसी अवस्था में इस साहित्य के सृजन में भाषा के सौष्ठव, सारल्य तथा बोधगम्य होने पर विशेष दृष्टि रखने की आवश्यकता पड़ती है और साथ ही उसमें वह मनोरंजकता तथा सजीवता होनी चाहिए जिससे वह मधुर लगे और आकर्षक हो।

नाटक इस विभाग का विशिष्ट अंग है और यद्यपि संस्कृत में दो सहस्र वर्ष से अधिक प्राचीन नाटक प्राप्त हैं पर हिंदी में इसकी रचना का आरंभ बहुत आधुनिक काल में हुआ है। इस पर भी जितने नाटक प्राप्त हैं, वे कम नहीं हैं और अभी अनेक नाटककार इसके निर्माण में दत्तचित्त भी हैं। पर समय देखते हुए ऐसा ज्ञान हो रहा है कि अब इन 'चलचित्रों' के सामने, जिनकी उन्नति पूर्ण वेग से हो रही है, नाटकों के अभिनय का होना कुछ दिनों में बंद हो जायगा और उस अवस्था में दृश्य काव्य नाटक की रचना का हास हो जायगा। इनमें कितने चलचित्र नाटकों पर भी बने हैं पर उनके लिए उपन्यास अधिक प्रयोजनीय ज्ञान हो रहे हैं। ऐसी अवस्था में अब जो नाटक निर्मित होंगे वे दृश्य काव्य रूप में न होकर उपन्यास के समान केवल पाठ्य मात्र होंगे।

उपन्यास, गल्प आदि भी हिंदी में अब तक कम नहीं प्रस्तुत हो चुके हैं पर तब भी एक उन्नत साहित्य के अनुकूल वे नहीं बन पाए हैं। वर्तमान काल के सुशिक्षित समाज को लेकर तथा उनके परिवर्तित होते हुए विचारों के संघर्ष आदि का स्पष्टीकरण करने हुए साहित्य की जो आवश्यकता बढ़ रही है, वह पूरी नहीं

हो रही है। घटनापूर्ण उपन्यास अवश्य विशेष मनोरंजक होते हैं पर हिंदी में जासूसी उपन्यासों के सिवा, पहिले के ऐयारी तथा तिलस्मी उपन्यासों को छोड़कर, बहुत कम ऐसे घटना वैचित्र्यपूर्ण उपन्यास तैयार हो पाए हैं। नए-नए अज्ञात स्थानों को खोज निकालते हुए, स्थल-जल युद्धों के बीच तथा इसी प्रकार के ऐतिहासिक सत्यता का आभास लिए हुए उपन्यासों की भी कमी है, जिनसे पाठकों के हृदय में साहसिकता, दृढ़ता तथा जीवन-संकट में भी धीरता धारण करने का भाव उदित हो। तात्पर्य यह कि उपन्यासों में भी अनेक प्रकार की भिन्नता होनी चाहिए, जिससे पाठकगण उनमें से अपनी-अपनी रुचि के अनुकूल पुस्तकें चुन सकें पर हिंदी में इधर के प्रमुख उपन्यासकारों में वर्तमान आंदोलनों का प्रभाव स्पष्ट है; जिससे वे उपन्यास लिखते-लिखते आंदोलनकारी (प्रोपागैंडिस्ट) बन बैठते हैं। ऐसे उपन्यास केवल समय की विशेषता प्रकट करते हैं।

बालकोपयोगी साहित्य भी प्रायः मनोरंजन ही का साहित्य है और इधर कुछ ऐसी पुस्तकें निकली भी हैं, जिनसे छोटे-छोटे बालकों का मन रमे पर केवल सियार पांडे, वगुलाभगत आदि सा पुस्तकों से काम नहीं चल सकता। बालकों के लिए ऐसी कहानियाँ विशेष लाभदायक होंगी जो मनोरंजक होते हुए भी कुछ उपदेश लिए हों और बालकों के चरित्र के उन्नयन में सहायता दें। ऐसी पुस्तकों का प्रायः अभाव है, जो मनोरंजन करते हुए बालकों का ज्ञानवर्द्धन भी करें। संसार के सभी देशों के संक्षिप्त सचित्र विवरण पर कहानी रूप में छोटी छोटी पुस्तकें प्रकाशित की जायँ तो वे विशेष उपादेय होंगी। इसी प्रकार इतिहासों से भी महत्वपूर्ण घटनाएँ चुनकर छोटी छोटी कहानियाँ तैयार की जायँ तो वे मनोरंजन के साथ बालकों के ज्ञान तथा चरित्र पर विशेष रूप से

प्रभाव डालेंगी। विज्ञान के क्षेत्र में आरंभकाल में अनेक विचित्र घटनाएँ घटी हैं और उनपर भी कुछ पुस्तकें लिखी जा सकती हैं। ऐसी पुस्तकें भी लिखी जानी चाहिएँ जिनमें बालकों तथा युवकों ही के साइसपूर्ण कार्यों का आकर्षक रूप में वर्णन हो। अंग्रेजी में इस प्रकार का बाल-साहित्य प्रचुरता से प्राप्त है और उसकी सहायता से अपने देश की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए शीघ्र ऐसी पुस्तकें तैयार की जा सकती हैं।

स्त्रियोपयोगी साहित्य केवल वही साहित्य है, जो विशेष रूप से स्त्रियों ही के काम का हो और जिससे पुरुषों से विशेष संपर्क न हो। यों तो सारे साहित्य पर स्त्रियों का उतना ही अधिकार है जितना पुरुषों का; पर उक्त विशेषता के कारण कुछ साहित्य ऐसा भी है, जो केवल स्त्रियोपयोगी मात्र है, जैसे धात्रीविद्या, पाक-विद्या, सिलाई आदि। अवश्य ही कुछ पुस्तकें इन विषयों पर प्राप्त हैं पर वे समय के अनुकूल पूर्ण संतोषप्रद नहीं हैं।

सबके अंत में कविता के विषय में कुछ लिखा जाता है और ऐसा इसीलिए कि यह साहित्य-क्षेत्र में प्रायः सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। मानव हृदय के सर्वस्व ही की भावुकतामय अभिव्यंजना ही तो कविता है और यही कारण है कि ऐसी रचनाएँ सभी देश-काल के मनुष्यों के हृदयों को स्पर्श करती हुई अमर हो जाती हैं। वे कविताएँ, जो वास्तव में हार्दिक अनुभूति से उद्बलित होकर नहीं निकली हैं और जिनकी अभिव्यक्ति भी भावुकतापूर्ण नहीं है, साधारण सामयिक तुकबंदियाँ हैं, जो केवल मिटने के लिए निर्मित होती हैं। रहस्यवाद हो, छायावाद हो, हालावाद हो या कोई वाद हो, इससे विवाद नहीं है पर इन सब में मानव-हृदय की वेदना, नैराश्य, विषुव, अनंत-असीम के न समझने की चेष्टा आदि के भाव ही अधिकाधिक स्पष्ट किए गए हैं और किए जा रहे हैं; पर इनमें

से अधिकांश के पठन-पाठन से कभी-कभी कुछ ऐसा भान होने लगता है कि ये सब कहीं से उधार से लिए हुए हैं और वास्तविक हृदयस्थ अनुभूति पर निर्गत नहीं हुए हैं। वेदना या दर्द-दिल बहुत सस्ती हो पड़ी है, 'जिसको देखा मुन्तिलाए दर्द-दिल' है, मानो 'शाक भाजी हो गया है दर्द दिल'। उर्दू के इस ढंग के साथ मै (मदिरा) का रंग भी मधुशाला आदि के रूप में चढ़ता जा रहा है। यदि वेदना सच्ची है तो अवश्य ही असर रखेगी पर यदि केवल कहीं से मोल ली हुई है या उड़ाई हुई है तो उसका वैसा ही प्रभाव पड़ेगा। एक बात और खटकती है कि इन कवियों की कृतियों का, कुछ प्रतिभाशाली कवियों की रचनाओं को छोड़कर, परिशीलन करने पर ऐसा भास होने लगता है कि वे बड़े प्रयत्न, परिश्रम तथा अध्यवसाय पर और कोप तथा काव्य ग्रंथों को उलट-पुलट करने पर बन पाई हैं। इनमें कवि-हृदय की झलक नहीं आ पाई है।

समय बहुत बदल गया है। हिंदुत्व, हिंदी तथा हिंदुस्तान आपत्ति के गर्त में पड़ा हुआ है। राष्ट्रीयता, राष्ट्रभाषा आदि की आवश्यकता प्रत्येक भारतवासी अभी तक नहीं समझ रहा है और राष्ट्र का विश्व के साथ क्या संबंध होना चाहिए, इसके भी जानने की आवश्यकता है। कविता-कामिनी का वरदायक हाथ सदा देश का हितकर रहा है और हमें अपने देश के हित-साधन में दत्तचित्त होना अवश्य ही बांछनीय है, अतः इस समय अपने देश को वर्तमान काल के अनुकूल उत्कर्ष-पथ पर अग्रसर कराने-वाली, नैराश्य के बदले आशा का दृढ़ता से संचार करानेवाली, अपनी वस्तुओं के प्रति अवहेलना न दिखलाते हुए तथा समयानुकूल वृत्तियों का परिमार्जन करते हुए उनपर आस्था दृढ़ करानेवाली और अपने श्रोताओं तथा पाठकों में साहस तथा उत्साह का दृढ़ संदेश देनेवाली रचनाओं की आवश्यकता है। केवल अनंत की

ओर देखने से कब तक काम चल सकेगा, जब हम जिस स्थान से ऊपर की ओर दृष्टि रखते हैं उसकी कुछ भी परवाह न करें।

राष्ट्रभाषा हिंदी के उन्नति-मार्ग में इधर कुछ वर्षों से एक नया रोड़ा अटकाया गया है और उसका नामकरण हिंदुस्तानी किया गया है। यह बात कुछ लज्जा की अवश्य है कि इस प्रश्न को उठानेवाले मुख्यतः हिंदू ही हैं और मुसलमानों का, जो भाषा की शुद्धता तथा स्वच्छता के सदा पोषक रहें हैं, इसमें विशेष हाथ नहीं है। यह अवश्य है कि इस हिंदुस्तानी के संघर्ष तथा प्रचार से शुद्ध हिंदी को जितना धक्का पहुँचेगा उतना ही उनकी उर्दू को लाभ है। शुद्ध हिंदी का बहुत कुछ प्रसार भारत में हो चुका है और होता जा रहा है तथा इसी कारण उतना ही उर्दू का प्रचार हिंदू गृहों से कम होता जा रहा है। ऐसी अवस्था में सरल उर्दू रूपी हिंदुस्तानी का प्रश्न उठाना हिंदी के क्षेत्र में भेद-बीज बोना है और इससे यदि कुछ लाभ होना है तो वह हिंदी का न होकर उर्दू ही का होगा। ऐसी अवस्था में यदि कुछ मुसलमान इस हिंदुस्तानी का पक्ष लें तो कोई आश्चर्य नहीं है।

हिंदुस्तानी का यह प्रश्न नया नहीं है और हिंदी-उर्दू के संघर्ष रूप में यह बहुत पुराना है; पर हमलोगों का ध्यान इस ओर विशेष रूप से कभी आकृष्ट नहीं हुआ था क्योंकि दोनों ही बहुत दिनों तक केवल अपनी अपनी उन्नति करने में लगे हुए थे। परंतु जब वह समय आ गया कि एक दूसरे को हानि पहुँचाकर अपनी उन्नति का प्रयास करने लगा तबसे इस विवाद का श्रीगणेश हुआ और ज्यों ज्यों एक को दूसरी की अधिकाधिक उन्नति होती दिखलाई पड़ी त्यों त्यों यह विवाद अधिकतर तीव्र रूप पकड़ने लगा। इधर यह विवाद बहुत बढ़ गया है और यही कारण है कि इसके विशेष फैल जाने से यह नया ज्ञात हो रहा है।

इसी प्रकार इसी विवाद के कारण मौलाना अब्दुल्हक साहब फर्माते हैं कि 'उर्दू जुवान जदीद (नई) हिंदी की तरह किसीने बनाई नहीं, वह तो खुद ब खुद बन गई और उन कुदरती हालात ने बनाई जिन पर किसी को कुदरत न थी।' इससे दो बातें स्पष्ट होती हैं, पहिली यह कि हिंदी एक नई भाषा बना ली गई है अर्थात् कृत्रिम है और दूसरी यह कि उर्दू पुरानी भाषा है और कुदरती तौर पर अर्थात् प्रकृत्या बन गई है। पहिली बात का बहुत लोग कुछ दिनों तक, मौलाना जी के पहिले से भी, समर्थन करते रहे हैं पर वह कितनी लचर, अशुद्ध तथा भ्रमपूर्ण है यह इस पुस्तक के एक पारायण से स्पष्ट हो जायगी। जुलाई सन् १९३७ ई० के अलीगढ़ मैगजीन में लिखते हुए सैयद सुलेमान साहब ने भी इसका समर्थन इस प्रकार किया है कि 'हिंदी के नाम से एक जुवान की तबलीग शुरू हुई। और बाज़ सूबों में यहाँ तक किया गया कि उर्दू ख़त तक अदालतों से खारिज कर दिया गया। और अब वह तहरीक यहाँ तक जोर पकड़ रही है कि यह कोशिश की जा रही है कि 'इस सूबे के चंद शाअरों ने जिस 'भाषा' में कुछ मज़हबी नज़्में कभी लिखी थीं वही पूरे मुल्क की जुवान बनादी जाय।' हिंदी नई कृत्रिम भाषा है, ऐसा कहने का एक यह भी कारण है कि कुछ हिंदीवाले उर्दू को नई तथा कृत्रिम भाषा कहते हैं और उसीके प्रत्युत्तर में दूसरा पक्ष हिंदी को नई तथा कृत्रिम भाषा कहता है।

उर्दू शब्द केवल भाषा के लिए कब प्रयुक्त हुआ है इसके विषय में डाक्टर बेली की धारणा है कि ऐसा प्रयोग मुसहिफी ने पहिले पहल किया है, जिसका रचनाकाल सन् १८२४ ई० तक था। मुसहिफी का शैर इस प्रकार है :—

खुदा रक्खे जुबाँ हमने सुनी है मीरो मिर्जा की

कहें किस मुँह से हम ऐ 'मुसहिफी' उर्दू हमारी है ॥

मौलाना सैयद मुलेमान नदवी लिखते हैं कि 'क्या यह लोग मुझे कोई तारीख की किताब, कोई रोजनामचा या तजकिरा छठी सदी हिजरी से लेकर तेरहवीं सदी हिजरी तक का दिखा देंगे जिसमें यह जबान उर्दू के नाम से लिखी गई हो? हकीकत यह है कि उर्दू का नाम तेरहवीं सदी हिजरी में एकाएक आ गया।' लीजिए, कम से कम एक तारीख की किताब इस समय दिखाई जाती है, जिसे सैयद अब्दुर्रज्जाक नवाँव शाहनवाज खाँ समसामुद्दौला ने बारहवीं सदी हिजरी के मध्य में लिखा था। इसने सिराजुद्दौला अनवरुद्दीन खाँ बहादुर जफरजंग की जीवनी में, जो सन् ११६२ हिजरी में मरा था, लिखा है* कि इसके बड़े पुत्र ने, जिसे उमदतुलुमरा की पदवी मिली थी, 'उर्दू भाषा' में शेर कहे हैं और उसका एक निम्नलिखित शेर भी उस पुस्तक में उद्धृत है:—

हमें जुदा करे तुझसे जमान: या न करे।

किसी के करने न करने से क्या खुदा न करे ॥

उक्त शेर दो सौ वर्ष पहिले उर्दू कही जानेवाली भाषा का कितना सुंदर नमूना है और उसी प्रकार वह ठीक-ठीक आज की कही जानेवाली हिंदुस्तानी का उदाहरण भी है। इस प्रकार देखा जाता है कि पहिले के हिंदी-उर्दू का संघर्ष अब हिंदी-हिंदुस्तानी संघर्ष का रूप ले रहा है। दो सौ वर्ष पहिले के हिंदुस्तानी या उर्दू में से हिंदीपन अर्थात् यथासाध्य हिंदी शब्दावली, वाक्ययोजना, भाव आदि सभी का निराकरण कर तथा विदेशीपन यथास्थान भरकर उसे एक दम विदेशी ढाँचे में ढाल दिया गया है और उसे मुसल्मानों ने अब अपनी संस्कृति तथा धर्म की निजी भाषा मान लिया है। ऐसी भाषा केवल कुछ पढ़े लिखे लोगों ही में प्रचलित

* मआमिरुलुमरा फारसी भाग २ पृ. ५३०।

है, साधारण लोगों में न उसका कभी प्रचार था और न है तथा यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि भारत में निरक्षरों की संख्या बहुत है। अब इसी दुरूह फारसी-अरबी गर्भित भाषा उर्दू के पूर्व रूप का पुनः आह्वान कर एक नया द्वंद्व उपस्थित किया जा रहा है, जो अनर्गल तथा व्यर्थ है और जानबूझकर पैदा किया गया है।

यह प्रश्न क्यों उठाया गया है, इसका कारण यह बतलाया जाता है कि राष्ट्रभाषा ऐसी होनी चाहिए, जिसे हिंदू तथा मुसल्मान दोनों समझ सकें और आपस के सब व्यवहार उस भाषा को माध्यम बनाकर पूरा कर सकें। इसलिए यह आवश्यक है कि हिंदी तथा उर्दू के मेल से बनी हुई एक सरल भाषा 'हिंदुस्तानी' का प्रचार किया जाय। ठीक है, पर साथ ही एक यह विचार भी उत्पन्न होता है कि संयुक्त-प्रांत से बंगाल में मुसल्मान हिंदुओं की अपेक्षा बहुत अधिक हैं और गुजरात, महाराष्ट्र आदि देशों में भी हिंदू-मुसल्मान ही बसते हैं, पर उन सब प्रांतों में वहाँ की भाषा ही से सबका काम चल जाता है और किसी मिश्रित भाषा की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसी प्रांत में दैवकोप ही से कहिए कि इस भगड़े ने पुराना होकर अच्छी प्रकार जड़ पकड़ लिया है और यह शीघ्र मिटने का नहीं है। इसका एक मुख्य कारण यह है कि मुसल्मान अपने को फातेह (विजयी) तथा हिंदुओं को अपना मफतूह (विजित) समझते हैं और इसीसे वे अपनी सभी बातों में कुछ निरालापन रखना चाहते हैं जो उनके रहन-सहन, खान-पान सभी में स्पष्ट है। ऐसी अवस्था में राष्ट्रभाषा के विषय में वे क्यों समान होने लगे। सर सैयद अहमद खाँ उर्दू को फातेहों की और हिंदी को मफतूहों की भाषा मानते थे तथा हिंदी की उन्नति देख कर एक स्थान पर कुछ जली कटी भी सुना गए हैं। सुनिए—“तमाम अदालतों की ज़बान और खत बिलकुल हिंदी और नागरी कर दिए जायँ

ताकि मुसलमानों की हालत ऐसी अबतर और खराब हो जावे कि उनकी तमाम चीजों और तमाम जरूरियातें बिल्कुल नेस्त और नाबूद हो जावें और किसी किस्म का रोजगार उनको मयस्सर न हो।” गुजरात, बंगाल आदि में वहाँ की भाषाओं के अदालतों में प्रचलित होने से क्या वहाँ के मुसलमानगण नेस्त और नाबूद हो गए, जो यह व्यंग्य इसी प्रांत के लिए कसा गया है। उन प्रांतों की भाषा तो विशेष रूप से संस्कृत-गर्भित है। ऐसी अवस्था में वहाँ के मुसलमानों में अपनी निजी भाषा, मफतूहों की भाषा से भिन्न, गढ़ने के प्रति अनास्था क्यों थी और है ?

वास्तव में जब विदेशी मुसलमान भारत में आए तब उनकी भाषा भी विदेशी थी और पहिले पहिल यहाँ उन्हें पंजाब तथा संयुक्त-प्रांत की भाषाओं से काम पड़ा। दिल्ली प्राचीन काल से अब तक भारत की राजनगरी रही है और मुसलमान सुलतानों तथा बादशाहों की तो बराबर ही रही। राजा तथा प्रजा और विदेश से आए हुए तथा यहाँ के निवासियों में संपर्क के लिए आवश्यकतावश एक ऐसी भाषा बन गई, जो दोनों की भाषाओं का मिश्रण था। हिंदी सुबोध थी और बहुत अधिक लोगों की भाषा थी अतः वह मुख्यांश रही तथा विदेशी भाषाओं के शब्दों का केवल उसमें प्रयोग होता रहा; वह फारसी-अरबी शब्दों-युक्त हिंदी ही रही। यह अवश्य ही इस प्रकार ‘कुदरती तौर पर’ उस समय बन गई, नहीं तो स्यात् अब बन न पाती और शुद्ध फारसी-अरबी ही का उपयोग होता। खैर, किसी प्रकार बन जाने पर विभिन्नता-प्रेमी फातेहों के हाथ में वह एक खिलौना सी मिल गई, जिसे हर प्रकार से विदेशी परिधान देकर उन्होंने उसे अपनी एक निजी भाषा समझ लिया और उसके प्रचार का एक आंदोलन खड़ा कर दिया। अन्य प्रांतों में ऐसी कोई भाषा बनी नहीं और

इसलिए वैसा आंदोलन नहीं हुआ पर अब इसी उर्दू या हिंदुस्तानी का आंदोलन भारतव्यापी बनाया जा रहा है।

हाँ, तो यह स्पष्ट है कि जिस कार्य के लिए उर्दू भाषा या उसका पूर्व रूप रेख्ता या दक्खिनी अर्थात् उर्दू-हिंदी आवश्यकता-वश स्वतः बन गई, उसने अपना कार्य कई शताब्दियों तक अच्छी प्रकार निबाहा और अब भी वास्तव में निबाह रही है; पर कुछ सुशिक्षितों, 'नज्बा और शुरफा' तथा शाअरी के मैदान के दंगलियों, ने एक निश्चय बनाकर 'शब्बार की मद्दाही में' सात सात सैकल कर गंगा जमुनी के मेल को सफाचट कर दिया तथा उर्दू-हिंदी को उस अवस्था में पहुँचा दिया कि वह जिस कार्य के लिए बनी थी उसे पूरा करने योग्य नहीं रह गई। वह केवल साहित्यिक-कार्य के उपयुक्त तथा सुशिक्षितों के आपस की बातचीत के योग्य ही रह गई। यहाँ तक तो खैर कोई बात न थी, प्रत्युत् प्रसन्नता की बात है कि वे अपनी भाषा तथा साहित्य की परंपरा को अलग रखना चाहते हैं। इससे भारत के अनेक साहित्यों में एक संख्या और बढ़ जाती है, जिससे हमारे मनोरंजन तथा ज्ञान-वर्द्धन का एक मार्ग और खुल जाता है। साथ ही उर्दू-साहित्य से हमें फारस, अरब, एराक आदि की बहुत सी ऐसी बातों का विवरण मिलता है जिन्हें न उनका वर्णन करने वालों और न पाठकों ही ने देखा है तथा न अनुभव किया है। जिस प्रकार संस्कृत, हिंदी, बंगला, अंग्रेजी आदि के साहित्यों का आस्वादन किया जाता है उसी प्रकार उर्दू-साहित्य का भी किया जाता है। धर्मांधता से निरोग सभी साहित्य-प्रेमी अपने भाषा-ज्ञान के अनुसार सभी साहित्यों का आनंद ले सकते हैं और लेते ही हैं; पर जो उक्त रोग से ग्रस्त हैं, वे ही विशिष्ट कारणवश हिंदी सी सहज सुबोध भाषा के साहित्य का आनंद नहीं ले पाते।

हाँ, तो यह भी विचारणीय है कि हिंदू-मुसलमानों के आपस के विचार-विनिमय के लिए दो भाषाओं के मेल से जो भाषा छ सात शताब्दियाँ पहिले 'कुदरती तौर पर' बनी थी वह तो क्रमशः रूप बदलते हुए एक पक्ष की भाषा बन गई और अब पुनः इस भाषा तथा हिंदी के मेल से एक नई अन्य भाषा हिंदुस्तानी उक्त कार्य ही के लिए गढ़ी जाने का आंदोलन उठाया गया है, पर कौन कह सकता है कि यह भाषा भी 'शब्बीर के महाहों' के हाथ में पड़कर फिर वही साहित्यिक रूप न ले लेगी। तब क्या तीसरी बार इसी प्रकार की कार्यावली की पुनरावृत्ति होगी। वास्तव में यह हिंदुस्तानी उर्दू ही का कुछ सरल रूप है और इसमें जो कुछ किताबें छप चुकी हैं, उन्हें देखने से ज्ञात होता है कि अब गुरुजी को ओस्तादजी, कौशल्या माता को कौशल्या बेगम आदि कहा जायगा। वास्तव में उर्दू के कुछ हिंदू हिमायती ओस्तादों ने यह एक नया आंदोलन खड़ा कर नाम-अर्जन का एक मार्ग मात्र निकाला है—येन केन प्रकारेण प्रसिद्धः पुरुषो भवेत्। नहीं तो इस तीन तसवे के फेर की आवश्यकता ही नहीं थी।

वास्तव में उर्दू या हिंदुस्तानी दोनों ही हिंदी हैं क्योंकि प्रकृति तो दोनों की वही है। प्रथम की प्रवृत्ति विशिष्ट छद्म धारण करने की हुई, उसने वैसा किया और वह प्रवृत्ति इतनी प्रबल थी कि उसने छद्म ही को वास्तविक और वास्तविकता को भूठ मान लिया। हिंदुस्तानी भी मूलतः वही है पर उसका छद्म अभी साधारण है और इससे वह हिंदी से विशेष भिन्न नहीं होने पाई है। हिंदी तथा हिंदुस्तानी दोनों शब्द समानार्थी भी हैं और ये ही कारण हैं कि उर्दू के स्थान पर हिंदुस्तानी नाम ग्रहण करने में कुछ लोग हिचकते हैं और यदि वे इस नाम को स्वीकार भी करते हैं तो यह कह कर कि 'यह समझना भी दुरुस्त नहीं है कि इस तजवीज़ के पेश

करनेवालों का यह मकसद है कि हम अपनी ज़बान में कोई ऐसी तबदीली कर लें, जिससे वह हिंदी, या हिंदी के करीब बन जाय । हाशा व कला इस किस्म की कोई बात नहीं है बल्कि बर्धन: उसी उर्दू उसी ज़बान उसी बोल चाल को जो हम बोलते हैं हम हिंदुस्तानी समझते हैं ।' जब एक ओर यह आग्रह है तब उसे दूर करने का कोई भी प्रयास सफल नहीं हो सकता और साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि मुसल्मान उर्दू-भाषियों का आग्रह सामूहिक है और रहेगा ।

वात तो कुछ ऐसी है, और हर एक इसे समझता तथा जानता है कि हिंदुओं में बहुत से लोग ऐसे हैं, जो अपनी मातृभाषा उर्दू बतलाने में संकोच ही नहीं करते प्रत्युत् अभिमान ही प्रगट करते हैं; और इसके विपरीत मुसल्मानों में ऐसे लोग, केवल साधारण बोलचाल की हिंदी जानते तथा उर्दू को न समझते हुए भी, स्यात् ही मिलेंगे, जो उर्दू को अपनी मातृभाषा बतलाने में संकोच करें । राम-रहीम के प्रस्ताव को लेकर बहुत से संत उठे पर इतिहास स्पष्ट बतला रहा है कि वे सभी असफल रहे और यही हाल भाषा का भी होगा । प्रत्येक भाषा का प्रयोग आवश्यकतानुसार प्रकृत्या सरल तथा क्लिष्ट दोनों होता है और उर्दू तथा हिंदी इस नियम के परे नहीं हैं । एक ही भाषा की साहित्य-रचना में लेखकों तथा कवियों के भाषाधिकार के अनुसार तथा विषय के अनुकूल भाषा में सरलता तथा दुरुहता घट बढ़कर रहती है और ऐसा कोई नियम बन ही नहीं सकता कि एक ही प्रकार की भाषा सभी सर्वत्र एक सा प्रयोग करें । साहित्यिक भाषा तथा बोलचाल की भाषा में सदा विभिन्नता रही है और रहेगी । ऐसी अवस्था में सरल बोल चाल की हिंदी और उर्दू दोनों ही स्वतः उस रूप को पहुँच जाती हैं, जिसे हिंदुस्तानी कहकर राष्ट्रभाषा बनाने के लिए आंदोलन

किया जा रहा है। हाँ, यह दूसरी बात है, यदि ऐसा नाम देकर दूरूह भाषा का प्रचार करना इष्ट हो।

जहाँ तक समझा जाता है, हिंदुस्तानी का यह प्रश्न बोलचाल की राष्ट्रभाषा के लिए उठाया गया है, साहित्यिक भाषा की दृष्टि से नहीं, जिसमें सभी एतद्देशीय विभिन्न भाषा-भाषी सभ्यगण एकत्र होने पर आपस में विचार-विनिमय कर सकें। कहा जाता है कि भारत बोलियों तथा भाषाओं का देश है पर यहाँ की कुल भाषाओं या बोलियों में केवल एक उर्दू ही ऐसी भाषा है जिसमें विदेशीय फारसी, अरबी तथा तुर्की भाषाओं का मेल है। अन्य सभी एतद्देशीय हैं तथा सभी मूलतः संस्कृत-प्राकृत से निकली हुई हैं। ऐसी अवस्था में उन सभी भाषाओं पर विदेशीय भाषाओं का भार केवल एक भाषा की सुविधा के लिए डालना न्याययुक्त नहीं कहा जा सकता। किसी भी बंगाली, गुजराती, मराठी आदि भाषा बोलनेवाले सज्जन को उर्दू की अपेक्षा हिंदी सीखने में बहुत अधिक सुविधा है, क्योंकि लिपि एक होने के साथ साथ उन सबकी शब्दावली भी प्रायः एक ही है और उर्दू की लिपि तथा शब्दकोष उन सबसे एक दम भिन्न है। इसलिए समग्र भारत की राष्ट्रभाषा वही होनी चाहिए जिसमें विदेशीय भाषाओं के शब्द यथासाध्य सबसे कम हों और ऐसी भाषा हिंदी ही है, उर्दू कदापि नहीं।

ऐसा होते भी हिंदी के विरोधी काफी लोग हैं। मुसल्मानगण अपनी भाषा उर्दू का पक्ष लेते हैं, तो स्वाभाविक ही है और इसलिए उचित भी है; पर जब हिंदुओं में भी ऐसे लोग मिलते हैं, जो हिंदी का विरोध करते हैं तो स्वभावतः आश्चर्य होता है पर होना न चाहिए; क्योंकि जब से भारत का स्वातंत्र्य-सूर्य दासता-रूपी घने बादलों में छिप गया है तब से भारतीयों का पराई वस्तुओं के प्रति समत्व बहुत बढ़ गया है। ये अपनी वस्तु छोड़ सकते हैं, केवल

औरों को सुविधा देने के लिए या स्वयं अपने में कुछ वैचित्र्य लाने के लिए। सुप्रसिद्ध राष्ट्र नेता बाबू सुभाषचंद्र बोस नागरी तथा फारसी लिपियों के द्वंद्व को छोड़कर रोमन लिपि अपनाने की राय देते हैं। सुप्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर सिनहा हिंदी उर्दू के 'कशम-कश' में पड़कर अंग्रेजी में भाषण देते हैं। डाक्टर सर सप्रू तथा राष्ट्रपति पंडित जवाहिरलाल नेहरू उर्दू ही का पक्ष ग्रहण करते हैं। कितने हिंदू अपनी मातृभाषा उर्दू कह डालते हैं और स्यात् कहीं ऐसे भी हिंदू मिल जायँगे, जो अंग्रेजी को अपनी मातृभाषा समझते होंगे। हाँ, प्रांतीयता की बढ़बू भी इस विरोध का एक कारण है, जो इसी दासता से प्रतिफलित हुई है।

जो कुछ भी हो, अपनी हिंदी के उन्नयन में प्रत्येक हिंदी-प्रेमी को प्रयत्नशील रहना चाहिए और उसके मार्ग में जो कुछ भी बाधाएँ आ जायँ, उन्हें धैर्य तथा दृढ़ता के साथ पैरों तले दाबते हुए बराबर अग्रसर होते रहना चाहिए। एवमस्तु।



लेखक और कवि नामानुक्रम

अ		इ	
अंबिकादत्त	१८५	इंशा	१०२, १७६
अकबर	१२०	इन्न निशाती	६६
अकरम फैज	४६	इब्राहीम	६६
अफजल	१००	इलिअट	५२
अबूतालिब	२१	ई	
अब्दुल्कादिर बदायूनी	६१	ईट्स	१८८
अब्दुर्हीम खानखानाँ १२०-१२२		उ	
अब्दुल्ला कुली	६६	उमाम्बा	६२
अमरदास	११२	उर्फी	१६
अमितगति	४१	उसमान	६५
अयोध्याप्रसाद	१८५	ए	
अयोध्यासिंह	१८७	एकनाथ	११५
अली आदिल	६६	ओ	
अशरफ	१६	ओंकार भट्ट	१७०
अहमद	१४७	औ	
अहमद खाँ सेयद	२०६	औध	१५५-१५६
आ		क	
आजाद	१४	कंकण	३७
आनंदघन	१४८-१४९	कजिलबाश	१०५
आर्यदेव	३७	कदर पिया	१६४
आलम	६५, १३८	कबीर	७५-७६, १६०
आबरू	१०५	कमाल	८०

करनेस	१२०, १२५-१२६, १३०	ग	
कल्याण	१४५	गंगा	१२०, १२२, १७३
कादिर	१२८	गंगेश	११८
कानपाव	५६-५७	गंजन	१४०
कान्होपाद	३४-३५	गरीबदास	८१, ८८
कान्होबा	११६	गरीबनाथ	५८-५९
कारे खौं	१६०	गहनीनाथ	५५, ५८
कालिदास	५	गिरिधर	११७
काशीगिरी	१६४	गिरिधरदास	१६२
कुक्कुरीपाद	३७	गिलक्राइस्ट	१३, २२, १६८, १७६
कुतबन	६४	गोपाल	४०
कुलपति	१३६	गोपाल भट्ट	१११
केदार	५२	गोरखनाथ	५५-५६, १७३
केवलराम	१३९-१४०	गोविंद	११९
केशवदास	८७, १३०, १३४	गौरीदत्त	१८१
केशवराम	१८३	ग्रिअर्सन, डाक्टर	३३
केशव स्वामी	११७	ग्वाल	१४३
कैरे, डा० विलिअम	१६९	ज्ञानसार	१५५
कृपाराम	१३०	ज्ञानेश्वर	५५, ५८-६२
कृष्णमुनि	६२-६३	घ	
क्षेमकर्ण	१४५	घोड़ा चोली	५७
ख		च	
खफी खौं	२१	चंद	५०-५२
खातिब अली	४८-४९	चंद्रधर शर्मा	७, १४
खुसरो	१६, १९, २०, ४७, ५४, ६४-६५	चंद्रशेखर	१४४-१४५
		चक्रधर	६१

चरपटनाथ	५६-५७	ड	
चिंतामणि	१३४	डोम्भी	३७
चित्रगुप्त	११६-१२०	न	
चुणकरनाथ	५६	नकी	१०
चौगंगीनाथ	५६	तहसीनुद्दीन	६६
ज		ताज	११४
जगजीवन	११६-१२०	तानसेन	१२०
जगमोहनसिंह, ठाकुर	१८३	नारा मोहन	१८०
जटमल	६५, १७५	तालिब अली	१५७-१५८
जनगोपाल	८१, ८४-८५	तालिब शाह	१६१
जनीजनार्दन	११६	तिलपाद	३७
जमाल	१२६-१२७	तुकनगिरि	१६४
जयनर्दा	३७	तुकाराम	११४-११५
जयवंत	११६-१२०	तुगरा	१६
जलंधरनाथ	५६	तुराब	१६०-१६१
जल्हन	५०, ५२	तुलसी	८८-८९
जहूरी	१६	तुलसीदास	१३१
जायसी, मलिक मुहम्मद	६२, ६४-६५	द	
जौक	१०६	दयानंद	१८२
जौकी	१४८	दयाराम	१५६-१५७
झ		दर्द	१०४
झंभाजी	११३	दरिया साहब	८७
ट		दलपति विजय	४८
टोडरमल, राजा	१२१	दाऊजी	१७६
ठ		दाऊद	६१
ठाकुर	१४१-१४२	दादूदयाल	८१-८२

दामो	६३-६४	नल्लसिंह	५४
दामोदर	६२	नवीनचंद्रराय	१८१
दारिकपाद	३२	नसरती	६६
दास	१३२	नागरीदास	१५०-१५१
दिनकर	११७	नाथूराम शर्मा	१८६
दीनदरवेश	१६१-१६२	नानक	८०-८१
दूलनदास	८८-८९	नानूराम	५१
देव	१३४-१३५	नागदेव	६२
देवलनाथ	५८	नामदेव	५६-६१
देवदास	११७	नासिरपिया	१६४
देवसेन	३८	निपटनिगंजन	११३
देवीसिंह	१६४	निगंजन	११६-१२०
दौलतराव सिंधिया	१५४	निवृत्तिनाथ	५५, ५८, ६०
ध		नूरुद्दीन	४८
धनंजय	४१	प	
धन्ना	७८	पद्मगुप्त	४१
धरणीवराह	४४	पद्माकर	१४२
धरनीदास	८८	पलहूदास	८८-८९
धरनीधर	८६	पीपा	७८-७९
धर्मदास	७६	पुंड्य	४८
धैधलीमल	५८-५९	पेमी	६६
न		प्रतापनारायण	१८३
नंददास	१२६	प्राणनाथ	८६
नजीर	१०३-१०४	प्रियानाथ	१७०
नरपतिनाल्लह	५३-५४	प्रेमचंद	१६१
नरहरि	१२०, १२४-१२५	प्रेमरंग	१५६

व	म
बखना	८१
बद्रीनारायण	१८३
बद्रीलाल	१७०
वनारसी	१६४-१६५
वनारसीदास	१२७-१२८
बयाबाई	११७-११८
बहादुरशाह	१६३
बाँकीदास	१५६
बाबालाल	८६
बालकराम	११६
बालकृष्ण भट्ट	१८३
बालानाथ	५८
बिहारी	१३४-१३५
बोरबल	१२०
बेनी	१४७-१४८
बैताल	१२६
व्रजनिधि	१५८
भ	
भास	५
भास्करानंद	२४
भीखा	८८-८९
भूधरदास	१४१
भूषण	१३४
भूसुक	३६
भोज	४०, ४२
मंझन	६०
मंसाराम	१५६
मखनलाल	१७७
मधुकर	५२
मनोहर	१२०
मलकदास	८५-८६
मसूद	४८
महताव	१४६
महादर्जा	१५२-१५३
महावीरप्रसाद द्विवेदी	१८६
महीधर	३७
महीपतिनाथ	१५४
माइलधवल	३७
माधोदास	११२
मिनहाज	२०
मीरा	१०८, ११०
मुंज	४०-४१
मुक्ताबाई	६०
मुहम्मद कुतुबशाह	६८
मुहम्मद कुली	६८
मृतानेणसी	५८
मेरुतुंग	४०
मैथिलीशरण गुप्त	१८६
मोमिन	१०६
मोलाराम	१२६

मोहनदास	८१, ८४	ल	
मोहनलाल	१३०	लक्ष्मणसिंह, राजा	१८१, १८४
य		लक्ष्मीदास	१७८
यशवंतसिंह	१३६	लछ्मनदास	१६५
यारी साहब	८६-८७	लछ्मीराम	१८४
र		ललित किशोरी	१५७
		ललित माधुरी	१५७
गंगनाथ	११७	लल्लूलाल	१०, ११, १३,
रघुनाथ	१४३-१४४		१७६, १७६
रज्जन	६२	लाल	१४६-१४७
रज्जब	८१-८३	लालदास	८६
रतनलाल	१७०	लुईपाद	३१-३२, ३६
रवींद्रनाथ	१८६-१८०	व	
रसनिधि	१३७	वजही	१०४
रसगंग	१३६	वजीह	६६
राधाचरण	१८३	वली	१००
रामचंद्र शुक्ल	१६१	वाजिद	७६-७७
रामदास	११६-११७, ११६	वाजिदअली	१६३-१६४
रामनारायण	१६५	विद्यापति	४७
रामप्रसाद निरंजनी	१७४	विरूप	३७
राममोहनराय	१८०	वैकुण्ठमणि शुक्ल	१७३
रामानंद	११०-१११	वृंद	१३७-१३८
रिसालगिरि	१६४	वृंदावन	१४६
रूपचंद्र	१२८	व्हिटमैन, ब्हाल्ट	१८८
रूपमती	१२४	श	
रैदास	७७	शबरपाद	३४

शरफुद्दीन	९१	सादी	६६
शहरयार	१२६	सीतल	१५१
शाकिर नाजी	१०४	सुंदरदास	८१-८४
शाङ्गधर	४६, ५४, ६३, ६४	सुरति मिश्र	१७३-१७४
शिवदयाल	८८	सुरदेव	१५६
शिवप्रसाद, राजा	१८०-१८१	सुलेमान नदवी, सैयद	२०७-२०८
शिवाजी	११८	सूदन	४१, १०६-११०
शुभ शीलमणि	२२	सूरदास	५१, १०८-१०९, १३१
शुल्ल, बेंजामिन	२२	सेवक	१८४
श्रद्धाराम	१८१	सोपानदेव	६०
श्रीधर	४६	सोमप्रभ सूरि	४२-४३
श्रीधर पाठक	१८५-१८६	सोहिरोबनाथ	१५३-१५४
श्रीनिवासदास	१८३	सौदा	१०२

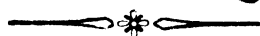
स

ह

सदना	७७-७८	हरदेव	१६५
सदल मिश्र	११, १७६-१७७	हरप्रसाद शाम्ब्री	३५
सदासुखलाल	१८०	हरिनारायण	१६५
सदासुखलाल नियाज़	१७५	हरिश्चंद्र, भारतेन्दु	१८०, १८२ - १८५
सनदपिया	१६४	हातिम	१०४
सरदार	१८४	हामिद	१०४
सरहपा	३२-३४	हाशिमी	६६
सहचरिशरण	१५२	हेमचंद्र	३८-३९
साईदान	४८		



हमारी प्रकाशित पुस्तकें



- १—दासबोध—सजिल्द, मूल्य २)
'समर्थ स्वामी रामदास के अमूल्य उपदेशों का संग्रह'
- २—बिहारी की वाग्विभूति—सजिल्द, मूल्य १।।)
'बिहारी की विशेषताओं का उद्घाटन करनेवाली पुस्तक'
- ३—भक्त और भगवान—सजिल्द, मूल्य १।।)
'भक्तों के वास्ते एक अपूर्व पुस्तक'
- ४—प्रियप्रवास (महाकवि हरिऔध कृत) मूल्य ... २।।)
'संशोधित एवं परिवर्द्धित नूतन संस्करण'
- ५—भाषा-भूषण—मूल्य १।।=)
'अलंकार-ज्ञान प्राप्त करानेवाली सर्वोत्कृष्ट पुस्तक'
- ६—ठंडे छींटे—(वियोगीहरि कृत) मूल्य १।)
'गद्य-काव्य के रूप में सर्वश्रेष्ठ क्रान्तिकारी रचना'
- ७—ज्ञानेश्वरी गीता—सजिल्द, मूल्य ३)
'गीता पर सर्वश्रेष्ठ टीका'
- ८—आधुनिक हिन्दी-साहित्य का इतिहास, सजिल्द मूल्य... २।।)
'आधुनिक साहित्य का ज्ञान प्राप्त करानेवाली सर्वश्रेष्ठ पुस्तक'
- ९—पुष्प-विज्ञान—सजिल्द, मूल्य १।।)
'पुष्प-सम्बन्धी एक अपूर्व एवं अत्युपयोगी पुस्तक'
- १०—हिन्दी-नाट्य-साहित्य—सजिल्द, मूल्य १।।।)
- ११—कहानी-कला—सजिल्द, मूल्य १।।=)
- १२—भाषा की शिक्षा—सजिल्द, मूल्य... .. २)
- १३—वैदेही-वनवास (हरिऔध कृत) मूल्य २।)
'करुण-रस प्रधान सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य'
- १४—विनय-पत्रिका (वियोगीहरि कृत) मूल्य ... २।।)
विनय-पत्रिका की भक्तिरस-पूर्ण सर्वश्रेष्ठ टीका

हमारी प्रचारित पुस्तकें

- १—जरासंध-वध (महाकाव्य), मूल्य १)
'वीर रस-पूर्ण हिंदी-साहित्य का प्रथम महाकाव्य'
 - २—उर्दू साहित्य का इतिहास, मूल्य १॥)
'उर्दू साहित्य का पूर्ण ज्ञान करानेवाली पहली पुस्तक'
 - ३—काव्यादर्श सटीक, मूल्य १)
'बाजार में प्राप्त सभी संस्करणों से सुंदर'
 - ४—सत्य हरिश्चंद्र नाटक, मूल्य ॥=)
'भारतेंदु कृत सत्य हरिश्चंद्र नाटक का सबसे सुंदर संस्करण'
 - ५—इंशा उनका काव्य तथा रानी केतकी की कहानी
मूल्य ॥=)
'आधुनिक गद्य-साहित्य के प्रारंभिक काल की सर्व प्रथम रचना'
 - ६—यशवंतसिंह तथा स्वातंत्र युद्ध, मूल्य ॥)
'औरंगजेब-काल की एक भयावनी भलक'
 - ७—बादशाह हुमायूँ, मूल्य ॥)
'चंद्रालोक (पीयूषवर्ष जयदेव कृत), मूल्य ॥=)
 - ८—निमाई-संन्यास नाटक, मूल्य ॥॥)
 - १०—सर हेनरी लॉरेन्स, मूल्य ॥)
 - ११—भारतेंदु-सुधा, मूल्य १॥)
'भारतेंदु जी के चुने हुए पदों का अपूर्व संग्रह'
-

